जनजातीय क्षेत्र में समग्र पशुधन विकास

(जनजातीय उपयोजना)

राष्ट्रीय उष्ट्र अनुसंधान केन्द्र

(भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद्)

जोड़बीड़, बीकानेर-334001. राजस्थान

National Research Centre on Camel

(Indian Council of Agricultural Research)

Jorbeer, Bikaner-334001. RAJASTHAN

प्रकाशक :
डॉ. एन.वी. पाटिल
निदेशक

प्रकाशन वर्ष :
मार्च 2012

सम्पादक मण्डल
डॉ. एस.सी. मेहता, अध्यक्ष
डॉ. सज्जन सिंह, सदस्य सचिव
डॉ. राघवेन्द्र सिंह, सदस्य
डॉ. चम्पक भकत, सदस्य
श्री नेमीचन्द, सदस्य

मुद्रक :
अमित कम्प्यूटर्स एण्ड प्रिन्टर्स
बीकानेर 334005
फोन : 0151-2547073, 9214555303

निदेशक की कलम से...

कृषि प्रधान भारत देश की अर्थव्यवस्था में पशुधन व्यवसाय अपनी महत्वपूर्ण भूमिका निभा रहा है। पशुधन के योगदान के अन्तर्गत दुग्ध, मांस एवं अण्डा उत्पादन में भारत का विश्व में क्रमशः प्रथम, पांचवां एवं छठा स्थान है तथा भविष्य में इस उत्पादकता में वृद्धि करने हेतु हमारा देश निरन्तर प्रगति करते हुए प्रयत्नशील है। वर्ष 2007 की पशु गणना के अनुसार भारत में गाय व भैंसों की संख्या 305 मिलियन है जिसमें कि लगभग आधे से ज्यादा (56 प्रतिशत) दूध भैंसों से प्राप्त होता है जो कि संख्या की तुलना में लगभग आधे से भी कम है। इस संपूर्ण पशुधन व्यवस्था में गाय, भैंस के अलावा बकरी, भेड़, और ऊँट का भी महत्वपूर्ण योगदान रहता है।

दूसरी ओर राजस्थान प्रदेश में निवासित लोगों की आजीविका का मुख्य आधार पशुपालन ही है। सर्वविदित है कि यहां की विषम एवं आपात परिस्थितियों के कारण मानव की निर्भरता पशुधन पर अत्याधिक आधारित रही है। यहां अल्प वर्षा व अकाल की पुनरावृत्ति ने मनुष्य को पशु से जोड़े रखा है। यहां के पशुधन में प्रमुख रूप से गाय एवं भैंस भेड़, बकरी, ऊँट आदि शामिल है।

हमारे जन जातीय बाहुल्य क्षेत्रों में प्रमुख रूप से बांसवाड़ा एवं डूंगरपुर आते हैं। राजस्थान प्रदेश में पशुधन आधारित व्यवस्था के रहते भी यह देखा गया है कि जन जातीय बाहुल्य क्षेत्रों में पशुधन संख्या अधिक होते हुए भी इनसे अपेक्षित उत्पादन प्राप्त नहीं हो रहा है, इसका क्षेत्र के लोगों के पास उत्तम गुणवत्तायुक्त पशुधन का अभाव होना एक प्रमुख कारण है। साथ ही क्षेत्र के लोगों में पशुधन व्यवस्था हेतु नूतन एवं उचित पशु पोषण प्रबन्धन के ज्ञान का अभाव है। सूचना एवं प्रौद्योगिकी के इस युग में जन जातीय लोगों को समाज की मुख्य धारा से जोड़ा जाना आज समय की मांग है। यदि पशुपालक का पशुधन मजबूत होगा तो वे निश्चित रूप से अधिक समर्थ व सक्षम बनेंगे। जिससे क्षेत्र के लोगों की जीवन शैली में आमूलचूल परिवर्तन स्पष्ट परिलक्षित होगा। जरूरतमंद लोगों तक पशुपालन व्यवसाय सुनियोजित व सुव्यवस्थित रूप में पहुँचे तथा इसे अपनाकर पशुधन उत्पादन वृद्धि के लक्ष्य को पाना संपूर्ण देश के पशुधन विकास हेतु निहायत जरूरी है।

जन जातीय क्षेत्रों के लोगों के समाजार्थिक सुधार हेतु इन्हें सूचना प्रोद्योगिकी व नूतन शोध संबंधी संगोष्ठियों, प्रशिक्षण कार्यक्रमों आदि के माध्यम से अद्यतन व प्रामाणिक जानकारी प्रदान करवाते हुए जागरूक एवं सक्षम बनाना होगा। सामाजिक जीवन स्तर एवं पशुधन के क्षेत्र में आ रहे अवरोधों को मौलिक व नूतन अभियान कार्यक्रमों के माध्यम से दूर कर अपेक्षित सुधार एवं बदलाव लाया जाए ताकि समाज की मुख्य धारा से इन्हें जुड़ने का सुअवसर प्राप्त हो सके। इसी प्रयोजन से प्रेरित होकर भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद (भारत सरकार के माध्यम से) द्वारा राष्ट्रीय उष्ट्र अनुसंधान केन्द्र, बीकानेर को यह दायित्व सौंपा गया है कि इस जन जातीय उपयोजना के माध्यम से जन जातीय बाहुल्य क्षेत्रों में अपेक्षित सुधार लाए जाने हेतु वैज्ञानिक एवं तकनीकी जानकारी का संप्रेषण किया जाए। इस महत्वपूर्ण व सार्थक कार्य में केन्द्र पशुधन से जुड़े विभागों, गैर सरकारी संगठनों आदि के योगदान की भी अपेक्षा रखता है। इस हेतु किए जा रहे प्रयास की सफलता की आशा के साथ सम्बन्धित सभी प्रबुद्ध जनों एवं जन जातीय समाज को शुभ कामनाएँ।

एन.वी. पाटिल
निदेशक

ह्नअनुक्रमणिकाह्न

क्र.सं.	विषय	पृष्ठ सं.
1.	शुष्क क्षेत्र में पशु उत्पादन बढ़ाने हेतु संतुलित पशु पोषण का महत्त्व व उपाय	7
2.	जनजातीय क्षेत्र में पशु अनुवांशिक स्त्रोतों का महत्त्व	13
3.	जनजातीय विकास में पशुपालन का योगदान	21
4.	शुष्क क्षेत्र में बकरियों के लिये उन्नत पशु आवास व्यवस्था	24
5.	बकरी पालन और उसका स्वास्थ्य प्रबंधन	27
6.	राजस्थान में ऊँट पालन एवं प्रबन्धन	30
7.	नवजात ऊँटों का परिपालन	34
8.	जलवायु परिवर्तन के कारण पशुओं में होने वाले संक्रामक रोगों का अग्रिम प्रबंधन	37
9.	भेड़ों में स्वास्थ्य प्रबंधन	41
10.	पशुओं में औषधियाँ देने की विधियाँ	58
11.	पशुओं में होने वाले प्रमुख जीवाणु जनित संक्रामक बीमारियों के लक्षण व उपचार	60
12.	पशुओं में पेट बंध जाना (उदर अम्ल रक्तता)	63
13.	क्षय रोग के बारे में जानें	66
14.	पशुओं का पालन-पोषण	69
15.	पशु-आहार बट्टिका उत्पादन तकनीक	78
16.	वैज्ञानिक विधि से सूखे चारे की पौष्टिकता कैसे बढ़ाएँ ?	86
17.	पशु-पौष्टिक दाना : मरूस्थलीय पशुओं के लिए वरदान	90
18.	वन चरागाह प्रणाली से प्राकृतिक संसाधनों का टिकाऊ विकास एवं चारा उत्पादन	94
19.	पशुओं को वर्ष भर हरा चारा कैसे मिले ?	103
20.	सूखे चारे को लाभदायक बनाना	106

क्र.सं.	विषय	पृष्ठ सं.
21.	पशु पोषण की नवीनतम जानकारियाँ	107
22.	लवण-बट्टिका उत्पादन तकनीक	111
23.	ऊँटनी के दूध का महत्त्व एवं उपयोग	114
24.	ऊँटनी के दूध से निर्मित पारम्परिक उत्पाद	118
25.	कैसे करें स्वच्छ दूध का उत्पादन ?	122
26.	अश्व रखरखाव	125
27.	अश्वों को लंगड़ापन के खतरे से कैसे बचाएं ?	137
28.	खच्चर उत्पादन : एक लाभकारी व्यवसाय	140
29.	दक्षिणी राजस्थान के जनजातीय क्षेत्र आधारित बागवानी	145
30.	फल उत्पादन बढ़ाने की आधुनिक तकनीकें	151
31.	कृषि उत्पादकता वृद्धि हेतु जैविक खाद एवं जैव उर्वरक प्रबंधन	160

❑❑❑

शुष्क क्षेत्र में पशु उत्पादन बढ़ाने हेतु संतुलित पशु पोषण का महत्त्व व उपाय

एन.वी.पाटिल

निदेशक

राष्ट्रीय उष्ट्र अनुसंधान केन्द्र, बीकानेर

भारत का 11 प्रतिशत भौगोलिक विस्तार गर्म शुष्क क्षेत्र में व्याप्त है जिसका लगभग 60 प्रतिशत क्षेत्र पश्चिमी राजस्थान के थार रेगिस्तान के 12 जिलों में स्थित है। खेती की दृष्टि से यहाँ अत्यंत कठिनतम परिस्थितियाँ है जिसमें असंतुलित व वर्षा की कमी, जमीन की निम्न गुणवत्ता, जल संसाधनो की कमी, अत्यधिक वाष्पीकरण से जमीन व वातावरण में नमी का अभाव, ज्यादा वायुगति जिसके कारण सें यह क्षेत्र कृषि की गतिविधियों के लिए प्रतिकूल है। इन्हीं परिस्थितियों में लघु व सीमांत किसान अपने परिवार की उदर निर्वाह करने हेतु सदियों से पशुपालन अपनाते हैं जिसमें डेयरी तथा भेड़ व बकरी पालन मुख्य व्यवसाय है जो उन्हें आर्थिक स्थिरता प्रदान करते हैं।

पशुपालन व्यवस्था में आर्थिक निरन्तरता बनाये रखने के लिए संतुलित पशु पोषण महत्वपूर्ण है व शुष्क क्षेत्र में अकाल की स्थिति को देखते हुए पशु पोषण समस्या से किसान झूझता है। पश्चिमी राजस्थान में अकाल वर्ष लगभग हर दो साल के अंतराल मे आ ही जाता है व अतिशुष्क क्षेत्र जैसे की बाडमेर, जैसलमेर व बीकानेर जिलों मे अकाल दो या अधिक वर्षों तक निरंतर बना रहता है। अकाल का सीधा असर कृषि उत्पादन पर होता है व पशुपालन व्यवस्था भी अकाल के वर्षों मे बिगडती है जिसके कारण पशु-पोषण की समस्या गंभीर हो जाती है। वर्ष 2003 की गणनानुसार पश्चिमी राजस्थान में पूर्ण राज्य का 48 प्रतिशत पशुधन है जिसमे 41 लाख गायों, 32 लाख भैसों, 73.5 लाख भेड़ व 83.7 लाख बकरियां शामिल है। इस अधिकतम पशुधन संख्या (285.7 लाख) के निर्वाह हेतु चारागाह से घास चारा उत्पादन पशुधन की आवश्यकता की अपेक्षा 60 से 72 प्रतिशत कम होता है व अकाल के समय में इस कमी को 76 से 82 प्रतिशत मात्रा तक देखा गया है। इस कमी को देखते हुए पशुपोषण के उपाय व विकल्प ढूँढ़ना आवश्यक है।

शुष्क क्षेत्रों में पशु पोषण के विकल्प

शुष्क क्षेत्र मे पशुपोषण का मुख्य आधार चरागाह है व राजस्थान कृषि भूमि का लगभग 45 प्रतिशत भू-भाग चरागाह क्षेत्र का माना है तथा पश्चिमी राजस्थान के शुष्क क्षेत्र के लगभग 95 प्रतिशत भू-भाग मे केवल चरागाह व्यवस्था में व्याप्त है कारण की यहाँ की भूमि देश द्वारा किए गए 6 से 8 क्षेत्र वर्गीकरण में आती है जो वायु व पानी से भूमि वहन की समस्या से ग्रसित है व ऐसे क्षेत्र में चरागाह व्यवस्था ही उचित है।

500 मि.मी. या उससे कम बारिश में बाजरा, मूँग, मोठ, ग्वार जैसे फसलें ली जा सकती है परतुं बालुमय क्षेत्र में जहॉ बारिश की मात्रा 300 मि.मी. या उससे कम है वहाँ क्षेत्रीय घास लगाई जानी चाहिए न कि खेती की जाए।

शुष्क क्षेत्रों मे घास व पेड़ों का पशु पोषण में महत्व :

अंजन घास (सेन्करस सिलियेरीस) व धामण (सेन्करस सेटिजेरस) इस क्षेत्र मे अच्छा उत्पादन दे सकती है साथ ही शुष्क क्षेत्र की दूसरी घासों की प्रजातियाँ भी लगाई जा सकती है जैसे की डायँकेन्थीयाम ॲनुलाटम, पेनिकम ऐन्टीडोटेल व पेनिकम टर्जिडम व इसे विकसित करने हेतु केन्द्रीय शुष्क क्षेत्र अनुसंधान संस्थान, जोधपुर मे विशिष्ट कृषि व्यवस्था भी तैयार की है। गोचर/चरागाह व्यवस्था के कुछ उपाय करके इन घास चारो का उत्पादन बढाया जा सकता है। एक पूर्ण विकसित चरागाह से लगभग 30-35 क्विटल प्रति हेक्टर सूखा चारा उपलब्ध हो सकता है जिसमें लगभग 40-50 पशुओं को 100 हेक्टर चरागाह क्षेत्र मे पोषण हेतु रखा जा सकता है।

पश्चिमी राजस्थान में चरागाह क्षेत्र में खेजडी वृक्षों की उपलब्धता में पशुओं के लिये छाया व इसकी पत्तियों को चारे में मिलाकर देने से चारें की पौष्टिकता बढती है, बकरी व भेड़ जैसे छोटे पशुओं के लिए यह एक अत्यंत पोष्टिक चारा है व एक पूर्ण विकसित खेजड़ी वृक्ष से लगभग 15 किलो पत्तियाँ जिसे स्थानीय भाषा में ''लूंग'' कहा जाता है उपलब्ध हो सकती है। कुछ चरागाह क्षेत्र मे देशी बेर की झाड़ियॉ ''बोरडी'' सर्दी के मौसम में इसकी पत्तियाँ, ''पाला'' जो कि एक प्रोटीन युक्त चारा है, बकरी व भेड़ के लिए उपयुक्त चारे का स्त्रोत है। इसकी उत्पादकता लगभग 125 किलो ग्राम प्रति हेक्टर ली जा सकती है साथ ही ऐसे वृक्ष व झाडियों की प्रजातियाँ भी उपलब्ध है जो चरागाह क्षेत्र में विकसित की जा सकती है व जो चारे का स्त्रोत बन सकते हैं और साथ में इस क्षेत्र में ज्यादा वायुगति से मिट्टी के बहाव में रोकथाम कर सकते है।

सिल्वीपाश्चर व्यवस्था में पशुपोषण चरने वाले पशुओं के लिए सिल्वीपाश्चर एक अर्थव्यवस्था है

इस व्यवस्था में घास की किस्मों के साथ ऐसे पेड़ लगवाये जाते हैं जिनकी पत्तियाँ चारें के रूप में पशुआहार में उपयोग मे ली जाती है। यह व्यवस्था उन सभी शुष्क क्षेत्र में अपनायी जानी अर्थपूर्ण है जहाँ बारिश 300 मि.मी. या उससे कम होती है या उस क्षेत्र में जहाँ पथरीली व निम्नस्तर की जमीन उपलब्ध है। ऐसे क्षेत्र के लिए अकेशिया सेनेगल, अकेशिया टोर्टीलिस, हार्डविकिया बायनाटा जैसे पेड़, बेर की झाड़ी में बोरडी झिझिपस न्यूम्यूलेरीया, झिरोटन्डीफोलिया। रूक्ष क्षेत्र के जो घास जैसे सनकरस सोटिजिरस (धामण) व सेन्क्रस सिलियोरीस (अंजन) साथ लगाये जा सकते है। इन सब व्यवस्था में भेड़, बकरी व गायों का निर्वाह अच्छी तरह किया जा सकता है व भेड़ों मे ऊन उत्पादन व बकरियों से दूध व मांस उत्पादन लिया जा सकता है। अंजन पेडो की पत्तियाँ व अंजन घास व्यवस्था ने घास व पत्तियों का उत्पादन 9 वर्षो तक शोध के बाद यह पता चला है कि घास उत्पादन लगभग 13 क्विंटल प्रति हेक्टर व अजन पेडो से पत्तियॉ लगभग 6.5 क्विंटल प्रति हेक्टर प्राप्त की जा सकती है व कुल 15 क्विंटल चारे उत्पादन व्यवस्था

मे लगभग 4 भेड़ों को एक वर्ष भर प्रति हेक्टर खिलाया जा सकता है।

पूरक आहार से पशु पोषण में संतुलन कैसे करे ?

संतुलित पशुपोषण हेतु चरागाह व्यवस्था पर निर्वाह करने वाले पशुओं को पूरक आहार देना आवश्यक है क्योंकि यह पाया गया है कि अत्यधिक पशुधन संख्या की वजह से व चरागाह से चारा उत्पादन की मात्रा में कमी आयी है व साथ ही चारें की गुणवत्ता में भी कमी देखी गई है जिस वजह से पशुओं का पोषण पर्याप्त मात्रा में होना मुश्किल हुआ है जिसका सीधा असर पशु उत्पादन व पशु स्वास्थ्य पर दिखाई देता है। पूरक पोषण हेतु ऊर्जा, प्रोटीन, विटामिन व मिनरल स्त्रोतों को अलग-अलग या मिश्र रूप मे संतुलित दाने के रूप में पशुओं को खिलाया जा सकता है। इन पोषण तत्वों से पूर्ण अलग-अलग प्रचलित या प्रचलित स्त्रोत उपलब्ध है जिनका उपयोग संतुलित दाना या विशिष्ट पूरक मिश्रण के रूप मे किया जा सकता है। संतुलित दाने में सम्मिलित स्त्रोतों का उपयोग पशुओ की ऊर्जा, प्रोटीन, खनिज व विटामिन की कमी को दूर करने हेतु होता है। संतुलित दाने की मात्रा चरागाह से उपलब्ध चारे की मात्रा, गुणवत्ता व पशु उत्पादन क्षमतानुसार निश्चित की जाती है जो कि गाय, भैंस मे लगभग 3 किलोग्राम से 8 किलोग्राम रह सकती है व भेड़/बकरियों मे यह मात्रा 200 ग्राम से 500 ग्राम तक की जा सकती है। पूरक पोषण हेतु प्रचलित व अप्रचलित आहार अवयवों का सम्मिलित उपयोग करते हुए युरिया-सीरा व खनिज मिश्रण या इनके ब्लॉक्स बनाये जाते है जो पशुओं को 300-500 ग्राम मात्रा मे प्रति गाय, भैंस व 50-100 ग्राम प्रति भेड़ बकरी को खिलाये या चटवाये जा सकते है। इस पूरक आहार व्यवस्था द्वारा आवश्यक पोषक तत्वों की पूर्ति हो सकती है व पशु उत्पादन व्यवस्था व स्वास्थ ठीक रह सकता है।

संपूर्ण पशु आहार व्यवस्था में पशु पोषण का संतुलन निहित है

शुष्क क्षेत्र में पशुआहार की कमी निरंतर बनी रहती है इसका कारण क्षेत्र में अकाल जैसी परिस्थितियॉ लगभग हर दूसरे साल उत्पन्न होती है व हर वर्ष शुष्क क्षेत्र के किसी न किसी स्थान में अकाल की परिस्थिति रहती है। चरागाह से चारा उत्पादन व गुणवत्ता की कमी व पूरक आहार के आयोजन में कठिनाई देखते हुए वैज्ञानिको ने संपूर्ण आहार की संकल्पना तैयार की जिसमे घासचारा अथवा मूख्य फसलो से प्राप्त उप-उत्पाद जैसे कडबी, पराल, गेंहूँ-भूसा इत्यादि के साथ पूरक आहार में सम्मिलित घटकों को एक साथ मिलाया जाता है व इस संपूर्ण मिश्रण को संपूर्ण मिश्रित आहार अथवा संपूर्ण आहार ब्लॉक्स के रूप मे पशुओ को खिलाया जाता है। इस तरह के संपूर्ण पशु-आहार शुष्क क्षेत्र मे पशुधन बचाने हेतु घास चारो का ट्रक/रेलवे द्वारा वहन एक आम बात है व सिर्फ सूखे चारों को पशुओ के खिलाने से पोषण की संतुलित न होने से पशु उत्पादन या पशुस्वास्थ्य पर विपरीत असर होता है। ऐसी व्यवस्था में अगर सपूर्ण पशु आहार के ब्लॉक्स तैयार करके अकाल ग्रस्त क्षेत्रों में पहुंचाए जाए तो वहन व्यवस्था में कम खर्चे में ज्यादा पशु आहार वहन हो सकता है व पशुपोषण भी संतुलित होते हुए पशुउत्पादन व स्वास्थ्य ठीक रखा जा सकता है।

संपूर्ण पशु आहार बनाने की विधि

संपूर्ण पशुआहार बनाने हेतु घास चारा व अन्य पशुआहार स्त्रोत उन क्षेत्रों की पशुधन आवश्यकता से अधिक मात्रा मे उपलब्ध है, वहाँ से मंगवाना लाभदायक हो सकता है। पशु आहार में घास चारा व

पोषक दाना बनाने में जो स्त्रोत उपयोग लिए जाते है, यह सभी उस क्षेत्र में उपलब्धता व आर्थिक दृष्टि के अनुसार सस्ते भाव को देखते हुए इकट्ठे कर सकते हैं। साथ ही क्षेत्र में प्रचलित पशुओ की खान पान व्यवस्था व स्त्रोतोनुसार संतुलित आहार-विभिन्न चारा व पशु दाने के स्त्रोत से बनाये जाते हैं। इन सब स्त्रोतो को पिसवाकर व घास चारों को भी 2-4 से.मी. टुकडो में कटवाकर मिश्रण रूप में जानवरों को दिया जाए

तो उसे संपूर्ण मिश्र आहार कहा जाता है। ऐसे संपूर्ण मिश्र आहार बनाने हेतु विभिन्न चारों व दाने के स्त्रोतों का पोषक तत्वों का मूल्याकंन करना बहुत जरूरी होता है जिससे मिश्रित आहार में इन स्त्रोतों का प्रयोग उचित मात्रा मे किया जा सके साथ ही जिन पशुओं को यह संपूर्ण मिश्र आहार देना हो उन पशुओं की उत्पादन क्षमता उनका भार की जानकारी होना आवश्यक होता है। इस तरह अनेक प्रकार के संपूर्ण मिश्र आहार विशिष्ट क्षेत्र अनुरूप बनाए जा सकते हैं व क्षेत्रीय घासचारा व दानें के अवयवों की उपलब्धतानुसार इसके मूल्यो में कमी ला सकते है। अनेक विकासशील देशो में क्षेत्रीय आवश्यकताओं को समझते हुए नानाविध संपूर्ण मिश्र आहार बनाये गए है। जिससे पशु का आहार अगर केवल उपलब्ध खाद्य व घास चारे द्वारा बनाया जाए तो वह कम लागत से बन पाता है परंतु कुछ खाद्य व घास चारा अगर बाहरी क्षेत्र से लाया जाये तो उसमें उन पदार्थो का वहन खर्च भी शामिल होता है व मूल्य में बढोतरी होती है। फिर भी अकाल जैसी परिस्थितियो मे ट्रक या रेलवे द्वारा घास चारा व अन्य खाद्यान्नों की एक से दूसरे क्षेत्र मे वहन होता है व ऐसी परिस्थिति मे केवल घास चारा या कुछ पशुखाद्यों की ट्रक/रेलवे द्वारा वहन करना आर्थिक दृष्टि से लाभप्रद नही है तथा संपूर्ण मिश्र आहार के ब्लॉक बनाकर अकालग्रस्त क्षेत्र मे भेजना आसान पर्याय है। ब्लॉक बनाने हेतु दाब द्वारा संचालित समुचित दाब यन्त्रो का उपयोग किया

जाए तो लगभग 2 कि. ग्रा. से 10-12 कि. ग्रा. तक संपूर्ण मिश्र पशु आहार ब्लॉक बनाये जा सकते है। भारत व अधिकतम विकासशील देशो में इस तरह के पशु आहार ब्लॉक बनाए जाते है जिसके लिए दाब यंत्र भी उपलब्ध है।

संपूर्ण पशुआहार ब्लॉक के लाभ

1. संपूर्ण पशुआहार ब्लॉक में उन सभी अप्रचलित चारा दाने के स्त्रोतों का उपयोग भी किया जा सकता है जो पशुआहार मे सामान्यतः सम्मिलित नही होते है व इससें पशुआहार के मूल्य मे कमी हो जाती है।
2. संपूर्ण पशुआहार ब्लॉक में संतुलित पोषण का ध्यान रखा जाता है जिससें पशुओं की उत्पादन व्यवस्था व उत्पादकतानुसार संतुलन लाया जा सकता है।
3. संपूर्ण पशुआहार ब्लॉक के रूप में बनाने से घासचारा व दाने से स्त्रोत को व्यवस्थित रूप से लगभग एक-तिहाई कम जगह में संग्रहित किया जा सकता है व ऐसे ब्लॉक्स एक जगह से दूसरी जगह आसानी से परिवहन किया जा सकता है व वहन खर्चे में कटौती कर सकते है।
4. घास चारा व दाने के स्त्रोत जिस प्रदेश में व जिन ऋतुओं मे ज्यादा मात्रा में उपलब्ध हो तब पशुआहार के ब्लॉक्स वहाँ बनवाकर, संग्रहित कर सकते है व इस तरह की पशुचारा बैंक या पशुचारा डिपो बनाये जा सकते है जहाँ से आवश्यकतानुसार उस क्षेत्र मे पशु आहार ब्लॉक्स तो जा सकते हैं जहां अकाल से पशु चारा या पशु खाद्य की कमी हुई है।
5. कुछ नियंत्रित प्रक्रिया द्वारा पशुआहार ब्लॉक्स का संग्रह काफी समय तक किया जा सकता है व यह एक आर्थिक रूप से विकसित किया जाने वाला व्यवसाय हो सकता है।
6. अप्रचलित चारा व पशु खाद्य जो सामान्यतः पशु खाते नहीं है उनका उपयोग संपूर्ण पशु आहार ब्लॉक्स में प्रचालित चारा या पशुखाद्यो के साथ उचित मात्रा में किया जाता है व इस व्यवस्था में पशु, पशुआहार मिश्रण केा बिना दुविधा के ग्रहण करता है जिससें अप्रचलित चारे का उचित उपयोग व पशुपोषण खर्चे में कमी आ सकती है। पशुओ की स्वःरूचि नियंत्रित की जा सकती है।
7. संपूर्ण पशु आहार में घास, चारा, दाना, मिनरल व विटामिन मिश्रण का उचित समावेश होने से पशुओं की पाचन क्रिया ठीक रहती है उत्पादन क्षमता मे बढोतरी होती है।
8. संपूर्ण पशुआहार ब्लॉक्स का उपयोग करना पशु व्यवस्था की दृष्टि से भी लाभप्रद है व जिससे मनुष्य श्रम का उचित उपयोग हो सकता है।
9. संपूर्ण पशु आहार का उपयोग पशुओं की वृद्धि, दूध, मांस, ऊन उत्पादन में देखा गया है। जिसमें प्रचलित आहार व्यवस्था की अपेक्षा कम लागत से पशुओं में ज्यादा उत्पादन क्षमता देखी गई है व प्रति/कि. ग्रा. वजन वृद्धि पर दूध उत्पादन मे आहार खर्च में कमी देखी गई है।

उपसंहार

इन सभी पशुपोषण व्यवस्थाओं का उपयोग शुष्क क्षेत्र मे संभव है व विभिन्न क्षेत्रानुरूप चरागाह व्यवस्था, भूमि की उपलब्धता व गुणवत्तानुसार पशु पोषण की व्यवस्था का चुनाव किया जा सकता है। शुष्क क्षेत्र मे अकाल परिस्थिती को ध्यान मे रखते हुए जो व्यवस्था अधिकतम आर्थिक लाभ दे उसे अपनाया जाना

चाहिए। अत्यधिक चारे व दाने की कमी न आये इस हेतु चारे व संपूर्ण पशुआहार ब्लॉक्स की बैंक भी विभिन्न क्षेत्रों मे बनवाई जाए तो पशु उत्पादन व पशुस्वास्थ ठीक रखा जा सकता है जिससें क्षेत्र मे आर्थिक परिस्थिति समद्धि बनी रहे।

(1) **संपूर्ण पशुआहार में सम्मिलित अप्रचलित फसल उत्पादों की महत्वपूर्ण उचित मात्राएं**

फसल उत्पाद	**संपूर्ण आहार मे मात्र (प्रतिशत)**
1. सूखी घास	30-50
2. गेहू भूसा/तूडी	50
3. चावल भूसा	40-50
4. बाजरा कडबी	50-60
5. तुम्बे की खल	15-25
6. रायड़े की खल	10-20
7. अंग्रेजी बबूल की फली का चूरा	10-20
8. ग्वार कोरमा	10-20
9. ज्वार कडबी	30-40
10. मसुर चारा	30-40

(2) **विभिन्न संपूर्ण पशुआहार में पोषक तत्वों व पोषक मूल्यों की मात्राएं**

विवरण	**मात्र प्रतिशत**
क्रुड प्रोटीन	8-16
क्रुड रेशा	12-30
क्रुड वसा	0.9-6.8
नत्रजन मुक्त तत्व	33-60
अम्लीय अघुलनशील खनिज	1.9-7.9
केल्शियम	0.2-0.8
फॉस्फोरस	0.2-0.8
कुल पाचक तत्व	48-65
पाच्य प्रोटीन	6-10.6

❑❑❑

जनजातीय क्षेत्र में पशु अनुवांशिक स्त्रोतों का महत्त्व

शरत् चन्द्र मेहता
प्रधान वैज्ञानिक
राष्ट्रीय उष्ट्र अनुसंधान केन्द्र, बीकानेर

पशुपालन का एक विशेष स्थान जनजाति के जनजीवन में सदैव रहा है । जनजातीय क्षेत्रों की भौगोलिक परिस्थितियाँ एवं इनका आर्थिक स्तर कुछ इस तरह रहा कि अन्य समुदायों की तुलना में आदिवासियों का झुडाव पशुपालन से अत्याधिक रहा । पशुपालन एक ऐसा क्षेत्र है जो व्यक्ति को हर प्रकार का विकल्प देता है, जैसे एक गरीब किसान बहुत कम रूपयों में बिना जमीन एवं अन्य साधनों के कुछ बकरियाँ पाल सकता है, भेड़ पालन भी इसी तरह का विकल्प है, लेकिन जिन किसानों की आर्थिक स्थिति कुछ ठीक है वो गाय एवं भैंस पालन कर सकते हैं । पशुओं की जो प्रकृति है उसमें ऊँटों की शेष पशुओं से कोई प्रतिद्वन्दता नहीं है । ऐसी स्थिति में जनजाति क्षेत्रों में ऊँट भी ठीक संख्या में आज विद्यमान है। समय के साथ मुर्गी पालन ने भी अपना एक विशिष्ट स्थान इन क्षेत्रों में बना लिया है ।

विश्व परिदृश्य को अगर देखे तो सम्पूर्ण विश्व में पशुपालन दूध, मांस, ऊन व अण्डे प्राप्त करने के लिये एवं आने जाने के साधन के रूप में, खेती में, खेल एवं मनोरंजन हेतु होता है। समय के साथ साथ अनेकानेक साधनों का विकास हुआ एवं पशु की उपयोगिताओं में बदलाव आने लगा इसका सबसे अधिक असर इन पशु प्रजातियो पर पड़ा जो कि खेती करने के लिये, आने जाने के साधन के रूप में एवं बोझा ढोने आदि के काम में आते थे। दूसरी तरफ जनसंख्या में अत्यधिक बढौतरी हुई लेकिन प्राकृतिक संसाधानों जैसे जमीन, पानी आदि सीमित मात्रा में होने के कारण नई प्रकार की स्थितियां पैदा हो गई । कहते हैं 'आवश्यकता आविष्कार की जननी है' एवं यही कारण है कि आज अधिकतर पशुओं का उपयोग मुख्य रूप से दूध एवं मांस उत्पादन के लिये होने लगा है ।

अठ्ठारवी पशुगणना को अगर देखें तो पता चलता है कि जनजातीय क्षेत्रों में गाय, भैंस, भेंड़ एवं बकरी का पालन मुख्य रूप से हो रहा है, कुछ मात्रा में ऊँट एवं अन्य पशु भी इन क्षेत्रों में पाले जा रहे है । मुर्गी पालन भी अच्छी तरह हो रहा है । इस सब के बावजूद इन क्षेत्रों में दूध उत्पादन राजस्थान प्रदेश के औसत से काफी कम है । ऐसी स्थिति में नकली दुग्ध एवं मावा आदि का प्रयोग रोकने का एक उपाय यह है कि हम उन्नत पशु पैदा करें जो अधिक दूध दे एवं अधिक उपयोगी सिद्ध हो। इसके लिये हमें समन्वित प्रयास करने होगें एवं विशेष ध्यान पशुओं की प्रजनन योजना एवं उसके क्रियान्वयन पर देना होगा ।

गाय

राजस्थान के जनजाति क्षेत्रों में गायों की संख्या 10 लाख से अधिक है फिर भी इनका प्रति गाय दूग्ध उत्पादन बहुत ही कम है । इसका मुख्य कारण है यहां पर अधिक तर गायें किसी भी नस्लविशेष से सम्बन्धित रखती नही है । कुछ मात्रा में गिर नस्ल की गायें यहाँ पाई जाती है । ऐसी स्थिति में यहाँ पाई जाने वाली गायों को गिर, थारपारकर, कांकरेज अथवा जर्सी नस्ल के उपयोग से उन्नत करना चाहिये । इन नस्लों के बारे में प्रमुख जानकारी इस प्रकार है।

गिर– गिर गाय गुजरात के जुनागढ़, भावनगर, राजकोट एवं अमरेली जिलों में पाई जाती है। इनका दूग्ध उत्पादन औसतन 2000 लीटर प्रति दुग्धकाल (300 दिन) होता है लेकिन इनके अच्छे दुधारू पशु 3200 लीटर प्रति दुग्धकाल भी देते हैं, ऐसी स्थिति में चयनित गिर सांडो को कृत्रिम गर्भाधान के माध्यम से प्रजनन में काम में लेने चाहिये। ये गायें लगभग तीन वर्ष की उम्र में गर्भधारण के योग्य हो जाती है एवं लगातार गर्भधारण करने के कारण केवल 4 महिने के आसपास ही सूखी रहती है ।

थारपारकर– ये मुख्य रूप से जोधपुर, जैसलमेर एवं कच्छ में पाई जाती है। इनका औसत दुग्ध उत्पादन प्रति दुग्धकाल 2000 लीटर होता है, लेकिन इसके उच्च क्षमता वाले पशु 4000 लीटर दूध भी देते है । ये गायें लगभग 2.5 वर्ष की उम्र में गर्भधारण के योग्य हो जाती है एवं ये भी लगभग 4 महीने के आसपास ही सूखी रहती है ।

कांकरेज– ये गायें मुख्य रूप से उत्तरी गुजरात में पाई जाती है एवं इनका औसत दूध उत्पादन प्रतिदुग्धकाल 1500 लीटर होता है । इस नस्ल की अच्छी गायें 3500 लीटर दूध देने की क्षमता भी रखते है । ये गाये भी लगभग 2.5 वर्ष की उम्र में गर्भधारण के योग्य हो जाती है एवं 4 महीने के आसपास ही सूखी रहती है ।

जरसी– ये गाय विदेशी है लेकिन भारत में अब अच्छी तरह स्थापित हो चुकी है । इनकी दुग्ध उत्पादन क्षमता अधिक है। ये औसतन 4000 लीटर एक दुग्ध काल में देती है एवं कुछ उन्नत पशु 6000 लीटर दूध भी देते है । ये 2.5 वर्ष में गर्भधारण के योग्य हो जाती है एवं लगभग 4 महीने सूखी रहती है ।

भैंस

अन्य क्षेत्रों की तरह जनजाति क्षेत्रों में भी भैंसों से दुग्ध उत्पादन काफी मात्रा में हो रहा है। राजस्थान के जनजाति क्षेत्रों में लगभग 5 लाख भैंसें है । भैंस पालन वर्तमान में अधिक लाभप्रद सिद्ध हो रहा है क्योंकि इसके दुग्ध में औसतन 7 प्रतिशत वसा होती है एवं दूध नही देनी वाली भैंसों एवं आवश्यकता से अधिक होने वाले नर बच्चों से भी किसानो को अच्छी आमदनी हो जाती है। इन क्षेत्रों में वर्तमान मे सूरती नस्ल या उससे मिलती जुलती भैंसें पाई जाती है। इन भैंसों का नस्ल सुधार मुख्य रूप से मुर्रा नस्ल से करना चाहिये हालांकि सूरती के उन्नत पशु भी इस कार्य में प्रयोग किये जा सकते हैं ।

मुर्रा– मुर्रा नस्ल की भैंसे मुख्य रूप से पंजाब एवं दिल्ली में पाई जाती है । इनका औसत दूग्ध उत्पादन एक दुग्धकाल में 2000 लीटर होता है लेकिन चयनित मादाऐं 3500 लीटर दुग्ध देने की क्षमता रखती है। ये भैंसे 3.5 वर्ष की आयु में गर्भधारण के योग्य हो जाती है एवं लगभग 4 महीने ही सूखी रहती है ।

सूरती– यह नस्ल दक्षिण-पश्चिमी गुजरात एवं दक्षिणी राजस्थान में पाई जाती है। इसकी औसत दूग्ध उत्पादन क्षमता प्रतिदुग्ध काल 1800 लीटर होती है लेकिन इस नस्ल की उन्नत मादाएँ 2500 लीटर तक दूध देती है। ये 3.5 वर्ष की उम्र में गर्भधारण करने की क्षमता रखती है एवं ये लगभग 6 महीने सूखी रहती है ।

भेड़

आदिवासी एवं घुमंतू जातियाँ भेड़ पालन को प्रमुख रूप ये अपनाती है। राजस्थान के जनजातीय क्षेत्र में लगभग 1.5 लाख भेड़ें है। ये मुख्य रूप से सोनाड़ी नस्ल की है। सोनाड़ी नस्ल का वयस्क नर 35-40 किलोग्राम एवं मादा 25-30 किलोग्राम की होती है। अन्य नस्लों से इसमें दुग्घ उत्पादन अधिक है लेकिन इसकी ऊन निम्न गुणवता वाली है। इसकी ऊन के स्टेपल की लम्बाई औसतन 4.5 सेटीमीटऱ होती है । ऊन के रेशे का व्यास 52.5 माईक्रोन एवं मेडूलेशन 88 प्रतिशत होता है । ऊन का वार्षिक उत्पादन भी काफी कम, लगभग 900 ग्राम प्रतिवर्ष, होता है। इस नस्ल को चॉकला, मगरा अथवा मारवाड़ी नस्ल के प्रयोग से उन्नत करना चाहिये ।

चौकला– ये नस्ल मुख्य रूप से चुरू, झुंझुनू, सीकर एवं आसपास के क्षेत्रों में पाई जाती है । इसका वयस्क नर 35-40 किलोग्राम एवं मादाएँ 25-30 किलोग्राम की होती है। लेकिन यह राजस्थान में पाई जाने वाली समस्त नस्लों में ऊन की गुणवता के हिसाब से उत्तम है। इसकी ऊन के स्टेपल की लम्बाई औसतन 5 सीएम होती है । रेशे का व्यास 28 माईक्रोन एवं मेडूलेशन 24 प्रतिशत होता है। ऊन का वार्षिक उत्पादन 3 किलोग्राम होता है ।

मगरा– ये नस्ल मुख्य रूप से बीकानेर, नागौर एवं आसपास के क्षेत्रों में पाई जाती है। इसका वयस्क नर 35-40 किलोग्राम एवं मादाएँ 25-30 किलोग्राम की होती है। ऊन की गुणवता के आधार पर यह अच्छी गलिचा ऊन देने वाली नस्ल मानी गई है । इसकी ऊन चमक के लिये भी जानी जाती है । स्टेपल की औसत लम्बाई 6 सेन्टीमीटर होती है । इस नस्ल में ऊन के रेशे का व्यास लगभग 35 माईक्रोन एवं मेडूलेशन 45 प्रतिशत होता है। वार्षिक ऊन उत्पादन औसतन 2.5 किलोग्राम होता है।

मारवाड़ी– राजस्थान में पाई जाने वाली यह भेड़ों की प्रमुख नस्ल है एवं इसकी संख्या भी अधिक है । यह बहुत मजबूत नस्ल है एवं इसमें चलने की काफी क्षमता है । ये मुख्य रूप से जोधपुर, पाली, नागौर, बाड़मेर आदि क्षेत्रो में पाई जाती है । इसके नर औसतन 30-35 किलोग्राम वजन के एवं मादाएँ 25-30 किलोग्राम वजन की होती है। इस नस्ल के ऊन के स्टेपल की लम्बाई औसतन 6.5 सीएम होती है । रेशे का व्यास 32 माइक्रोन एवं मेडूलेशन 48 प्रतिशत होता है । इनका औसतन ऊन उत्पादन 2 किलोग्राम प्रतिवर्ष होता है ।

बकरी

बकरी पालन जनजाति क्षेत्रों में सबसे सरल, लोकप्रिय एवं लाभप्रद कार्य है। बहुत ही सीमित आवश्यकता में खानपान पहाड़ों पर कही भी पहुँच एवं न्यूनतम रख रखाव में जीवन यापन करने वाला यह प्राणी है। राजस्थान के जनजातीय क्षेत्रों में लगभग 9 लाख बकरियाँ है। राजस्थान के जनजातीय क्षेत्रों में बकरी की नस्ल विशेष का नाम नही आता है लेकिन इसके आसपास एवं अन्य मुख्य नस्ले हैं-सिरोही, मारवाडी, कच्छी एवं मेहसानी ।

सिरोही– यह नस्ल राजस्थान के सिरोही जिले से गुजरात के पालनपुर जिले तक के क्षेत्र में पाई जाती है । इसके नर का औसत वजन 50-55 किलोग्राम एवं मादाएँ 25-30 किलोग्राम की होती है । इससे दूध उत्पाद काफी कम मात्रा में होता है ।

मारवाड़ी– यह नस्ल राजस्थान के मारवाड़ क्षेत्र में पाई जाती है । इसके नर का औसत वजन 35-40 किलोग्राम एवं मादा का 25-30 किलोग्राम होता है। इसका दुग्ध उत्पादन औसतन 700 ग्राम प्रतिदिन होता है ।

कच्छी– यह नस्ल गुजरात के कच्छ जिले में पाई जाती है। इसके नर का औसत वजन 45 किलोग्राम एवं मादा 35 किलोग्राम की होती है। इसका दुग्ध उत्पादन 1700 ग्राम प्रतिदिन होता है।

मेहासानी– यह नस्ल गुजरात के मेहसाना, बनासकांठा, गांधीनगर एवं अहमदाबाद जिलों में पाई जाती है। इसके नर का औसत वजन 35-40 किलोग्राम एवं मादा का 30-35 किलोग्राम होता है। इसका औसत दुग्ध उत्पादन 1300 ग्राम प्रतिदिन होता है।

ऊँट

विश्व में 24 मिलियन ऊँट है जो कि 47 देशों में पाये जाते हैं । ऊँटो की करीब 85% आबादी पूर्वी एवं उत्तरी अफ्रिकी देशों, भारतीय उप-महाद्विपीय देशों एवं मध्य पूर्वी देशों में पाई जाती है। भारत में ऊँटों की संख्या 5 लाख 16 हजार है एवं यह विश्व में उष्ट्र संख्या के हिसाब से 12 वें स्थान पर आता हैं । जिन 47 देशों में ऊँट पाले जाते हैं उनमें से 25 देश प्रतिवर्ष 1.63 मिलियन टन दूध का उत्पादन करते हैं एवं 37 देश प्रतिवर्ष 0.336 मिलियन टन मांस का उत्पादन करते है। 24 देश ऊँट से मांस एवं दूध दोनों का उत्पादन करते है। 13 देश केवल मांस का उत्पादन करते हैं एवं शेष 10 देश जो कि ज्यादातर भारतीय उपमहाद्वीप में हैं उनको न तो मांस न ही दूध उत्पादन करने वाले देशों में रखा गया है, जबकि इस केन्द्र पर किये गये अनुसंधान से पता चला है कि वर्तमान में राजस्थान में प्रतिवर्ष 2300 टन ऊँट का दूध बेचा जा रहा है एवं भारतवर्ष 23.08 हजार टन उष्ट्र दूध प्रतिवर्ष उत्पादन के साथ विश्व में सातवें स्थान पर हैं । हालांकि भारतवर्ष में अधिकारिक तौर पर ऊँट के मांस के उत्पादन के आँकडें नहीं है लेकिन अनअधिकृत तौर पर यह कार्य हो रहा है एवं इससे यह स्पष्ट है कि ऊँट अपने पारम्परिक उपयोग बोझा ढोने के बजाय दूग्ध एवं कुछ हद तक मांस के उत्पादन में काम आ रहा है। विश्व की गरीब जनता के

लिये उष्ट्र दूध एवं मांस प्रोटीन का एक मुख्य स्त्रोत है ।

वर्ष 2007 की पशुगणना के आधार पर भारत में ऊँटों की कुल संख्या 5,16,828 हैं। राजस्थान में 421836, गुजरात में 38454, हरियाणा में 38608, उत्तरप्रदेश में 8959 एवं मध्यप्रदेश में 4456 ऊँट हैं। नस्लवार ऊँटों की संख्या का अनुमान लगायें तो सबसे कम ऊँट मेवाड़ी नस्ल के हैं इनकी अनुमानित संख्या 8,834 है। कच्छी ऊँट 29,505 है। जैसलमेरी 106867 हैं एवं बीकानेरी 306135 हैं। लद्दाख मे दो कुब्बड़ वाले ऊँटों की संख्या 141 है ।

यह सभी को ज्ञात है कि किसी भी जीव की उपयोगिता ही उसे बचाती है। समय के अनुसार इस उपयोगिता में बदलाव आता रहता है। वर्तमान परिस्थितियों में ऊँट इसी प्रकार के एक बडे. बदलाव के दौर से गुजर रहा है जहाँ इसके पुराने उपयोग का महत्व क्षीण होता जा रहा है वही नये उपयोग को खोजना एक चुनौती पूर्ण कार्य हो गया है। फिर भी यह केन्द्र पिछले कई वर्षो से इस पहलू पर कार्य कर रहा हैं । इनमें प्रमुख है दूध उत्पादन को बढाना, ऊँट के दूध को एक स्वास्थ्य-वर्धक पेय के रूप में स्थापित करना, इसकी मानव बीमारियों में उपयोगिता सिद्ध करना, उष्ट्र ऊर्जा से बैटरी चार्ज करना, मानव केन्सर में इसके एन्टीबॉडी का उपयोग ढुंढना, साँप का जहर रोधी बनाना आदि ।

जनजातीय क्षेत्र में ऊँट

राजस्थान के जनजातीय क्षेत्र में लगभग चार हजार ऊँट हैं । इनका मुख्य रूप से उपयोग दूध उत्पादन हेतु हो रहा है । यहाँ की भौगोलिक परिस्थितियों में यह पशु अपनी आहार पूर्ती पहाड़ी क्षेत्रों में पाई जाने वाली वनस्पतियों से करता हैं, इस कारण यह पशु इस क्षेत्र में एक स्थान पर अधिक समय नहीं रह सकता । इस क्षेत्र में गाय-भैंस का दूध उत्पादन आवश्यकता से कम होने के कारण ऊँटनी का दूध काफी मात्रा में बिकता है। इस क्षेत्र में इन ऊँटों का दूध उत्पादन बढ़ाने के लिये चयनित प्रजनन की सख्त आवश्यकता है, ऐसी स्थिती में निम्न उष्ट्र अनुवांशिक स्त्रोतों का उपयोग करते हुये एक समग्र उष्ट्र उत्पादन परियोजना चलाना चाहिये ।

भारतीय उष्ट्र वंश

भारत वर्ष में दो प्रकार के ऊँट पाये जाते हैं। एक कुब्बड़ वाले जिनको वैज्ञानिक भाषा में ड्रोमेडरी कहते हैं एवं दूसरे दो कुब्बड वाले जिनको वैज्ञानिक भाषा में बेक्टीरीयन कहते हैं । कृषि पर राष्ट्रीय आयोग 1976 के अनुसार देश में 9 उष्ट्र नस्ले हैं, जो कि बीकानेरी, जैसलमेरी कच्छी, मारवाड़ी, मेवाड़ी, साँचौरी, सिन्धी एवं रिवेराईन नाम से जानी जाती है। इस केन्द्र ने इस दिशा में काफी कार्य किया है एवं विभिन्न स्थानों पर पाये जाने वाले ऊँटों को नस्ल अनुसार वर्गीकृत करने का प्रयास किया है। उक्त अध्ययन से यह स्पष्ट हुआ है कि वर्तमान में देश में ऊँटों की चार प्रमुख नस्लें है। ये हैं-बीकानेरी, जैसलमेरी, कच्छी एवं मेवाड़ी । इन चारों नस्लों पर मात्रात्मक, मूल्यात्मक तथा आणविक अध्ययन इस केन्द्र ने सफलता पूर्वक किये हैं ।

बीकानेरी– बीकानेरी नस्ल के ऊँट बीकानेर एवं आसपास के जिलों जैसे गंगानगर, हनुमानगढ़, चूरू, झुंझुनू, सीकर एवं पास के राज्य हरियाणा में पाये जाते हैं । इसका प्रजनन क्षेत्र शुष्क है एवं यहाँ काफी कम वर्षा होती है। बीकानेरी ऊँटों को सर्वश्रेष्ठ माना गया है । यह दिखने में सुन्दर एवं हृष्ट-पुष्ट होते हैं । यह मुख्य रूप से बोझा ढ़ोने वाली नस्ल है, लेकिन इसका दूध एवं बाल उत्पादन भी अच्छा है। ये ऊँट अच्छी कद काठी के मजबूत शरीर वाले एवं फूर्तीले होते हैं। इन ऊँटों का रंग गहरा भूरा व काला होता है । इनके सिर पर 'स्टोप' होता है एवं इन ऊँटों के कानों पर, आँखों की पलकों एवं भौंह के ऊपर अधिक बाल होते हैं । इस लक्षण को आम बोल चाल में 'झींपरा' कहतें है। औसतन एक बीकानेरी ऊँट का जन्म के समय वजन 38 किलो एवं वयस्क अवस्था में 600 किलो होता है। ये लगभग 800 ग्राम बाल प्रतिवर्ष पैदा करते हैं, इन बालों की लम्बाई 6.27 सेमी होती है। इनका उपयोग ऊँट पालक कम्बल, शॉल, दरी, रस्सी आदि बनाने में काम लेते हैं ।

जैसलमेरी– जैसलमेरी ऊँट जैसलमेर, बाड़मेर जिलों एवं जोधपुर जिले के कुछ हिस्सो में पाये जाते हैं। ये लम्बी दूरी तय करने एवं दौड़ के लिये उपयुक्त ऊँट हैं । इनका शरीर हल्का एवं गठीला होता है एवं रंग हल्का भूरा होता है। इनका प्रजनन क्षेत्र शुष्क एवं कम वर्षा वाला है । इनका सिर छोटा एवं नाक तीखा होता है। इनमें बालों का उत्पादन 700 ग्राम प्रतिवर्ष होता है एवं बालों की लम्बाई 6 सेमी होती है । इनका जन्म के समय वजन 36 किलो एवं वयस्क अवस्था में वजन 595 किलो होता है ।

कच्छी– यह नस्ल गुजरात में कच्छ एवं आसपास के क्षेत्रों में पाई जाती है। यह दूध उत्पादन एवं बोझा ढ़ोने के लिये उपयुक्त है। इसका प्रजनन क्षेत्र दल-दल एवं नमी वाला है। इनका रंग गहरा भूरा होता है। इन ऊँटों का जन्म के समय वजन 36 किलो एवं वयस्क अवस्था में 550 किलो होता है। इनके बाल घुंघराले एवं छोटे होते हैं । इनके बालों का वार्षिक उत्पादन 600 ग्राम होता है एवं बालों की लम्बाई 4.42 सेमी होती है ।

मेवाड़ी– यह नस्ल दक्षिणी राजस्थान एवं पास में लगते हुए मध्यप्रदेश में पाई जाती है। इसका प्रजनन क्षेत्र पहाड़ी है। यहाँ अपेक्षाकृत वर्षा अधिक होती है एवं हरियाली भी ज्यादा है। ये ऊँट थोड़े छोटे होते हैं एवं इनका शरीर गठीला होता है। इनके पीछे के पुट्ठे मजबूत होते हैं एवं पैरों का तला कड़क होता है। ये पहाड़ी क्षेत्र में सामान लाने-ले जाने के लिये उपयुक्त हैं। ये ऊँट दूध उत्पादन में भी बहुत अच्छे हैं एवं वर्तमान में इनको दूध उत्पादन के लिये ही पाला जा रहा है। इनके शरीर पर जिस प्रकार के बाल पाये जाते हैं वे इनको मधुमक्खियों एवं अन्य कीड़ों के काटने से बचाते हैं । ये ऊँट रंग में हल्के भूरे से सफेद होते हैं ।

दो थूई वाले ऊँट– ये ऊँट भारत में जम्मु-कश्मीर राज्य के लद्दाख क्षेत्र की नुब्रा घाटी में पाये जाते हैं । इनकी अनुमानित संख्या 141 है । यह कद में छोटे, वजन में हल्के एवं भूरे रंग के होते हैं। इनका प्रजनन क्षेत्र शुष्क एवं यहाँ तापमान गर्मियों में बहुत अधिक एवं सर्दियों में बहुत कम हो जाता है। यह क्षेत्र समुद्रतल से लगभग 10000 फीट की ऊँचाई पर है एवं यहाँ भी ये पहाडों में लम्बी दूरी तय करने

के काम आते हैं । इनके शरीर पर बाल अधिक होते हैं, जो कि इनको सर्दियों में कम तापमान से बचाते हैं ।

विश्व परिदृश्य को देखते हैं तो पता चलता है कि इनकी कुल आबादी 2 मिलियन के आसपास है। एक अनुमान के अनुसार करीब 800 ऊँट उत्तर पश्चिमी चीन व मंगोलिया में जंगली अवस्था में हैं। दो कूबड वाले ऊँटों की कुछ आबादी जंगली अवस्था में गोबी रेगिस्तान में भी है। एक अध्ययन के अनुसार जंगली एवं पालतु दो कुब्बड वाले ऊँटो में करीब 3 प्रतिशत अनुवांशिकी विषमताएँ हैं ।

वर्तमान में भारत में इनका उपयोग सफारी के लिये हो रहा है। लेह में एक छोटा फार्म इनके लिये बनाया गया है। यहाँ करीब 20 ऊँटों को रखा जाता है एवं इसके लिये केन्द्र सरकार ने आर्थिक सहयोग दिया है । इन ऊँट पालकों की प्रमुख समस्या है कि इनके खाने के लिये वर्ष में कुछ महीने ऐसे होते हैं जब कुछ नही होता है एवं उस वक्त इनको बचाने में काफी दिक्कत आती है । इसी वक्त बच्चों का पालन पोषण भी कठिन हो जाता है । कुछ बच्चे नदी में डुबकर मर जाते हैं । सिल्क रूट बन्द होने के बाद से इन ऊँटों का बहुत ही छोटा समूह भारत में रह गया था, इसलिये इनमें अन्तः-प्रजनन काफी मात्रा में हो गया है । अतः इनके अनुवांशिक सुधार के लिये मंगोलिया या चीन से कुछ ऊँट लाने चाहियें । इस सम्बन्ध में राष्ट्रीय उष्ट्र अनुसंधान केन्द्र ने एक परियोजना जिनोम प्लेटफार्म में भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद् को दी है एवं दूसरी परियोजना नेटवर्क प्रोजेक्ट के रूप में केन्द्र ने अपने पंचवर्षीय कार्यक्रम मे सम्मिलित की है ।

उष्ट्र डेयरी

राष्ट्रीय उष्ट्र अनुसंधान केन्द्र ने अपने यहाँ कराये गये अध्ययन को आगे बढ़ाते हुए इस क्षेत्र में काफी कार्य किया हैं। इस सम्बन्ध में केन्द्र में मेवाड़ी नस्ल के ऊँट लाये गये एवं इनका उन्नत विधि से प्रजनन करवाया गया । उष्ट्र दूध डेयरी की स्थापना की गई एवं इसके औषधीय उपयोग पर कार्य किया गया । राजस्थान सहकारी डेयरी संघ के माध्यम से भी इसको देश के विभिन्न शहरों में पहुँचाया गया । विभिन्न प्रकार के उत्पाद भी बनाये गये, जिनमें इसकी कुल्फी काफी लोकप्रिय हुई है। स्थानीय नस्लों की दुग्ध उत्पादन क्षमता को बढ़ाने के लिये एक परियोजना हाल ही में शुरू की गई है । इसके तहत अध्ययन से पता चला है कि एक सांड 16 महीने तक लगातार दूध दे सकती है । औसतन प्रतिदिन उत्पादन 7 लीटर एवं एक दूधकाल में 3400 लीटर दूध देती है । कुछ अच्छी मादाएँ 10.12 लीटर दूध प्रतिदिन देती हैं जिनका उपयोग चयनित प्रजनन में कर अनुवांशिक सुधार किया जा सकता है ।

उष्ट्र कार्य-क्षमता

ऊँट अपनी कार्य क्षमता के कारण ही सदियों से पाला जा रहा है । यह रेगिस्तान में खेतो में कार्य करने, बोझा ढोने एवं सवारियाँ ढोने के काम में लम्बे समय से आ रहा है। रेगिस्तान में कार्य करने के लिये यह सबसे उपयुक्त पशु है, क्योंकि यह कम व अधिक तापमान में कम पानी पी कर भी लम्बी दूरी तय कर सकता है । बीकानेरी नस्ल इस कार्य के लिये सर्वोत्तम मानी गई है । इस केन्द्र पर

किये गये प्रयोगों से पता चलता है कि एक ऊँट अपने शारीरिक वजन का 17 से 22 प्रतिशत कार्यबल पैदा करना है । परोक्ष चयन परियोजना चलाई गई एवं पिछले दस वर्षों में इस पद्धति से उन्नत ऊँट पैदा किये गये एवं प्रजनन क्षेत्र में कार्य क्षमता बढाने के लिये बाँटे गये।

उष्ट्र बाल

हालाँकि ऊँट के बालों का महत्व मात्रात्मक दृष्टिकोण से कम है एवं वर्तमान में ऊँट पालक अपने घर में काम आनेवाली वस्तुएँ ही बनाता है । एक अनुमान के अनुसार भारत 2 से 2.5 लाख किलो उष्ट्र बाल का उत्पादन होता है लेकिन इनको इक्कठा करना एक खर्चीला कार्य है । वर्तमान में प्रतिव्यक्ति आय एवं बाहर के देशों से आने वाले यात्रियों की संख्या में वृद्धि को देखते हुए इनका उपयोग हतकर्घा लघु उद्योगों में कर सजावटी सामान बनाया जा सकता है ।

उष्ट्र चमडा एवं हड्डी

उष्ट्र चमडे का उपयोग पहले के समय में भी उष्ट्र पालक घरों में करते थे लेकिन अब इसका उपयोग सजावटी एवं काम में आने वाली कई वस्तुओं को बनाने में हो रहा है । इसी प्रकार ऊँट की हड्डियों से खिलौने बनाये जाने लगे हैं जो कि हाथी-दाँत के एवज के रूप में देखे जाने लगे हैं ।

उष्ट्र दौड़

उष्ट्र दौड़ ऐसा क्षेत्र है जिसमें हमें काफी कार्य करने की जरूरत है । मध्यपूर्वी देशों में उष्ट्र दौड बहुत लोकप्रिय है एवं इसके लिये वहाँ चयनित प्रजनन कराया जाता है । चूँकि प्रतिव्यक्ति आय इस देश में भी काफी बढ़ गई है एवं एक आम भारतीय अब अपने मंनोरंजन के लिये पहले से काफी अधिक पैसा खर्च करता है । भारतीय ऊँटों की जैसलमेरी नस्ल इस कार्य के उपयुक्त है । उष्ट्र दौड़ से उष्ट्र पालक काफी पैसा कमा सकते हैं ।

विश्व परिद श्य

विश्व परिदृश्य में अगर ऊँटों की संख्या एवं इनके उत्पाद को देखें तो पता चलता है कि वर्ष 1961 से वर्तमान ऊँट संख्या लगभग दोगुनी है एवं दुग्ध उत्पादन एवं मांस उत्पादन करीब तीन गुना हो गया है । उष्ट्र दूध एवं मांस गरीब जनता के लिये प्रोटीन का एक अच्छा स्त्रोत है । ऐसी स्थिती में हमें उष्ट्र दूध उत्पादन पर विशेष ध्यान देने की जरूरत है । मानव की उष्ट्र द्वारा आवश्यकता पूर्ति ही इसकी संख्या में निरन्तर वृद्धि का कारण है।

❑❑❑

जनजातीय विकास में पशुपालन का योगदान

सज्जन सिंह
प्रधान वैज्ञानिक
राष्ट्रीय उष्ट्र अनुसंधान केन्द्र, बीकानेर

हमारा देश विविधिता का देश है। यहां समाज को जाति, धर्म के आधार पर बांटा गया है। अनेकों वर्षो से शोषित व पिछड़े लोगों के उत्थान के लिए हमारी सरकार प्रयासरत है। पिछड़ों में अनुसूचित जाति व जन-जाति को विशेष दर्जा दिया गया है। भारतीय समाज में अत्यंत अलाभान्वित अर्थात अनुसूचित जनजातियों के समेकित सामाजिक-आर्थिक विकास पर एक समन्वित और आयोजित तरीके से अधिक केन्द्रित ध्यान देने के उद्देश्य भारत सरकार अनेक कार्यक्रम आयोजित करती है। भारत सरकार का जन जातीय कार्य मंत्रालय ने जनजातीय कल्याण और विकास पर अधिक केन्द्रित ध्यान के लिए संविधान में अनुसूचित जनजातियों के शैक्षणिक व आर्थिक विकास के लिए तथा इनके सामाजिक अन्याय तथा शोषण से बचाने के लिए कई उपाय बताए गए हैं। जन जातीय बहुल उतरपूर्वी राज्य जैसे अरूणाचल प्रदेश, मेघालय मिजोरम, नागालैण्ड और केन्द्र शासित प्रदेश लक्ष्यद्वीप तथा दादर नगर हवेली में जन जातीय उपयोजना की आवश्यकता नहीं है क्योंकि इन राज्यों में के.शा.प्र.की संपूर्ण योजना ही अनुसूचित जन जातियों के लिए है। जन जातिय उपयोजना अन्य राज्यों के लिए है जहां अनुसूचित जन जाति की संख्या बेतरतीब है।

इन लक्ष्यों को प्राप्त करने के लिए जन जातीय उप-योजना बनाई गई है जो कि पांचवी पंचवर्षीय योजना के आरंभ में लागू की गई। इसके तहत यह सुनिश्चित किया गया कि राज्य सरकारों की योजनाओं/प्रस्तावों, केन्द्रीय मंत्रालयों/विभागों, वित्तीय एवम् विकास संस्थाओं को जनजातीय विकास के लिए पर्याप्त धन जारी हो सकती है। इस जन जातीय उपयोजना का मुख्य उद्देश्य यह है कि राज्यों/केन्द्र शासित प्रदेशों को धन, जन जातीय जनसंख्या के आधार पर दिया जाए। इसी कड़ी में हमारी संस्थान को भी दस लाख रूपये जन जातीय उत्थान के आवंटित किए गए। जन जातीय लोग भौगोलिक व सांस्कृतिक दृष्टि से समाज की मुख्य धारा से कटे हुए है। इन लोगों की शैक्षणिक व आर्थिक स्थिति दयनीय है। शिक्षा व अवसरों के अभाव में यह लोग जटिल परिस्थितियों में अपना जीवन यापन करते हैं। जन संख्या के आधार पर यह मध्यप्रदेश, छतीसगढ़, महाराष्ट्र, उड़ीसा, झारखण्ड व गुजरात के कठिन क्षेत्रों में पाये जाते हैं। अनुसूचित जन जाति पूरे देश में मुख्यतः जंगली एवं पहाड़ी क्षेत्रों में फैले हैं। इन प्रदेशों से लगते प्रदेशों में भी इनकी उपस्थिति दर्ज है। राजस्थान में स्थित होने के कारण हमारा केन्द्र राजस्थान के जन जातीय क्षेत्रों डूंगरपुर व बांसवाड़ा पर जन जातीय उपयोजना के तहत जन जाति की आवश्यकतानुसार इन क्षेत्रों में अपने कार्यक्रम आयोजित कर रहा है। जन जातीय लोगों का मुख्य व्यवसाय कृषि व पशुपालन है, अतः पशुपालन के बारे

में जन जाति के लोगों को जानकारी व प्रशिक्षण उपलब्ध कराने के उद्देश्य से प्रदेश के इन इलाकों में अपना पड़ाव लगा रहे हैं। यहां कुछ जन जातियां अभी भी भोजन इकट्ठा करती है। कुछ अन्य अस्थिर खेती है जबकि कुछ अन्य पुराने कृषि साधनों का प्रयोग करते हैं। यर्थात में अनुसूचित जन जाति की पहचान उनके पिछड़ेपन, आदिम गुणों, सांस्कृतिक एवं भौगोलिक अलगाव व अन्य बड़े समुदायों से सम्पर्क के आधार पर किया जाता है। यह आधार संविधान में लिखित नहीं है परंतु पूर्णमान्य है। इस पिछड़ापन को दूर करने के लिए अनेकों योजनाएं व नीतियां तैयार व लागू की गई है। जनजातीय उपयोजना क्षेत्रों जैसे कृषि, बागवानी, सिंचाई, भू-संरक्षण, पशुपालन शिक्षा, सहकारिता, मछली पालन तथा छोटे उद्योगों के लिए दी जाती है। इनके अलावा व्यक्ति विकास के लिए आश्रम स्कूल, जन जाति शोध संस्थान, व्यवसायिक प्रशिक्षण, बालिका शिक्षा के माध्यम से शिक्षा का प्रचार-प्रसार किया जा रहा है। आवासीय स्तर पर लड़के-लड़कियों के लिए छात्रावास, अनाज भण्डारण के लिए गोदाम, पुस्तकालय आदि ढांचागत निर्माण कार्य किये जा रहे हैं। इस क्षेत्र में प्राकृतिक संपदा व स्रोत को देखते हुए जन जातीय युवाओं की दक्षता को बढ़ाने के लिए स्वरोजगार योजना चालू की गई है। शिक्षा व प्रशिक्षण के अभाव में जनजातीय युवा आरक्षण का लाभ उठाने में भी असमर्थ है। इसलिए रोजगार व शिक्षण संस्थाओं जैसे अभियांत्रिकी व चिकित्सा जैसे तकनीकी एवम् व्यवसायिक पाठयक्रम में आरक्षित जगह बिना उपयोग किए ही रह जाती है। शैक्षणिक योग्यता में ढील देने के बाद भी अनुसूचित जाति के विद्यार्थी प्रवेश प्राप्त करने के बावजूद कार्यक्रम को ठीक से चलाने में कठिनाई महसूस करते हैं। अतः इन युवाओं की शैक्षणिक दक्षता व कार्य कुशलता को बढ़ाकर समाज की मुख्य धारा में शामिल करने के लिए जन जातीय उपयोजना के तहत हमारा संस्थान यह कार्यक्रम आयोजित कर रहा है।

पशुधन का योगदान व महत्व

भारतीय ग्रामीण अर्थव्यवस्था व आजीविका की रीड़ पशुधन व कृषि है। कुल घरेलू सकल उत्पाद का 9 प्रतिशत पशुधन आधारित है। यह भारत की अर्थव्यवस्था में उभरता हुआ क्षेत्र है। कभी कृषि का सहायक व्यवसाय माना जाने वाला यह व्यवसाय आज स्वावलम्बी व आत्मनिर्भर है। जन जातीय क्षेत्रों में चरागाह व कृषि तथा वन सह उत्पादों की उपलब्धता के कारण पशुपालन एक विशेष स्थान रखता है। अधिकतर घरों में एक या दो पशुओं अथवा पशु प्रजातियों का पाया जाना लगभग अनिवार्य है जिससे जन जातीय लोग अपना भरण-पोषण चलाते हैं। बांसवाड़ा ग्रामीण शिक्षा की दृष्टि से साक्षरता पुरुष (60.45 प्रतिशत), महिला (28.43 प्रतिशत) कुल 44.63 प्रतिशत (स्रोत जन गणना 2001) काफी पिछड़ा हुआ क्षेत्र है। जन जाति में यहां भील समुदाय के लोग जो खारो, मोटो और भालो धर्म के अनुयायी है, परिश्रमी व ताकतवर है। तीज त्यौहार व मेलों में पशुधन का महत्व स्पष्ट झलकता है। होली, दीवाली व आमलीग्यारस त्यौहारों में मुख्य है। यहां गरीबी रेखा के नीचे गुजर-बसर करने वाले लोगों की संख्या अधिक है। इस क्षेत्र में मक्का, गेंहूँ, कपास व चना मुख्य फसलें हैं। प्राकृतिक स्रोत में ग्रेफाईट, सोप स्टोन, डोलामाईट, रोक फास्फेट, चूना व संगमरमर की विभिन्न खाने हैं जहां लोग मजदूरी कर अपनी आजीविका कमाते हैं। भारवाहक पशु इस कार्य में विशेष योगदान देते हैं। क्षेत्र का 20 प्रतिशत वन है जिनकी अधिकतर कटाई हो चुकी है और कृश्य मात्र नग्न पहाड़ियों का है। डूंगरपुर का क्षेत्र तुलनात्मक रूप से बांसवाड़ा से बेहतर

है। यहां जनसंख्या का लगभग 64 प्रतिशत जन जाति है जो कि पशु पालन व कृषि आधारित है। जन जातीय लोग ऊँचे स्थान पर झोपड़ियों में रहना पसंद करते हैं जहां से अपने खेतों की रखवाली कर सके तथा शिकार व मछली पकड़ना सम्भव हो सके तथा परम्परागत असामाजिक कार्यों चोरी में संलिप्त पालवी भील जाति के लोग भी मुख्यधारा से जुड़ने लगे है। शिक्षा नाममात्र है। खेती वर्षा आधारित है। मानसून विफलता के समय पेड़ों की कटाई कर लकड़ी बेच आजीविका कमाते हैं। इन क्षेत्रों में पाये जाने वाले पशुधन में गाय, भैंस, भेड़ व बकरी आदि प्रमुख है जिनकी संख्या बांसवाड़ा (1397839 स्रोत 18 वीं पशु गणना 2007) तथा डूंगरपुर (1163747) है जो यहां पशु महत्ता को दर्शाती है। पशुओं के उपचार सम्बंधी यहां पशु अस्पताल, डिस्पेंसरी आदि का जाल बिछा हुआ है जो कि बांसवाड़ा में 110 व डूंगरपुर में 140 है। राज्य व केन्द्र सरकार द्वारा संचालित अनेकों योजनाएं जैसे कामधेनू बीमा योजना, गौपालक बीमा योजना, गौरक्षक बीमा योजना, भैंस बीमा योजना, ऊँट बीमा योजना, ऊँट पालक बीमा योजना, ऊँट रक्षक बीमा योजना आदि प्रमुख है। सरकार इन जन जातीय क्षेत्रों के लिए विशेष पशुधन लागू कर पशुपालन को बढ़ावा दे रही है। हमारा प्रयास भी नीतियों के अनुरूप पशुपालन को उन्नत तकनीकों से विकास के पथ पर बढ़ाना है। अतः सभी जन जातीय भाइयों से अनुरोध है कि पशुपालन अपनाकर अपनी आर्थिक सामाजिक स्थिति में सुधार कर देश को उन्नत व प्रगतिशील बनाने में अपना महत्वपूर्ण योगदान दें।

❑❑❑

शुष्क क्षेत्र में बकरियों के लिये उन्नत पशु आवास व्यवस्था

ए. के. पटेल
प्रधान वैज्ञानिक
केन्द्रीय शुष्क क्षेत्र अनुसंधान संस्थान, जोधपुर

प्रदेश के शुष्क और अर्ध शुष्क क्षेत्रों में छोटे, सीमांत और भूमिहीन परिवारों के जीवनयापन और रोजगार के लिये बकरी पालन एक मुख्य आधार है। क्योंकि यहाँ के विरल चारा संसाधन तथा विषम जलवायु की परिस्थितियों में जहॉ अन्य पशु प्रजातियों का निर्वाह मुश्किल से होता है वहाँ बकरी बड़ी आसानी से अपना निर्वाह कर लेती है तथा कई तरह के सह-उत्पाद जैसे दूध, मांस, रेशे, खाल एवं खाद आदि से पशुपालक का आय देती है। राजस्थान के मरू क्षेत्र में बकरियों की संख्या पिछले चार दशकों में 140 आतिशत तक बढ़ गयी है। 2003 पशुगणना के अनुसार बकरियों की संख्या 83.7 लाख है। मरू क्षेत्र में कुल दुग्ध उत्पादन व मांस उत्पादन का 15 प्रतिशत व 53.8 प्रतिशत हिस्सा क्रमशः बकरियों से प्राप्त होता है, परन्तु इस क्षेत्र की विषम जलवायु की वजह से भीषण गर्मियों व सर्दियों के मौसम में बकरियों का दुग्ध उत्पादन व बच्चो की बढ़वार प्रभावित होती है। नवजात बच्चों में अधिक ठण्ड व ठण्डी हवाओं की वजह से मृत्युदर भी अधिक होती है। यह देखा गया है कि यदि बकरियों को बंद आवास जिसमें खुली जगह भी हैं, में रखा जाये तो विषम जलवायु परिस्थितियों में भी बकरियों का उत्पादन कम नहीं होता है।

मरूस्थल की जलवायु को देखते हुए केन्द्रीय शुष्क क्षेत्र अनुसंधान संस्थान, जोधपुर में एक ''उन्नत पशु आवास'' का विकास किया गया है। जिसमें पशु गर्मी, सर्दी व वर्षा के मौसम की विषम परिस्थितियों में आराम से रहता है।

उन्नत पशु आवास की विशेषताएं

यह आवास व्यवस्था पूर्व-पश्चिम दिशा आधारित बनायी गयी है। जिसमें आवास का मुख पूर्व दिशा की तरफ होता है एवं पीछे का हिस्सा पश्चिम की तरफ होता है। दक्षिण व उत्तर दिशा में इस आवास का लम्बा हिस्सा होता है। इस आवास के मुख्य बिन्दु निम्न प्रकार है।

1. आवास की लम्बाई 60', चौड़ाई 16' व ऊॅचाई मध्य से 10' एवं किनारे से 7'
2. आवास का आकार आयताकार एवं छत झोपड़ीनुमा होती है।
3. आवास का लम्बा हिस्सा दक्षिण की तरफ से खुला होने से सर्दियों के मौसम में सूर्य दक्षिणायन होने के वजह से पूरे दिन सूर्य की किरण एवं प्रकाश अन्दर आते है। इसके विपरीत, गर्मियों के मौसम में सूर्य की किरणें आवास में बिल्कुल नहीं आती हैं।
4. आवास का दूसरा लम्बा हिस्सा उत्तर की तरफ रखा गया है जो कि दक्षिण की तुलना में कम खुला होता है। जिसको सर्दियों में प्लास्टिक शीट द्वारा ढ़क दिया जाता है। जिससे उत्तर से आने

वाली ठण्डी हवा को आवास में आने से रोका जा सके।

5. आवास की उत्तर दिशा वाली दीवार के अन्दर की तरफ चारे व दाने के लिये खेली बनायी गई है। जिसकी चौड़ाई 14'' एवं गहराई 6'' है। इस खेली के आगे वाली छोटी दीवार पर लोहे के पाईप लगाये गये जिससे बकरी अपनी गर्दन डालकर चार दाना खा सके परन्तु उसमें कूद ना सकें। जिससे चारे को खराब होने से बचाया जा सके।

6. आवास की छत झोपड़ीनुमा दो तरफ ढ़लान वाली है। जिसकी मध्य से ऊँचाई 10' एवं किनारे से 7' है। यह छत सीमेन्ट की 1.3 मीटर वाली चादरों द्वारा बनी है। ऊपर से आने वाली गर्मी व ठण्ड के बचाव के लिये छत के नीचे 4'' मोटा घास-फूस का छप्पर लगाया गया है। यह घास-फूस का छप्पर छत के नीचे लगे होने के कारण बिना रख रखाव के लम्बे समय तक चलता है।

7. आवास की फर्श को कच्चा रखा गया है मिट्टी में मुड्ड मिलाकर फर्श बनाई गयी है जो कि गर्मी एवं सर्दियों दोनो मौसम में आरामदायक रहती है। आवास में पर्याप्त खुला होने की वजह से हवा का संचार पूर्ण रूप से होता है जिसके कारण आवास में नमी नहीं रहती है।

8 आवास के चारों तरफ पर्याप्त मात्र में खुली जगह है। जिसमें पशु अपनी इच्छानुसार व मौसम के अनुरूप विचरण कर सकता है।

9. पीने के पानी की व्यवस्था पशु आवास के बाहर खुले हिस्से में रखी है। जिससे किसी भी प्रकार से आवास में गीलापन व नमी नहीं रहती है।

इस प्रकार के आवास की व्यवस्था करके किसान भाई अपने पशुओं का दुग्ध उत्पादन बढ़ा सकते है व विषम मौसम में पशुओं की मृत्यु से होने वाली हानि को भी रोका जा सकता है।

पूर्व पश्चिम दिशा आधारित उन्नत पशु आवास

आवास के अन्दर सर्दियों के मौसम में प्रचुर मात्रा में सूर्य किरणें व धूप

आवास में गर्मी को रोकने के लिये छत के नीचे घास-फूस का छप्पर

आवास में आराम से चारा दाना खाती बकरियां

उन्नत पशु आवास के लाभ :

1. मरूक्षेत्र में पूर्व-पश्चिम दिशा वाले आवास उत्तर-दक्षिण दिशा वाले आवास की अपेक्षा अधिक आरामदायक होते है। पूर्व-पश्चिम दिशा वाले आवास सर्दियों में गरम व गर्मियों में ठण्डे रहते है। क्योंकि इस आवास में सर्दियों में धूप आवास के अन्दर एक लम्बे समय तक आती है एवं गर्मियों में धूप बिल्कुल अन्दर नहीं आती है।

2. मरू क्षेत्र में गर्मियों के मौसम में हवा दक्षिण-पश्चिम दिशा की तरफ से 10-20 कि.मी. प्रति घण्टा की रतार से चलती है जो आवास को हवादार व ठण्डा बनाने में मददगार होती है।

3. पशु आवास की छत के नीचे लगे 4'' मोटे घास-फूस के पैनेल (छप्पर) की वजह से ऊपर से आने वाली गर्मी में बहुत कमी आती है। क्योंकि वातावरण की कुल गर्मी का 30 प्रतिशत हिस्सा अकेले छत के माध्यम से आता है।

4. चारे व दाने की खेली की विशिष्ट आकार (डिजाईन) होने के वजह से बकरियॉ चारे व दाने को आराम से खाती है एवं खराब नहीं कर पाती है।

5. संस्थान में हुये प्रयोगो के आधार पर यह देखा गया है कि गर्मियों के मौसम में इस आवास का अन्दर का तापमान बाहरी तापमान की अपेक्षा 2-4^0 से कम पाया गया एवं सर्दियों में आवास का अन्दर का तापमान बाहरी न्यूनतम तापमान से 2^0 से अधिक पाया गया। इसके अतिरिक्त सर्दियों में ठण्डी हवाओं का बहाव आवास में रोक दिया जाता है।

6. प्रयोगो के आधार पर यह देखा गया है कि उक्त पशु आवास में रहने वाली बकरियों का कुल ब्यात का दुग्ध उत्पादन 22 प्रतिशत अधिक पाया गया है। इसके अतिरिक्त जिन बकरियों के बच्चों को उन्नत आवास में रखा गया उन्होने सामान्य पशु आवास के बच्चों की तुलना में 18 प्रतिशत अधिक बढ़वार दिखाई।

इस तरह का आवास किसान व पशुपालक स्थानीय स्तर पर उपलब्ध सामग्री से भी बना सकते है और अपने पशुओं को उन्नत आवास में रखकर उनको मौसम की प्रचण्डता से बचाकर उनसे अधिक उत्पादकता ले सकते है। इसके अतिरिक्त मौसम की विषमताओं की वजह से होने वाली पशुओं की मृत्यु दर को भी कम किया जा सकता है।

❑❑❑

बकरी पालन और उसका स्वास्थ्य प्रबंधन

जी. शिवा कुमार[1], श्याम सिंह दहिया[1] एवं जी. नागराजन[2]

[1]वैज्ञानिक, [2]वैज्ञानिक वरिष्ठ वेतनमान

राष्ट्रीय उष्ट्र अनुसंधान केन्द्र, बीकानेर

बकरी पालन का मुख्य उद्देश्य मांस, दूध, और बाल के माध्यम से लाभ पाना है। बकरी का विपणन बकरी के पालने वालों, रेस्तरां मालिकों और मांस बेचने वालों एवं मूल्य संवर्द्धन करने वालों को बेचने से है। बकरी पालन प्रबंधन प्रणाली और संसाधनों पर निर्भर करता है, जिनमें मुख्य हैं–

- ❑ भूमि
  - ❑ मात्रा
  - ❑ गुणवत्ता, प्रकार
- ❑ श्रम
  - ❑ मात्रा
  - ❑ वितरण
  - ❑ प्रबंधन की क्षमता
- ❑ विभिन्न उत्पादन वातावरण
  - ❑ प्रसूति
  - ❑ चरागाह इत्यादि

बकरी रोमंथी हैं ।

एक आदर्श चारे में, मोटा चारा (चरागाह, रेंज, घास) बकरियों के लिए आहार में मुख्य रूप से शामिल करना चाहिए । बकरी चयनात्मक चराई करती हैं तथा वे चराई के लिए कोंपल चरना पसंद करती है।

बकरियों की मुख्य स्वास्थ्य समस्याएं

(1) **आंतरिक परजीवी कीड़े**-जिनमें कि मुख्य रूप से निम्नलिखित प्रमुख है

- ❑ पेट के कीड़े - बार्बर पोल कीड़े
- ❑ कोकीडिया बकरियों के बच्चों में एक गंभीर समस्या हो सकती है
- ❑ टेपवर्म

- ❑ फेफडो के कृमी
- ❑ जिगर फ्लूक

(2) **खुर से सबंधित समस्याएं**

फुट रूट, फुट स्काल्ड

(3) **सांस की समस्याएं**

- ❑ निमोनिया

(1) संक्रामक

- ❑ वाइरस
- ❑ जीवाणु
- ❑ परजीवी

संक्रामक रोग अक्सर कीटोसिस दूध बुखार, ब्लोट, अम्लरक्तता, आदि के साथ होते हैं।

(2) गैर संक्रामक

- ❑ फेफड़े के कृमी
- ❑ नाक बॉट
- ❑ कम हवादार स्थान
- ❑ महीन दाना-चारा
- ❑ तनाव

(4) **पाचन समस्याएं**

बकरियों में दस्त के कई अलग अलग कारण होते हैं-

❑ संक्रामक-बैक्टीरियल, वायरल और प्रोटोजोआ

❑ गैर संक्रामक- यह पोषण, प्रबंधन और तनाव से जुड़े हो सकते है। आमतौर पर पाचन समस्याएं (ब्लोट, अम्लरक्तता) आहार में अचानक परिवर्तन, की वजह से होती है ।

उपचार / नियंत्रण

(1) आंतरिक परजीवी नियंत्रण :

- ❑ आवर्त्तन चराई
- ❑ विभिन्न पशु प्रजातियों की चराई
- ❑ शून्य चराई
- ❑ ब्राउजिंग
- ❑ चराई क्षेत्रों की ऊंचाई का प्रबंधन
- ❑ वैकल्पिक चारा
- ❑ आनुवांशिक चयन (भीतर और नस्लों के बीच में)
- ❑ चयनित कीटनाशक

- ❑ उचित दवा का उपयोग

(2) निवारण : बिमारियों के निवारण हेतु निम्नलिखित बातों का ध्यान जरुरी है .

- ❑ अच्छी सफाई
- ❑ पानी, खाद्य या खनिज में कोकूसीडीयोस्टेटस का प्रयोग करें
- ❑ सल्फा दवाओं से उपचार

पाचन समस्याओं के उपचार

(1) दस्त

- ❑ पेप्टो-बिस्मोल सबसेली साइक्लेट
- ❑ केयोपक्टेट कीयोलिन
- ❑ प्रोबायोटिक्स (दही)
- ❑ इलेक्ट्रोलाइट्स
- ❑ न्यूट्री ट्रेंच- (मकई का तेल, करो सिरप, गुड़)

(2) ब्लोट, अम्लरक्तता

- ❑ वनस्पति तेल
- ❑ खनिज तेल
- ❑ बेकिंग सोडा

टीकाकरण

प्रजनन झुंड में इन्ट्रोटोक्सीमिया और टिटनेस के खिलाफ टीका लगाया जाना चाहिए। वयस्क प्रजनन नर में वर्ष में एक बार टीका लगाया जाना चाहिए। प्रजनन मादा में संतति पैदा करने से 4 से 6 सप्ताह पहले टीका लगाया जाना चाहिए ताकि कुछ प्रतिरक्षा उनके संतति को पारित हो जाए। एक अतिरिक्त टीका प्रजनन से 4 से 6 सप्ताह पहले लगाया जा सकता है और जन्म के बाद, बच्चों में 8 सप्ताह की उम्र में टिटनेस इन्ट्रोटोक्सीमिया (अधिक खाने से रोग) और के खिलाफ टीका लगाया जाना चाहिएएवं उम्र के 12 सप्ताह में एक बूस्टर लगाया जाना चाहिए।

प्रबंधन

प्रजनन योग्य पशुओं के खुरों की ट्रिमिंग करने वाली एक कसरत से प्रजनन सफलता में वृद्धि होती है। बकरों में खास तौर पर बढे हुए खुर प्रजनन में बाधा पहुचा सकते हैं। प्रजनन के उपयोग में लाये जाने वाले पशुओं के खुरो का नियमित तौर पर ख्याल रखना चाहिए।

❑❑❑

राजस्थान में ऊँट पालन एवं प्रबन्धन

उमेश कुमार बिस्सा[1], फतेह चन्द टूटेजा[1] एवं शरत चन्द्र मेहता[2]

[1]वरिष्ठ वैज्ञानिक, [2]प्रधान वैज्ञानिक

राष्ट्रीय उष्ट्र अनुसंधान केन्द्र, बीकानेर

ऊँट भारत के उत्तर पश्चिम भाग का महत्वपूर्ण एवं बहु उपयोगी पशु है। ऊँट राजस्थान की सांस्कृतिक धरोहर के रूप में भी पहचाना जाता है। भारत में ऊँटों की संख्या लगभग 5.17 लाख है जिसमें से राजस्थान में लगभग 4.30 लाख तथा उसके बाद हरियाणा एवं गुजरात में ज्यादा ऊँट पाए जाते हैं। इन राज्यों के सीमावर्ती राज्यों में पास के इलाकों में भी ऊँट पाए जाते हैं। देश में मशीनीकरण, चरागाह की कमी, शिक्षा एवं आधुनिकीकरण आदि कारणों से ऊँटों की संख्या में लगातार गिरावट आ रही है परंतु आज भी रेगिस्तानी इलाकों में ऊँट का अपना महत्व है। राजस्थान में ऊँट सभी जिलों में पाए जाते हैं लेकिन ज्यादा ऊँट राजस्थान के उत्तर पश्चिम जिलों में पाए जाते हैं। राजस्थान में मुख्य रूप से बीकानेरी, जैसलमेरी व मेवाड़ी नस्ल पाई जाती है।

राजस्थान में ऊँटों का उपयोग मुख्य रूप से सामान ढ़ोने, गांवों से शहर सामान लाने जैसे चारा, लकड़ी, अनाज आदि व वापस गांव में अन्य सामान ले जाने, सवारी के काम एवं हल चलाने के काम में आता है। कई शहरों में ऊँट गाड़ों से अन्य प्रकार के कार्य जैसे पानी, पटिटयां व मार्बल, गैस सिलेण्डर एवं सब्जियां ढ़ोने के काम भी लिए जाते हैं। राजस्थान में रेतीले इलाकें में दो पहियों के गाड़े सुगमता से चलते है जबकि हरियाणा व गुजरात में प्रायः चार पहियों वाले गाड़ों का उपयोग किया जाता है। सामान ढ़ोने के साथ ऊँटों को खेती में हल जोतने के काम लिया जाता है तथा इनके अलावा सवारी हेतु ऊँटों का उपयोग लिया जाता है। ऊँट रखने वाले कई परिवार इसके दूध को भी उपयोग में लेते हैं। ऊँट के दूध की भी व्यावसायिक तौर पर अच्छी कीमत है तथा इसका दूध पौष्टिक व स्वास्थ्यवर्धक है। दक्षिणी राजस्थान में व गुजरात में ऊँट का दूध बहुतायत में बिकता है। दूध के उत्पादन को बढ़ाने की आवश्यकता है जिससे अन्य क्षेत्रों में ऊँट पालकों को व्यावसायिक तौर पर फायदा मिलें। आजकल ऊँट की हड्डियों एवं चमड़े से बनी भी हस्त शिल्प वस्तुओं का प्रचलन बढ़ रहा है जो कि पर्यटकों में काफी लोकप्रिय है। पश्चिम राजस्थान में देश की सीमा पर सीमा सुरक्षा बलों द्वारा ऊँट से देश की सीमा निगरानी में काम में लिया जाता है। उपरोक्त सभी कार्यों के लिए ऊँटों का शारीरिक रूप से स्वस्थ होना भी अति आवश्यक है।

ऊँट राज्य के पश्चिमी भाग की गर्मी एवं शुष्कता को चरमसीमा तक सहन कर सकता है तथा खाने पीने की कमी होते हुए भी अन्य पशुओं की अपेक्षा ज्यादा काम व लम्बे समय तक निर्वाह कर सकता है। ऊँट की एक विशेषता यह भी है कि ऊँट रेगिस्तान में पाए जाने वाले सभी तरह के पेड़-पौधों को

खाता है, जो वनस्पति दूसरे जानवर नहीं खाते हैं उन सभी पर ऊँट निर्वाह कर सकता है। ऊँट अकाल में भी दूसरे जानवरों की अपेक्षा कम प्रभावित होता है तथा अकाल में ऊँटों की मृत्युदर दूसरे जानवरों की तुलना में कम है।

आहार प्रबन्धन

ऊँटों को प्रायः टोलों में रखा जाता है, टोले दूर जंगल में जाते हैं तथा वहीं पर चरते हैं। इससे ऊँट पालकों को उनके पालन में ज्यादा खर्च वहन नहीं करना पड़ता है। जो ऊँट गाड़े में, हल चलाने में एवं सवारी हेतु रखे जाते हैं, उन्हें घर में रखकर भी चारा व दाना दिया जाता है। जिन ऊँटनियों को दूध के लिए रखा जाता है वे दिन में जंगल में चर कर शाम को घर या खेत में वापस आती है या जंगल में ही उनका दूध एकत्र कर मंगवा लिया जाता है।

एक साल तक टोर्डियों को दूध ही पिलाया जाता है वैसे एक साल तक के टोर्डियों को 2-2.5 किलो चारा, एक से दो साल के टोर्डियों को 5 किलों चारा, 2-3 साल के टोडियों को 8 किलो चारा, तीन साल के ऊपर के ऊँटों को 12 किलो चारा तथा बड़े ऊँटों को कार्य के अनुसार 14 से 20 किलो तक चारा दिया जाता है। चारे के अलावा ऊँटों को दाना उनके कार्य, दूध उत्पादन एवं चारे की उपलब्धता को ध्यान में रखकर दिया जाता है। बड़ी साँडों को तीन से 4 किलो तक दाना दूध की उत्पादकता के अनुसार दिया जाता है। टोले में ऊँटों को पानी दिन में कम से कम एक बार अवश्य पिलाया जाना चाहिए। कार्य व मौसम के अनुसार सप्ताह में दो या तीन बार भी पिलाया जा सकता है। वयस्क ऊँट लगभग 20-40 लीटर तक पानी पी सकता है। प्रायः ऊँट जंगल में उपलब्ध सभी प्रकार की वनस्पतियों को खा लेता है। लेकिन जब ऊँटों को घर में रखकर काम में लिया जाता है तो ग्वार, मूंगफली, मोठ एवं चना आदि का चारा उपरोक्त मात्रा अनुसार दिया जा सकता है। चारे के अलावा ऊँटों को नमक एवं खनिज लवण 50 से 100 ग्राम तक नियमित रूप से दिया जाना चाहिए।

प्रजनन प्रबन्धन

ऊँटों में प्रजनन ऋतु आधारित होता है एवं प्रजनन का समय नवम्बर से लेकर मार्च तक रहता है। ऊँट की प्रजनन दर बहुत धीमी है। नवजात ऊँटों में मृत्युदर भी अधिक है। प्रजनन हेतु नर ऊँट अच्छी नस्ल का होना चाहिए और शारीरिक दृष्टि से स्वस्थ होना चाहिए तथा शारीरिक भार न ज्यादा व न कम होना चाहिए। यह भी ध्यान रखना चाहिए कि ऊँट के कुमरी न हो अन्यथा ऊँट के मादा ऊँट पर बैठने और उतरने में परेशानी होती है। प्रजनन के लिए 6 से 14 साल तक की आयु उपयुक्त है। ऊँट का ईडर व कोहनियां आपस में टकरानी नहीं चाहिए। ऊँटों में 'झूट' के दौरान मुंह से गुल्ला निकाल कर विशेष प्रकार की आवाज करता है और दांतों को रगड़ने से विशेष प्रकार की आवाज निकालता है तथा पीछे के पांवों को चौड़ा करके पूंछ को ऊपर व नीचे फटकारता है, ये सभी 'झूट' के लक्षण है। झूट में ऊँट खाना-पीना कम कर देता है, अतः उसे अतिरिक्त दाना तथा 1 किलो गुड़ व आधा किलो तेल प्रजनन काल के दिनों में देना चाहिए। टोले में एक नर ऊँट लगभग 50 मादाओं के लिए पर्याप्त है। टोले में हर तीन साल बाद

नर ऊँट बदल लेना चाहिए ताकि संवृत प्रजनन (इन ब्रीडिंग) न हो।

मादा ऊँट लगभग 3-4 साल की आयु में वयस्क होती है, परंतु 4-5 वर्ष की आयु में ग्याभिन करवाया जा सकता है। मादा ऊँटों को सर्दियों में नवम्बर से मार्च तक कभी भी ग्याभिन करवाया जा सकता है। मादा ऊँटों में गर्भ काल लगभग 13 महीनों का होता है अतः सर्दियों में मादा ऊँट ग्याभिन होती है, इस प्रकार अगले साल सर्दी के मौसम में ही ब्याती है। ब्याने के बाद अगली सर्दी में फिर ग्याभिन करवाई जाती है, इस प्रकार एक मादा ऊँट तीन साल में दो बच्चे दे पाती है। गर्भ धारण के समय मादा ऊँट स्वस्थ होनी चाहिए। मादा ऊँट 4 साल से लेकर 17-18 साल तक की आयु तक प्रजनन के योग्य होती है। यह देखा गया है कि ऊँट के मादा ऊँट पर संसर्ग करवाने के यदि 48 घंटे के अंतराल के बाद उसी ऊँट से संसर्ग करवाने से गर्भ धारण करने की संभावना बढ़ जाती है। 10 महीनों के बाद गर्भित सांड़ों पर अधिक ध्यान देना चाहिए, यदि वह कमजोर है तो चारे-दाने का विशेष प्रबंधन करना चाहिए। गर्भ के अंतिम काल में मादा ऊँटों को टोले से अलग रखना चाहिए। मादा ऊँट ब्याने से पहले दूसरी सांडों से अलग रहती है, बार-बार उठती व बैठती है, थनों का आकार बढ़ जाता है। मादा ऊँट के ब्याने से पहले उसके प्रजन अंग ढीले या शिथिल पड़ जाते हैं तथा पूंछ के ऊपरी सिरे के दोनों ओर गडडे पड़ जाते हैं, अतः उस समय मादा ऊँट का विशेष ध्यान रखना चाहिए क्योंकि वह ब्याने का नजदीकी समय होता है। हमें यह कोशिश रखनी चाहिए कि मादा ऊँट के ब्याते समय कोई जानकार व्यक्ति का पास होना आवश्यक है। बच्चे के जन्म के साथ ही उसे सांड को सूंघाना चाहिए जिससे कि मादा ऊँट अपने बच्चे को अपना लें। मादा ऊँट की जर 8 से 12 घंटे के भीतर निकल जानी चाहिए अन्यथा पशु चिकित्सक या पशु चिकित्सा सहायक को दिखाकर निकलवाना चाहिए व दवा दिलवानी चाहिए। बच्चे के नाड़े को नाभि के 4 या 5 ईंच की दूरी पर काटना चाहिए। बच्चे के जन्म के बाद उसकी नाभि में भी बीटाडीन (आयोडीन घोल) या एंटीसेप्टिक दवा लगानी चाहिए।

बच्चे के जन्म लेते ही उसके नाक को साफ करना चाहिए तथा उसके शरीर को पोंछना चाहिए। बच्चा ब्याने के 1 घंटे बाद स्वयं दूध पीने की कोशिश करता है, यदि न पी सके तो मदद करनी चाहिए। मां के पहले दूध को 'खींस' (कॉलेस्ट्रॉम) कहते हैं। यह खीस (दूध) 5-6 दिनों तक आता है। यह दूध रोग प्रतिरोधक क्षमता बढ़ाता है तथा इसमें पोषक तत्व बहुतायत में होते हैं। बच्चे के जन्म के बाद मां के आहार का ध्यान रखना चाहिए तथा उसे गुड़, तेल देना चाहिए। ब्याने के बाद अगर बच्चा पूरा दूध न पी सके तो थन से बचा हुआ दूध निकाल देना चाहिए अन्यथा थन खराब हो जाते है। प्रायः बच्चों का जन्म सर्दियों में होता है, अतः ठण्ड से बचाव करना चाहिए और यदि जन्म अप्रैल-मई में होता है तो गर्मी से बचाव करना चाहिए। बच्चा ब्याने के बाद 1-2 घंटे में मल व पेशाब करता है।

स्वास्थ्य प्रबन्धन

ऊँट में दूसरे जानवरों की तुलना में इसके शुष्क एवं प्राकृतिक वास के कारण स्वास्थ्य संबंधी समस्याएं कम होती है। एक स्वस्थ ऊँट हमेशा चौकन्ना रहता है, चमड़ी में चमक रहती है तथा प्रायः आँखें

खुली रखता है। स्वस्थ जानवर हमेशा टोले के साथ रहेगा जबकि बीमार ऊँट टोले से दूर या पीछे रहेगा। स्वस्थ ऊँट प्रायः जुगाली करता नजर आएगा। वह मींगने करने पर किसी प्रकार का जोर नहीं लगाएगा। यदि मींगनों के आकार या बनावट में फर्क होता है तो इसका मतलब ऊँट के पेट संबंधी कोई समस्या है। स्वस्थ ऊँट पेशाब थोड़े-थोड़े समय बाद करता रहता है। एक स्वस्थ ऊँट के पसीना तब ही आता है जब उससे बहुत ज्यादा काम लिया जाता है या वातावरण का तापमान बहुत अधिक होता है।

प्रायः ऊँटों में तीन प्रकार की समस्या ज्यादा होती है। उनका पूर्व बचावकारी ईलाज समय-समय पर करते रहे तो काफी हद तक स्वास्थ्य संबंधी समस्याओं से बचा जा सकता है।

1. **तिबरसा रोग**-यह रोग ट्रीपेनोसोमा ईवान्साई नामक रक्त परजीवी द्वारा होता है। यह परजीवी शरीर में एक विशेष प्रकार की मक्खी के काटने से होता है। इसमें ऊँट को बुखार आता है, वजन कम हो जाता है, शरीर के नीचले हिस्से में ईडर के चारों तरफ सूजन आ जाती है एवं इस रोग से पीड़ित ऊँट के मींगने छोटे व तिकोने होते है, इसके लिए बाजार में उपलब्ध टीके ' एंट्रीसाईड, टिवानसाई या ट्राईक्वीन आदि दवा पशु चिकित्सक की सलाह से शारीरिक भार के अनुसार साल में तीन या चार बार लगवाने चाहिए।

2. **आन्तरिक परजीवी प्रकोप**- ऊँटों के पेट व आंतों में कई प्रकार के परजीवी पाए जाते है। इससे ऊँट कमजोर हो जाता है तथा कई बार दस्त भी लगते है। इसके लिए साल में कम से कम दो बार वर्षा के मौसम से पहले एवं बाद में पेट के परजीवी को खत्म करने हेतु दवा देनी चाहिए। इस हेतु बाजार में उपलब्ध पानाक्यूर, नीलवर्म आदि दवाएं पशु चिकित्सक की सलाह से देनी चाहिए। प्रायः यह देखा गया है कि समय पर ईलाज न करवाने पर शरीर में लवणों की कमी के कारण ऊँटों में पाईका नामक बीमारी हो जाती है जिसमें पशु पत्थर कंकर इत्यादि खाने लगता है। यदि समय पर परजीवी नाशक दवाई न पिलाई जाए तो लम्बे समय के बाद पाईका नामक बीमारी से छुटकारा नहीं मिलता क्योंकि यह पशु की आदत बन जाती है।

3. **पांव या खुजली**-यह बीमारी चमड़ी का रोग है जो कि बाह्य परजीवी के कारण होता है। इसमें जानवर शरीर को किसी के सहारे जैसे दीवार, पेड़ आदि से खुजली करता है, इससे खुजली के स्थानों पर बाल उड़ जाते हैं। चमड़ी सूखने लगती है। ऊँट खाना-पीना कम कर देता है। वजन घटता है तथा कई दफा चमड़ी से खून बहने लगता है। इसके लिए साल में कम से कम दो या तीन बार डेल्टामैथ्रिन (ब्युटॉक्स) या अन्य ऑर्गनोफॉस्फोरस दवाओं के घोल का पशु चिकित्सक की सलाह से छिड़कना चाहिए। अगर उपरोक्त आन्तरिक या बाह्य दोनों ही परजीवी का प्रकोप होता है तो आईवर मैक्टीन नामक दवा पशु चिकित्सक की सलाह अनुसार देनी चाहिए।

❑❑❑

नवजात ऊँटों का परिपालन

चम्पक भकत[1], गोरख मल[1], राघवेन्द्र सिंह[1]
समर कुमार घौरूई[2], देवेन्द्र कुमार[3] एवं एन.वी.पाटिल[4]
[1]वरिष्ठ वैज्ञानिक, [2]प्रधान वैज्ञानिक, [3]वैज्ञानिक, [4]निदेशक
राष्ट्रीय उष्ट्र अनुसंधान केन्द्र, बीकानेर

ऊँट के बच्चों की बढ़ती मृत्युदर को ऊँटनी के प्रसव अवधि के दौरान वैज्ञानिक प्रबंध प्रणाली अपनाकर काफी हद तक कम किया जा सकता है। अगर वैज्ञानिक प्रणाली द्वारा ऊँट के बच्चों का रख-रखाव किया जाए तो पशुपालकों के लिए बहुत लाभदायक एवम् उपयोगी सिद्ध होगा साथ ही उनके लिए अतिरिक्त आय का साधन भी बनेगा।

जिस गति से आज यातायात के साधनों का मशीनीकरण हो रहा है, उसके बावजूद ऊँट रेगिस्तान में यातायात का एक प्रमुख साधन बना हुआ है। राजस्थान की भौगोलिक स्थिति को देखा जाए तो अन्य जानवरों की अपेक्षा इसका उपयोग अधिक बढा हैं क्योकिं इसके खान - पान की आदत के कारण यह अन्य किसी भी जानवर का प्रतिद्वन्दी नहीं है । वयस्क ऊँट की तुलना में नवजात बच्चे का औसत बाल उत्पादन अधिक होता हैं, नवजात बच्चे के बाल काफी मुलायम होते हैं। ऊँट पालक के लिए ऊँट बाल और उसके उत्पाद एक अतिरिक्त आय का स्त्रोत हो सकते हैं। ग्रामीण औरतों को ऊँट बालों की उन्नतकरण, बालों को कातना, अच्छे किस्म के बालों से कढ़ाई काढ़ना और ऊँट बाल को अन्य जानवर के बाल जैसे- भेड़ की ऊन, बकरी के बाल व सूत के साथ मिलाकर हस्त शिल्प की वस्तुएँ बना सकते हैं। ऊँट बालों का उपयोग गाँव के कुटीर उधोग में कुछ सामान्य उपयोगी वस्तुएँ बनाने में होता हैं। जैसे- कम्बल, बैग, गद्दे भरने का सामान, रस्सियां, गलीचे इत्यादि। इसका राजस्थान और गुजरात के कुटीर उधोग में वृहद् स्तर में उपयोग होता हैं। औसतन एक भारतीय ऊँट से साल में एक बार बालों की कतरन कर लगभग 0.500 से 1.500 कि.ग्रा. तक बाल प्राप्त होते हैं। ऊँट पालक ऊँट बाल को अपनी पारम्परिक विधि से कातते हैं और उससे दरीयां बनाते हैं। हाथ चरखे द्वारा अच्छी किस्म के ऊँट बाल कातते हैं। आजकल गलीचा, कम्बल बनाने के लिए मशीन की कताई लोकप्रिय हो गई हैं। ऊँट के बाल मजबूत और गर्म होते हैं। शुद्ध ऊँट बाल या किसी दूसरे जानवर के बाल को सूत में मिलाकर बनायें गये उत्पाद का भविष्य में गाँव के कुटीर उद्योग और निर्यात क्षमता में बहुत अधिक रोजगार की संभावनाएँ हैं।

प्रसव के दौरान मादा ऊँट को उपयुक्त आहार चाहिए। प्रसव के सात आठ दिन पहले से ही ऊँटनी को चरने हेतु चारागाह में नही भेजना चाहिए। घर पर ही उसकी देखभाल करनी चाहिए। यदि हरा चारा उपलब्ध हो तो अवश्य देना चाहिए। इसमें विटामिन-ए होने की वजह से माँ व बच्चे को रतौंधी रोग नहीं

होता। यदि हरा चारा उपलब्ध न हो तो विटामिन-ए (30 लाख आई. यु.) इन्जेक्शन देना चाहिए गर्भावस्था में मादा ऊँट को नर ऊँटों के साथ रखना उचित नहीं होगा । ब्याने के अनुमानित दिनांक से लगभग एक सप्ताह पहले से ऊँट की प्रसूति स्थिति को अवलोकन में रखना चाहिए। प्रसूति ऊँट की प्रसव पीड़ा का आचरण व्यवहार के अध्ययन से निम्नलिखित परिणाम समाने आये :-

जन्म लेने वाले बच्चे के बचाव के लिए प्रसूति मादा ऊँटों में प्रसव पीड़ा को पहचानना जरूरी हो जाता है। प्रसूति मादा ऊँट मुख्य बाड़े या ओर सभी साथियों से अलग रहना चाहती है। पूँछ के जड़ के दोनो तरफ पर दो कटाव दिखाई देते हैं । पिन्न हड्डी के स्थान के मध्य खड्डे होते है । योनी द्वार के चारो तरफ सूजन दिखाई देती है । खड़े होना - बैठ जाने कि पुनरावृति करती है । दुग्ध नाड़िका स्पष्ट नजर आती है तथा मोटी हो जाती है। स्तनग्रंथि और थन आकार में बड़े हो जाते हैं ।

यह प्रसव क्रिया के मुख्य लक्षण है जिससे पता चलता है कि जल्द ही 1-2 घण्टे के भीतर प्रसव होने वाला है। प्रसव के पश्चात् माँ के आहार का पूरा-पूरा ध्यान रखना चाहिए। ब्याने के बाद माँ के थनों से उपलब्ध दूध बच्चा पुरी तरह न पी सके या दूध ज्यादा मात्रा में हो तो थनो में उपलब्ध अधिक दूध को दूह कर निकाल देना चाहिए ।

प्रसव के दौरान

प्रसव के अनुमानित समय के एक सप्ताह पूर्व से मादा ऊँट का विशेष ध्यान रखना जरूरी हो जाता है। बच्चे के पैदा होने के समय किसी प्रकार की मदद की आवश्यकता पड़ने पर मदद करने वाले व्यक्ति के हाथों के नाखून कटे हुए होने चाहिए तथा अपने हाथों को साबुन/डिटॉल/सेवेलॉन से धोना उचित है।

प्रसव के बाद

बच्चे के जन्म के बाद उसके नाड़े को ब्लेड द्वारा नाभि से करीब 4'' या 5'' की दूरी से काटकर साफ मोटे धागे से कसकर बाँध देवें एवं उसके बाद नाड़े पर टिन्चर आयोडिन या डिटॉल लगाना चाहिये। प्रसव के बाद तुरन्त बच्चों के नाक को सर्वप्रथम साफ मुलायम कपड़े से साफ करना एवं सारे शरीर को पोंछना चाहिए। अत्यधिक ठण्ड या अत्यधिक गर्मी से नवजात बच्चे का बचाव करना उचित है। ब्याने के बाद जो दूध आता है उसे खीस {कोलेस्ट्रम} के नाम से जाना जाता है। कोलेस्ट्रम में रोग प्रतिरोधक शक्ति होती है। इसके पीने से बच्चे में रोग प्रतिरोधक क्षमता बढ़ती है। प्राय स्वस्थ नवजात बच्चे एक घण्टे में स्वयं अपनी माँ का दूध पीने लग जाते है। यदि मादा ऊँट बच्चे को दूध न पिलाये तो बोतल में निपल लगाकर स्वयं दूध पिलाने का प्रयास करना जरूरी है। जन्म से करीब तीन माह तक बच्चा केवल माँ के दूध पर ही निर्भर रहता है। उसके पश्चात माँ के दूध के साथ-साथ हरा/ सूखा चारा भी थोड़ी मात्रा में खाना शुरू करता है। जन्म के तीन दिन पश्चात्, लगातार तीन दिन तक विटामिन - ए (छः लाख यूनिट) देकर रतौंधी रोग से बचाया जा सकता है तथा मृत्युदर भी काफी कम हो सकती है। कोई

सुरक्षित पेट के कीड़े मारने की दवा उपयुक्त मात्रा में 6 मास की आयु में बच्चे को देना जरूरी है। सपाम {तिबरसा} से बच्चों को बचाने के लिये तीन माह पश्चात टीका लगवाना आवश्यक है।

नवजात ऊँट के बच्चों को खींस एवं दूध पिलाकर, मातृहीन बच्चों को दूसरी ऊँटनी का दूध पिलाकर, विटामिन ए का टीका लगवाकर, बाह्य एवं आंतरिक परजीवी से बचाव, एक महिने पर डिवार्मिंग कर तथा प्रतिकूल वातावरण से सुरक्षा कर उनकी मृत्युदर को पांच प्रतिशत तक कम किया जा सकता है। जानकारी के अनुसार वर्तमान में ऊँटनी के बच्चों की मृत्युदर 25 से 30 प्रतिशत तक है। ऊँटनी के बच्चों का जन्म अधिकतर शीतकाल { दिसंबर - मार्च } में होता है। ऊँट एक ऋतु अभिजनक पशु है। आमतौर पर ऊँटनी हीट में तथा ऊँट रट में दिसंबर से मार्च माह तक आते हैं। ऊँटनी करीब साढ़े तीन वर्ष में वयस्क होती है जबकि ऊँट पांच छः वर्ष की उम्र में रट में आता है। ऊँटनी में गर्भकाल तेरह महीनों का होता है। ऊँटों में प्रजनन दर धीमी होती है। इसका मुख्य कारण लंबा गर्भकाल है। एक ऊँटनी दो वर्ष में एक बच्चे को प्राप्त करती है। यह रेगिस्तानी शुष्क तथा अर्धशुष्क क्षेत्रों की, विशेष रूप से राजस्थान की ग्रामीण अर्थव्यवस्था में ऊँट के महत्व को साफ दर्शाती है । इसके कारण यह अत्यन्त आवश्यक हो जाता हैं कि इस प्रजाति का प्रसव के दौरान ध्यान रखा जाये जिससे बच्चों की मृत्युदर को कम किया जा सके और इसकी जनसंख्या वृद्धि की जा सकें।

वैज्ञानिक प्रणाली द्वारा नवजात ऊंट के बच्चों का रख रखाव मरुस्थल अथवा अर्द्ध मरुस्थल क्षेत्र में रहने वाले किसान तथा पशुपालकों के लिए बहुत उपयोगी सिद्ध होगा। इन दिनों ऊँट पालक यदि अपनी गर्भकाल के दौरान ऊँटनी का वैज्ञानिक प्रणाली से प्रसव प्रबंध करें तो इस दौर में जन्म लेने वाले बच्चों को थोड़े से प्रयासों से बचाया जा सकता है।

❑❑❑

जलवायु परिवर्तन के कारण पशुओं में होने वाले संक्रामक रोगों का अग्रिम प्रबंधन

एस. के. घौरूई[1], संजय कुमार[2] एवं चंपक भकत[3]

[1]प्रधान वैज्ञानिक, [2]वैज्ञानिक, [3]वरिष्ठ वैज्ञानिक

राष्ट्रीय उष्ट्र अनुसंधान केन्द्र, बीकानेर

जलवायु परिवर्तन रोगों का मित्र माना जाता हैं। परिवर्तन के साथ अपने आपको नहीं ढालने वाले मेजबान में उनके रोगजनक आसानी से भ्रमण कर सकते है। जलवायु परिवर्तन हमें पशुओं को बिमारियों की रोकथाम या पशुओं को बिमारियों से दूर रखने में रूकावट पैदा करता है। हालांकि पर्यावरण अखडंता पर उत्पादन के नकारात्मक प्रभावों, समुदाय स्थिरता, सार्वजनिक स्वास्थ्य और पशु कल्याण पर ज्यादा साक्ष्य संकलित किया है पर इस क्षेत्र के वैश्विक प्रभाव जो संभावित जलवायु परिवर्तन का कारण है को काफी हद तक कम करके आंका गया हैं।

मानव गतिविधियां वातावरण में ग्रीन हाउस गैसों जैसे कार्बन-मोनोऑक्साइड, नाइट्रस ऑक्साइड और मिथेन में तेजी से वृद्धि का कारण है जो पृथ्वी की जलवायु में अभूतपूर्व बदलाव का कारण है । गर्म तापमान और अधिक वर्षा के कारण लगातार अधिक सूखे, कम बर्फ पड़ना और चरम मौंसम को विश्व निकाय द्वारा अनुमानित किया गया हैं। यद्यपि कुछ प्राकृतिक घटनायें ग्रीन हाउस गैस के उत्सर्जन में योगदान करती हैं लेकिन दुनिया के सबसे प्रतिष्ठित वैज्ञानिको ंकी इस बात पर सहमति है कि मानव गतिविधियॉ ही अधि ाकांश तापमान की वृद्वि के लिए जिम्मेवार हैं।

कृषि कार्य करने वाले पशु और पशु उत्पादन सुविधाएं पृथ्वी सतह के एक तिहाई भाग में फैली हुई हैं औंर इसमें पशु चारे के उत्पादन में उपयुक्त भूमि सहित कुल कृषि योग्य उपलब्ध भूमि का दो तिहाई भाग उपयोग होता हैं। वनों की कटाई, भूमि क्षरण, मिट्टी का दोहन और बंजर भूमि का पशुधन क्षेत्र के लिए उपयोग कार्बन-डाईऑक्साइड के उत्सर्जन के लिए जिम्मेदार हैं।

विश्व खाद्य एवं कृषि संगठन, 2008 के अनुसार दुनिया भर में लगभग 56 अरब पशुधन सालाना पाले जाते हैं औंर इनका विभिन्न उपयोग मानव के लिए लिया जाता हैं । ये पशुधन सूची 2050 तक दुगनी होने की उम्मीद हैं । विकासशील देशों में पशुधन को पालने औंर उनके उपयोग सबसे अधिक मात्रा में होने की उम्मीद है। विकासशील देशों में पशुधन को पालने और उनके उपयोग सबसे अधिक मात्रा में होने की उम्मीद जताई गई है।

ग्लोबल वार्मिंग संक्रामक रोगों के फैलाव और फिर से उभरने की रफ्तार को बढ़ा सकता है। विश्व

स्वास्थ्य संगठन के फ्रांकोसिस मेसलिन के अनुसार उभरते पशुजनित रोगों का प्रमुख कारण मनुष्य द्वारा पर्यावरण में गिरावट है जिसमें मानव द्वारा वनों की कटाई, वन्य क्षेत्रों में प्रवेश और शहरीकरण प्रमुख है।

जलवायु का यह परिवर्तन पशु उत्पादन को चार प्रमुख तरीके से प्रभावित करता है।

(क) पशुओं के चारा वृद्धि की उपलब्धता पर प्रभाव

(ख) पशुओं के चरागाह और चारा वाले फसल के उत्पादन एवं गुणवत्ता पर प्रभाव

(ग) पशुओं के रोगों और उनके कीटों के वितरण में परिवर्तन और

(घ) पशु स्वास्थ्य, पशु विकास और उसके प्रजनन पर मौसम का अत्यधिक प्रत्यक्ष प्रभाव

विकासशील देशों में पर्यावरण, जलवायु और संक्रामक के बीच घनिष्ठ संबंध की पहचान अच्छी तरीके से हो चुकी है। यहाँ पर संक्रामक रोगों के उद्‌भव और प्रसार में निम्नलिखित परिवर्तन शामिल है-

1. बदले परिदृश्य के कारण मेजबान नई रोगजनकों के संपर्क में आता है।

2. जनसंख्या का अधिक से अधिक घनत्व रोगजनकों के तेजी से प्रसार में सुविधाजनक होता है।

3. लम्बी दूरी की यात्रा और व्यापार नई आबादी के लिए रोगों के फैलाने में सहायक होता है।

4. प्राकृतिक आपदा रोगों के नियंत्रित करने की क्षमता को बाधित करता है।

प्राकृतिक या मानवीय मूल के जलवायु परिवर्तन संक्रामक रोगों का एक प्रमुख संचालक है। मौसमी कारक कई संक्रामक रोगों के संचरण की दर पर प्रमुख प्रभाव डाल सकता है। सूक्ष्म जीव और उनके रोगवाहक वातावरण के तापमान, आर्द्रता, वर्षा, सतह के पानी और वनस्पति में बदलाव जैसे कारकों के प्रति संवेदनशील है। तापमान और नमी के बदलते अस्थायी नक्शें रोगवाहकों के वितरण में काफी परिवर्तन करते हैं और नई आबादी में नई बीमारियों की संभावना उजागर करते हैं।

सर्दियों के मौसम गर्मी रोगवाहकों को एक मौसम से दूसरे में जीवित रहने के लिए अनुमति देते हैं जो कि रोगों के आसान और तेज विकास में अग्रणी हो सकता है। कुछ मामलों में गर्म तापमान गैर रोगजनकों के प्रजातियों को रोगजनक बनाने के लिए अनुमति देता है। जलवायु परिवर्तन पशुजन्य रोगों को कई तरीके के रूप में प्रभावित कर सकता है जैसे-पशुओं या कीड़ों में रोगवाहकता की सीमा या बहुतायता में वृद्धि, प्रसारण चक्र लम्बा करना या रोगवाहकों या पशुओं के नए क्षेत्र में आयात में वृद्धि करना जो उन क्षेत्रों में रोगों की स्थापना का कारण हो सकता है। इस प्रकार पशुजन्य रोगों की संभावना बढ़ जाएगी।

जलवायु कुछ रोगजनकों को सीधे-सीधे प्रभावित करता है। एक से दूसरे रोगवाहक में आने-जाने के क्रम में कई रोगजनक वातावरण में कुछ अवधि व्यतीत करते हुए मौसम के संपर्क में आते हैं। यह समय अवधि महीने/वर्ष के रूप में लंबा या सैंकड/मिनिट के रूप में कम हो सकता है। उदाहरण के लिए कई

कवक रोगों के स्पोंस या एन्थ्रेक्स के स्पोंस लम्बी अवधि के लिए एवं इन्लूएंजा के विषाणु या रिंडरपेस्ट (पशु महामारी) के विषाणु कम अवधि के लिए वातावरण के संपर्क में आ सकते हैं। ज्यादात्तर मामलों में जलवायु और मौसम रोगजनकों को जीवित रहने या दूसरे रोगवाहक में प्रवेश करने के लिए इसकी क्षमता को प्रभावित करते हैं।

जैसे-जैसे जलवायु परिवर्तन तेज होगा इसके बीमारी से संबंधित प्रभावों को कम से कम तीन स्तरों पर महसूस किया जाएगा। जलवायु परिवर्तन सीधे रोगजनक, रोगवाहक या मेजबान पर कार्य करेगा। यह एक क्षेत्र में उपस्थित मेजबान का निवास स्थान, मेजबान के समुदाय जो उसमें रह सकते हैं और उनके जीवन चक्र को प्रभावित कर अपने अनुसार ढालेगा। जलवायु परिवर्तन परोक्ष रूप से रोग के अन्य चालकों पर कार्य करेगा। भविष्य में गर्म वातावरण की प्रतिक्रिया में परिदृश्य ही बदल जाएगा, परिवहन का स्वरूप बदल जाएगा, आबादी एक स्थान से दूसरे स्थान पर चली जाएगी और इस चरण में संक्रामक रोग प्रस्तुत अवसरों का लाभ ले जाएंगे।

उपर्युक्त सभी बातें पशुओं के स्वास्थ्य के संबंध में भी सटीक रूप से लागू होती है। इसके बहुत सारे उदाहरण है जैसे कि पुराने रोगों के फैलने का उदाहरण, नये मान्यता प्राप्त रोग और फिर से उभरते या विकसित रोग आदि। प्रमुख आर्थिक महत्व के पशुओं के रोगों (जैस खुरपका, मुँहपका, सीबीपीपी, भेड़ और बकरी के माता रोग, सर्रा, चीचड़ जनित रोग और आईबीडी) का सामूहिक भौगोलिक स्थान का विस्तार अफ्रीका से पूर्व की ओर और एशिया में हुआ है जो दुनिया के कई गरीब देशों में शामिल है।

पशु महामारी फैलाने वाले रोगों जैसे एवियन इन्लूएंजा, स्वाइन फीवर, खुरपका-मुँहपका, ब्लूटंग, ऊँट चेचक आदि के रूप में हमेशा पशुओं के लिए एक जोखिम है। इन बीमारियों के प्रकोप से होने वाली हानि पूरी दुनिया पर भारी पड़ सकती है। तेज वैश्विक पशु परिवहन, व्यापार के लिए खुली सीमाएं, ग्लोबल वार्मिंग और पर्यटन आदि के कारण पशु महामारी फैलाने वाले रोगों की रोकथाम और नियंत्रण अन्तर्राष्ट्रीय मुद्दा हो गया है। दुनिया भर में बीमारी के प्रकोप का पता लगाने और नियंत्रण करने के लिए सामंजस्य और मानकीकृत प्रक्रियाओं, मान्य तरीकों और तेज उपचार की तत्काल आवश्यकता है।

हाल के वर्षों में रोगों के आण्विक पहचान/निदान के परिष्कृत तरीक विकसित किए गए है जैस कि रीयल टाइम पॉलीमरेज चेन रियक्सन या माइक्रो एरे प्रणाली (डी.एन.ए. चिप प्रौद्योगिकी) अलग प्रतिजन की वितरण प्रणाली का उपयोग करके और पारंपरिक एवं उच्च कोटी के आण्विक एडजुवेंट का दोहन करके टीकाकरण व्यवस्थाओं की प्रभावीकारिता में सुधार का लक्ष्य है जैसे-साइटोकाइन्स का उपयोग प्रतिरक्षा प्रक्रिया के लिए उपयुक्त रक्षात्मक प्रतिक्रिया को प्रत्यक्ष रूप से सक्रिय करना।

सुरक्षा के संकेतकों और तंत्र की पहचान टीकाकरण रणनीतियों के अनुकूलन में एक महत्वपूर्ण लक्ष्य है। ग्लोबल वार्मिंग के इस मोड़ पर उभरते रोगों का नियंत्रण निम्नलिखित प्राथमिकताओं पर आधारित होगी

- ❑ सामाजिक और राजनीतिक स्थिरता

- ❑ सभी पशुओं तक पशुचिकित्सकों की पहुँच
- ❑ प्रारम्भिक चरण में संदिग्ध मामलों का पता लगाने के लिए प्रभावी निगरानी प्रणाली का रखरखाव
- ❑ रोगों के फैलने की घटना में इसके नियंत्रण कार्यक्रम को लागू करने के लिए प्रशिक्षित कर्मियों और संसाधनों का प्रावधान
- ❑ उपयुक्त टीके देने और आपूर्ति करने में संसाधनों का निवेश

ये सभी प्रबल महत्व के तथ्य हैं और इनके कार्यान्वयन के लिए व्यापक दृष्टिकोण की आवश्यकता हो सकती है। एक प्रभावी टीकाकरण व्यवस्था के विकास के लिए (क्प्ट।) डाइगोनिस्टिक (निदान) के समानान्तर विकास की आवश्यकता है जो रोगों के उन्मूलन अभियान में संक्रमित और टीका लगाए हुआ पशुओं के बीच अंतर कर सके। इसी प्रकार निगरानी, जाखिम विश्लेषण और आण्विक जानपदित रोग विज्ञान की जानकारी रोगजनक उपभेदों के प्रसार को परिभाषित करने में महत्वपूर्ण है।

❑❑❑

भेड़ों में स्वास्थ्य प्रबंधन

सी.पी. स्वर्णकार[1] एवं एस.सी. मेहता[2]
[1]वरिष्ठ वैज्ञानिक, केन्द्रीय भेड़ व ऊन अनुसंधान संस्थान, अविकानगर
प्रधान वैज्ञानिक[2], राष्ट्रीय उष्ट्र अनुसंधान केन्द्र, बीकानेर

पशुपालन राजस्थान के जन-जीवन का अभिन्न अंग है फिर भी यह भारतवर्ष में भेड़ एवं ऊँट पालन में विशिष्ट स्थान रखता है। राजस्थान में करीब 112 लाख भेड़ें हैं एवं इस प्रदेश का कोई भी जिला ऐसा नहीं है जहाँ यह संख्या हजार से कम हो। भेड़ एक ऐसा प्राणी है जिसको एक जगह रखकर खिलाना-पिलाना भारतीय परिस्थितियों में लगभग असंभव है। ऐसी स्थिति में इसको खाने के लिये भ्रमण करना आवश्यक हो जाता है। लगातार जगह-जगह भ्रमण करते रहने से जलवायु निरन्तर बदलता रहता है। ऐसी स्थिति में भेड़ों के स्वास्थ्य प्रबंधन पर ध्यान देने की विशेष जरूरत है ताकि उनमें न केवल मृत्यु दर कम हो बल्कि वह अधिकतम उत्पादन भी दे। जनजातीय क्षेत्र में भी पशुपालक भेड़ स्वास्थ्य प्रबंधन की उचित जानकारी रखकर अधिक लाभ प्राप्त कर सकता है।

वैज्ञानिक भेड़ पालन में प्रजनन, पोषण, रहन-सहन व्यवस्था एवं पशु स्वास्थ्य प्रबंध का समान महत्व है। स्वस्थ रेवड़ ही भेड़-पालन का प्रमुख आधार होता है अर्थात् भेड़ों की बीमारियों से सुरक्षा करके ही भेड़-पालक रेवड़ से अधिकाधिक उत्पादन प्राप्त कर समुचित लाभ कमा सकता है। पशु पालन के क्षेत्र में पशुओं को स्वस्थ रखने में रोगों से बचाव का उपाय ही सबसे सफलतम, विश्वसनीय व सस्ता तरीका है। भेड़-पालक यह बात अवश्य ध्यान में रखे कि पशु-स्वास्थ्य के संदर्भ में उपचार की तुलना में बचाव ही उत्तम रहता है।

एक विशेष क्षेत्र में पाली गई भेड़ों में उस क्षेत्र के रोंगों या रोंगों के हानिकारक प्रभावों को सहन करने की क्षमता विकसित हो जाती है। वातावरण के बदलने से, अचानक आहार परिवर्तन करने से, साफ-सफाई का ध्यान नहीं रखने से रेवड़ में बीमारियाँ होने की संभावना बढ़ जाती है। यह पाया गया कि राजस्थान के ग्रामीण रेवड़ में स्वास्थ्य सम्बन्धी समुचित देखभाल के अभाव में लगभग 20-22 प्रतिशत भेड़-बकरी प्रतिवर्ष विभिन्न रोगों से ग्रस्त होकर मर जाती है एव साथ ही बीमारियों की उपिस्थति से रेवड़ की आजनन क्षमता, शारीरिक वृद्धि व उत्पादन क्षमता में असहनीय कमी से भेड़-पालको को काफी नुकसान उठाना पड़ता है। यदि भेड़-पालक रोंगों से बचाव की सामान्य बातों का ध्यान रखें तथा समय-समय पर कुछ संक्रामक रोगों से बचाव हेतु टीकाकरण करवा लेवें तो इन रोगों से होने वाले नुकसान से शत-प्रतिशत बचा जा सकता है।

इसके अलावा भेड़-पालन के क्षेत्र में राजस्थान में यह पाया गया कि भेड़-पालक अंतः कृमिनाशक दवाओं का अंधाधुंध प्रयोग बिना चिकित्सक की सलाह के करते हैं जिसके फलस्वरूप अधिकतर दवाइयां निष्क्रिय होती जा रही है एवं इस प्रकार की दवाओं के प्रयोग से भेड़-पालकों के रेवड़ में किसी प्रकार का

स्वास्थ्य सुधार नहीं होता है। संस्थान के पशु स्वास्थ्य विभाग में परजीवियों के जीवन चक्र, मौसम, चरागाह पर घास की उपलब्धता, दवाओं की क्रियाशीलता आदि का विस्तृत अध्ययन कर यह पाया गया कि एक साल के दौरान मात्र एक बार जरूरत पड़ने पर दुबारा अंतःकृमिनाशक दवा पिलाकर, रेवड़ को अंतःकृमियों से होने वाले नुकसान से बचाया जा सकता है। इस व्यवस्था के अपनाने से अंतःकृमिनाशकों पर किए जा रहे अनावश्यक खर्च से भेड़पालक अपने आपको बचा सकते है।

अतः भेड़-पालकों को बीमारियों से होने वाले नुकसान से बचने हेतु पशु-चित्सिक की सलाह, अपनी सतर्कता व जागरुकता, समय-समय पर आवश्यक टीकाकरण व दवाकरण, सही दवा का चयन कर रेवड़ से अधिकाधिक उत्पादन प्राप्त कर सकते हैं।

स्वस्थ एवं रोगी भेड़ की पहचान

रेवड़ में बीमार पशुओं की न केवल उत्पादकता में कमी आती है बल्कि ऐसे पशुओं की खुराक, उपचार, देखभाल व अन्य व्यवस्थाओं पर अतिरिक्त खर्च करना पड़ता है। रोगी पशु की शीघ्रता से पहचान कर उपचार करने से होने वाले आर्थिक नुकसान को कम किया जा सकता है। रोग के प्रारम्भ होते ही लक्षणों के आधार पर अस्वस्थता का ज्ञान होता है। सामान्यतौर पर स्वस्थ एवं रोगी पशुओं की पहचान निम्नानुसार की जा सकती है-

स्वस्थ पशु	लक्षण	अस्वस्थ पशु
पूरी इच्छा के साथ चरता है। जुगाली करता है।	भूख लगना व चारा पानी खाना	भूख नहीं लगती, पशु चरना व जुगाली करना बंद कर देता है।
सभी पैरों पर समान दबाव से खड़ा होता है, चुस्ती व फूर्ती से चलता है, चौकन्ना रहता है तथा शरीर पर मक्खियां नहीं बैठनें देता है।	खड़े होने व चलने का ढंग	सिर नीचा करके रेवड़ से अलग खड़ा होता है। पूँछ से मक्खियाँ नहीं उड़ा पाता है। सुस्त व निष्क्रिय (अनमना) दिखाई देता है बड़ी मुश्किल से चलता फिरता है।
नर्म, लचीली तथा चमकदार होती है।	त्वचा (चमड़ी)	सूखी, खुरदरी एंव बाल व ऊन में चमक नहीं होती है।
नाक पर हल्की नमी होती है।	नाक	सूखी, कड़ी, स्त्राव, खून या मवाद (पीव) युक्त होती है।
चमकदार, पूरी खुली हुई व साफ होती है।	आँखें	सिकुड़ी, धंसी हुई होती है तथा आँखों से पानी या पीव निकलता रहता है।
विशेष आकार की गोलियों के रूप में चमकदार व नर्म होती है।	मेंगनी	लेई के समान पतले दस्त, श्लेष्मा या रक्त मिश्रित, बदबूदार होती है।
भूसे के रंग का हल्का पीलापन	पेशाब	मूत्र में श्लेष्मा, रक्त का होना

लिए साफ द्रव होता है।		व गाढ़ापन हो जाता है।
102 डिग्री फारनहॉट 70-90/मिनट नाड़ी दर 10-12/मिनट श्वसन दर	शरीर का तापमान, नाड़ी एंव श्वसन गति	तापमान, नाड़ी व श्वसन दर में बदलाव (घटत या बढ़त)
ऊन, दूध आदि का रंग व गण सामान्य होते है।	उत्पादकता	दूध में खून के थक्कों की उपस्थिति दूध फट जाना, ऊन का टूट जाना व चमकहीन होना, शारीरिक वजन कम होना।

बीमार भेड़ का पता लगाने के लिए भेड़-पालक को प्रतिदिन ध्यानपूर्वक अपने रेवड़ को बाड़े में से निकलते हुए देखना चाहिए जिससे अस्वस्थ भेड़ को अलग कर उसका सही समय पर उपचार करवा सके। भेड़-पालक को चाहिए कि वह रेवड़ से थोड़ा दूर खड़े होकर 4-5 मिनट तक लगातार सभी पशुओं को देखें तथा उनके खड़े होने का ढंग, चौकन्नापन, सक्रियता, चाल, कान व पूँछ की गति देखे।

पशुओं में होने वाले विभिन्न रोग, उनके कारण, लक्षण, उपचार एवं रोकथाम के उपायों के बारे में भेड़-पालकों को समुचित व्यवहारिक जानकारी होना अति आवश्यक है जिससे भेड़ पालक रोगों द्वारा होने वाली हानि से बच सकता है। भेड़ों को अनेक प्रकार से रोगाणु संक्रित करके बीमारियाँ पैदा कर देते हैं। उनके जीवाणु, विषाणु, फफूँदी एवं परजीवी आदि प्रमुख रोगाणु है। इन रोगाणुओं में से अनेक रोगाणु अकेले रोग पैदा करने में विफल रहते हैं परंतु विभिन्न प्रकार के तनाव पैदा करने वाली परिस्थितियों (जैसे अचानक वातावरण में बदलाव, अकस्मात आहार में परिवर्तन, बाड़े में क्षमता से अधिक भेड़े रखना, कुपोषण होना आदि) के सहयोग से रोगाणु सक्रिय होकर पशु को बीमार करने में सफल हो जाते हैं। रोगाणुओं से उत्पन्न कुछ रोग अत्यन्त तेजी से फैलने वाले होते हैं जिनसे प्रभावित कई पशु बिना लक्षण के ही अचानक मर जाते हैं। इसके विपरीत कुछ रोगों के लक्षण लम्बे समय तक दिखाई देते हैं। भेड़ों में होने वाली बीमारियों का संक्षेप में विवरण यहाँ दिया जा रहा है जिनको ध्यान में रखकर भेड़-पालक अपने रेवड़ में होने वाली बीमारियों की पहचान कर शीघ्रता से निकटतम पशु चिकित्सक से सलाह लेकर सही उपचार करवा सकता है।

विषाणुओं से होने वाले रोग

भेड़ चेचक (माता रोग) : भेड़ों में छूआछूत से फैलने वाले संक्रामक रोगों में से चेचक रोग एक आमुख विषाणु जनित रोग है। यह रोग हालांकि सभी नस्ल, लिंग व आयु के पशुओं को प्रभावित करता है परन्तु मेमनों में रोग की गंभीरता अधिक होती है। बीमार पशु के संपर्क में आने से चेचक तेजी से फैलता है तथा साल में कभी भी यह रोग हो सकता है। अधिकतर सर्दी के अंत में शुरु होकर वर्षा ऋतु के पूर्व तक चेचक रोग महामारी का रुप ले लेता है। इस रोग से प्रभावित भेड़ों मे तेज बुखार, आँख व नाक से पानी बहना, भूख न लगना, शरीर के ऊन रहित भागों जैसे आँखों के चारों और जाँघ की भीतरी तह पेट व पूँछ के नीचे क्षेत्रों पर सर्वप्रथम लाल रंग के दानों का उभरना, धीरे-धीरे दानों का आकार बढ़ना

व उनसे सफेद पानी या मवाद जैसा द्रव भरना तथा सप्ताह पश्चात् दानों का सूखना व खुरंड बन जाना आमुख लक्षण है। गर्भवती भेड़ों में गर्भपात तथा श्वांस सम्बन्धी परेशानी से उच्च मृत्युदर (विशेष कर मेमनों में) होती है। यह रोग के पश्चात् ऊन, मांस, दूध व खाल के उत्पादन में कमी होने से पशुपालक को काफी आर्थिक नुकसान उठाना पड़ता है।

रोग की शंका होते ही उसके फैलाव को रोकने के लिए प्रभावित पशु को सबसे पहले रेवड़ से अलग कर दें। रोगी को चारा-पानी ऐसे व्यक्ति से करानी चाहिए जो स्वस्थ पशुओं के संपर्क में न आए। चेचक के उपचार हेतु लम्बे समय तक क्रियाशील रहने वाली एन्टीबायोटिक दवा का प्रयोग करना चाहिए।

चेचक रोग के प्रति पशु पालकों में भ्रांति पाई जाती है कि यह दैवीय प्रकोप है और इस रोग में किसी प्रकार का टीका नहीं लगाना चाहिए। परंतु वैज्ञानिक रुप से ऐसा नहीं है। इस रोग की रोकथाम हेतु सभी वयस्क भेड़ों को माता रोग के प्रतिरोधक टीके प्रतिवर्ष कार्तिक-मंगसर (नवम्बर-दिसम्बर) में लगवाने चाहिए। मेमनों में 2-3 माह की आयु पर पहला टीका एवं बाद में प्रतिवर्ष एक बार टीकाकरण करवाना चाहिए। रोग से मृत पशुओं तथा रोगी के बिछोने व खाने से बची सामग्री को कास्टिक सोडा या नमक के साथ जमीन में गहराई में गाड़ देना चाहिए या जला देना चाहिए।

पीपीआर रोग : विगत 17-18 वर्षों से यह रोग महामारी के रुप में भेड़ व बकरियों में फैल रहा है। इस विषाणु जनित रोग से भेड़ों की तुलना में बकरियाँ अधिक आभावित होती हैं, इस रोग के विषाणु सीधे सम्पर्क एवं संक्रमित चारा-पानी के द्वारा फैलते हैं। रोग का प्रकोप वर्ष में कभी भी हो सकता है परंतु वर्षाकाल व शीतकाल में इस रोग के प्रकोप की संभावना अधिक रहती है। रेवड़ के अनेक पशुओं को तेज बुखार (104-106°फ.), नाक से पानी आना, होंठ/मसूढ़ों व मुँह के भीतर छाले या घाव होना, पतली लेई या पिचकारी की तरह निकलने वाला बदबूदार खूनी दस्त लगना, शरीर में पानी की कमी होना, श्वांस लेने में कठिनाई एवं 3-4 दिन में रोगी की मृत्यु आदि इस रोग के प्रमुख लक्षण है।

रोगी पशु में रोग का प्रकोप कम करने हेतु प्रभावित पशुओं को पशु चिकित्सक की सलाहनुसार एन्टीबायोटिक, बुखार कम करने वाली व दस्तरोधी दवा 3-5 दिन तक देनी चाहिए। इस रोग की रोकथाम हेतु पीपीआर का टीका तीन वर्ष में एक बार लगाना चाहिए। मेमनों में यह टीका 4-5 माह की उम्र में लगाया जा सकता है।

खुर-मुँह पका रोग (खुरसाडिया, सुगलिया) : यह छुआछूत से फैलने वाला विषाणु जनित रोग है। यद्यपि इस रोग से वयस्क भेड़ों की मृत्यु नहीं होती, परंतु शारीरिक कमजोरी होने से उनकी ऊन, मांस व दूध के उत्पादन में कमी हो जाती है। इस रोग में भेड़ों में तेज बुखार, मुँह तथा खुरों के बीच छाले या घाव हो जाने से पशु को चलने-फिरने व खाने-पीने में परेशानी होती है, मुँह से लार गिरना आदि लक्षण प्रकट होते हैं।

उपचार हेतु रोगी पशु के मुँह व खुरों के घावों को लाल दवा (पोटेशियम परमेग्नेट) या फिटकरी

के पानी से धोकर, खुरों के घावों पर एन्टीसेप्टिक मलहम लगावें। पशु चिकित्सक की सलाहनुसार एन्टिबायोटिक व बुखार कम करने की दवा से उपचार करें। प्रभावित क्षेत्रों में रोग से बचाव हेतु साल में दो बार (पौष-माघ तथा आषाढ-श्रावण माह में) नियमित रुप से सभी वयस्क भेड़ों को खुर-मुँह पका रोग का प्रतिरोधक टीका लगाना चाहिए। किसी क्षेत्र में रोग फैलने पर उस क्षेत्र के पशुओं का आवागमन नहीं करें, रोगी पशु को स्वस्थ पशुओं से अलग रखें, रोगी पशुओं को नदी, तालाब, पोखर आदि में पानी नहीं पीने देवें तथा रोगी पशुओं को सूखे स्थान पर रखें।

ब्लूटंग (निर्लसना) रोग : यह विषाणु जन्य रोग क्यूलिकोईडिस नामक मच्छरों के काटने से फैलता है। इस रोग का प्रकोप नमीयुक्त गर्म मौसम तथा बंसत ऋतु में अधिक होता है। गीले, कीचड़युक्त क्षेत्र को, बहते पानी की धार के किनारे पर तथा गोबर-मिंगनी की प्रचुरता में विषाणु को संवहन हेतु मच्छर प्रजनित होते हैं। इस रोग से ग्रसित पशु में तेज बुखार, मुँह में छाले, मुँह के कोनों पर झाग, चेहरे पर सूजन, तेज श्वसन गति, श्वांस लेने में कठिनाई, लंगडापन होना, पशु का अगला पैर रुकना व चलने में परेशानी होना, लगातार कमजोर होना, गर्भवती भेड़ों में गर्भपात होना या गर्भस्थ विकलांगता होना तथा मेढ़ों के वीर्य में विकृति होने से रेवड़ की प्रजनन क्षमता में कमी होना प्रमुख लक्षण हैं।

रोगी पशु को एन्टिबायोटिक, दर्दनिवारक एवं बुखार कम करने की दवा पशु चिकित्सक की सलाहनुसार 3-5 दिन तक देनी चाहिए। रेवड़ को मच्छरों के आक्रमण से बचाने हेतु बाड़ों के आस-पास साफ-सफाई का ध्यान रखें तथा मानसून व शरद् ऋतु में सुबह-शाम के समय रेवड़ के आस-पास नीम की पत्तियों को जलाकर धुआँ करें।

जाडिया रोग (कांटेजियस एक्थाइमा) : विषाणु से होने वाली यह बीमारी सभी नस्ल, उम्र व लिंग की भेड़ों में होती है। वयस्क पशुओं की अपेक्षा मेमनों में यह रोग तेजी से फैलता है। नवजात मेमनों को यह रोग सामान्यतया बसंत ऋतु के समय अधिक फैलता है। रोग के विषाणु संक्रमित चारा-पानी एंव रोगी पशु के सम्पर्क में आने से फैलते है। बीमार पशु के होंठ, मुँह, आँख की पलकें, जीभ, तालू व जबड़ों के कोने से लगी हुई त्वचा पर छाले/गमड़ी हो जाती है। होंठों व जबड़ों के कोने पर मवादयुक्त घाव होने से पशु को पीड़ा होती है। जिससे मेमने दूध पीना व चरना बंद कर देते हैं। फलस्वरूप उनकी शारीरिक वृद्धि रूक जाती है।

प्रभावित पशु को स्वस्थ पशुओं से अलग रखना चाहिए तथा लक्षणों की तीव्रता के आधार पर पशु चिकित्सक की सलाहनुसार एन्टिबायटिक दवा देनी चाहिए तथा घावों पर नीली दवा (जेंसन वायलेट) का 1.0 प्रतिशत घोल लगाना चाहिए।

जीवाणुओं से होने वाले रोग

फड़किया रोग : जीवाणु से उत्पन्न जहर से होने वाला यह रोग रेवड़ में भेड़ों की अचानक मृत्यु का सबसे बड़ा कारण माना जाता है। इस रोग का आगमन वर्षा ऋतु में नई, हरी-हरी रसीली घास की अत्यधिक उपलब्धता के समय, रबी मौसम में फसलों की कटाई के पश्चात् खेतों में चराने से एवं

असामयिक समय पर मौसम में बदलाव जैसे माघ-फाल्गुन माह में ओलावृष्टि होने पर से चने की फसल खराब होने पर उनका अचानक व अधिक मात्रा में सेवन करने से होता है। यह भी देखा गया कि लम्बे समय तक पशुओं को पर्याप्त चारा/ पोषण नहीं मिलने के पश्चात् अचानक भरपेट पौष्टिक आहार मिलने पर फड़किया रोग उत्पन्न हो जाता है। इस रोग से रेवड़ का स्वस्थ तथा मोटा-ताजा पशु सबसे पहले प्रभावित होता है। अधिक पौष्टिक आहार या घास खाने से आँतों में रह रहे फड़किया के जीवाणु एक विशेष प्रकार का जहर बनाना शुरू कर देते हैं। जैसे-जैसे यह जहर खून में पहुंचता है तो रोग के लक्षण प्रकट होने लगते है।

प्रभावित रेवड़ में अचानक स्वस्थ पशुओं की मृत्यु होना, रोगी पशुओं की मांसपेशियों में खिंचाव, उत्तेजना से इधर-उधर कूदना, सिर को दीवार या खंबे से टकराना, मुँह से झाग निकलना, बैचेन होना, आकाश की तरफ सिर करना, दाँतों को किटकिटाना एंव एक ओर चक्कर लगाना जैसे लक्षण दिखाई देते हैं। अंतिम अवस्थामें रोगी भेड़ अर्ध-मूर्छित होकर जमीन पर गिर जाती है तथा लेटे-लेटे साईकिल चलाने की तरह टाँगें चलाता है और लक्षण प्रकट होने के 3-4 घंटे में मर जाता है। मृत पशु के शव परीक्षण पर गुर्दों का पिलपिला होना, दिल की ऊपरी सतह पर खून के धब्बे व हल्के पीले रंग का द्रव का पाया जाना महत्वपूर्ण लक्षण हैं।

राजस्थान की जलवायु कृषि व पशुपालन पद्धति के आधार पर यह पाया गया कि रोग का प्रकोप होने की संभावना वर्ष में दो बार फाल्गुन व श्रावण माह में होती है। अतः रोग से बचाव हेतु फड़कियां के टीके नजदीकी पशु चिकित्सालय में आवश्यक रूप से वर्ष में दो बार (छः माह के अंतराल पर) लगवाना चाहिए। मेमनों को तीन माह की आयु पर प्रथम व उसके 14 दिन बाद पुनः टीका लगवाना चाहिए। रेवड़ में रोग होने की स्थिति में भेड़ पालकों को चाहिए कि अगले सप्ताह तक रेवड़ की चराई कम से कम करावें। अधिक पोषक दाना-चारा नहीं खिलावें तथा अचानक चारे में परिवर्तन नहीं करें।

इस रोग के बारे में भेड़-पालकों में कुछ भ्रांतियाँ भी पाई गई हैं। उनका सोच है कि नया चारा खाने से पशुओं के खून का बदलाव होता है जिससे फड़कियां रोग हो जाता हैं अंतःकृमिनाशक दवाएँ पशु का खूनजलाती है, जिससे फड़कियां रोग नहीं होता तथा पशुओं के शरीर से खून निकाल देने से (कान काटकर) रोग का प्रकोप कम होता है। वैज्ञानिक तथ्यों के आधार पर फड़किया रोग से इन भ्रातियों का कोई सम्बन्ध नहीं है। अतः पशु पालक ध्यान रखें कि यह रोग जीवाणु के जहर बनाने से होता है तथा पशु के शरीर में खून की मात्रा निश्चित होती है। अतः पशु के शरीर पर अनावश्यक रूप से घाव न करें, केवल समय पर टीकाकरण व संतुलित आहार व्यवस्था से ही रोग से बचाव करें।

जोंस रोग : यह भेड़, बकरी, गाय एवं भैंस में टी.बी. जैसे जीवाणु से होने वाला एक चिरकालिक (लम्बे समय का) संक्रामक रोग है। इसका प्रकोप सामान्यतया वयस्क पशुओं में ही दिखाई देता है। रोग के जीवाणु का संक्रमण मेमनों में रोगी मां के दूध से हो जाता है। यह रोग वर्ष में कभी भी हो सकता है किन्तु ब्यांत के समय, दुग्धावस्था के दौरान व कमजोरी बढ़ने पर रोग के लक्षण अधिक तेजी से दिखाई देते है। रोगी पशु की मेगनी में मौजूद जीवाणुओं से चारा-पानी का लगातार प्रदूषण होने से यह रोग रेवड़ में एक पशु

से दूसरे पशु में फैलता है। इस रोग से प्रभावित पशु खूब खाने के पश्चात् भी धीरे-धीरे कमजोर हो जाते है व रूक-रूक कर पतले दस्त होना प्रमुख लक्षण है।

इस रोग का कोई प्रभावी उपचार नहीं होने से रोग की रोकथाम व फैलाव हेतु रेवड़ के सभी पशुओं की मेगनी की समय-समय पर जांच करवा कर प्रभावित पशु का वध करा देना ही सर्वोत्तम विधि मानी गई है। बाड़े की सफाई करके प्रभावकारी रासायनिक दवाओं जैसे सोड़ियम आर्थो-फिनायल फीनेट (1:200) का छिड़काव कराकर कुछ दिनों के लिए बाड़े को खाली छोड़ देना चाहिए। रोगी भेड़ की पहचान होने पर उसे रेवड़ से अलग रखें तथा चरागाह पर नहीं जाने देना चाहिए। जिसमें जीवाणुओं का व्यापक संक्रमण नहीं हो।

एन्थ्रेक्स (तिल्ली रोग) : इस रोग का प्रकोप गर्म नम जलवायु क्षेत्रों में अधिक होता है। यह रोग सामान्यतया वर्षा ऋतु के प्रारम्भ में होता है। नवजात पशुओं की अपेक्षा वयस्क पशु अधिक प्रभावित होते है। मिट्टी में उपस्थित रोग के जीवाणुओं को घास के साथ खाने से यह रोग होता है तथा मनुष्यों में भी संक्रमण हो जाता है।

भेड़ों में यह रोग सामान्यतया अतितीव्र रूप में होता है, जिससे रोगी पशु कभी-कभी लक्षण प्रकट होने से पहले या 1-2 घंटे की बीमारी में ही मर जाता हैं प्रभावित पशु में तेज बुखार, उत्तेजना, पैर पटकना, सिर हिलाना, जुगाली बंद होना, मुँह व आँखों में नीलापन होना, मुँह, नाम व गंदा से खून बहना आदि प्रमुख लक्षण हैं।

रोग की प्रारम्भिक अवस्था में पेनिसिलिन इंजेक्शन पशु चिकित्सक की सलाहनुसार लगाना चाहिए। इस बीमारी से मरे हुए पशु को गहरे गड्ढे में चूना या कास्टिक सोड़ा की परत के बीच गाढ़ देना आवश्यक है। किसी भी हालत में इस रोग से मृत पशु को खुले में नहीं फेंके।

टिटेनस (ताण की बीमारी) : यह तीव्र व छूआछूत से नहीं फैलने वाला जीवाणु जनित रोग है, जिससे छह माह तक के मेमनें सबसे अधिक प्रभावित होते हैं मेमनों के जन्म के समय नाभिनाल को टिंचर आयोडीन से उपचारित न करने, बधियाकरण व ऊन कतरन से बने घाव के उपचार पर समुचित ध्यान न देने पर रोग की संभावना बढ़ जाती है। बीमारी की शुरूआत में शरीर में अकड़न, चलने-फिरने में कठिनाई, सिर व गर्दन का धनुषाकार की तरह खिंच जाना, दोनो जबड़ों का आपस में भिंच जाना व जमीन पर गिर जाना प्रमुख लक्षण है। रोग की रोकथाम हेतु बाड़े की उचित सफाई तथा नवजात मेमनों व वयस्क पशुओं के घावों का सही उपचार करवाना चाहिए। रेवड़ में इस तरह का रोग बार-बार होने पर, गर्भावस्था के अंतिम अवस्था मे टिटनेस टाक्साईड़का टीका लगा देने से नवजात मेमनों में रोग की संभावना नगण्य हो जाती है।

खुरलगन : भेड़ों में वर्षा के दिनों में होने वाली यह आम बीमारी है। यह रोग कम वर्षा वाले रेतीले क्षेत्रों की अपेक्षा अधिक वर्षा, अत्यधिक गीले चरागाह में चरने तथा कीचड़युक्त बाड़ों में रहने वाले रेवड़ों में अधिक होता है। जीवाणुओं से होने वाला यह रोग शुरूआत में रेवड़ में एक या अनेक पशुओं के एक या

अधिक पैरों में लंगड़ापन के रूप मे आता है। कुछ समय पश्चात् खुर में कई दरारें व गड्ढे हो जाते है तथा अन्य जीवाणुओं के संक्रमण से घाव में मवाद आने लगती है। मवाद भर घास में मक्खियाँ आकर्षित होकर घाव में अण्डे दे देती हैं जिससे रोगी की गम्भीरता बढ़ जाती है। बीमारी पर ध्यान न देने पर पशु मे कमजोरी, वजन व उत्पादकता में कमी होने से काफी आर्थिक नुकसान होता है।

रोग से बचाव हेतु वर्षा के दौरान सप्ताह में दो बार नीला थोथा (10 प्रतिशत) के घोल से खुरों को धोवें तथा 2-3 मिनिट डुबोकर रखने से शीघ्र लाभ होता है। पशु चिकित्सक की सलाहनुसार लम्बे समय तक क्रियाशील रहने वाली पेनिसिलिन के इंजेक्शन तथा दर्द निवारक दवा दिलवानी चाहिए। बढ़े हुए खुरों को पहली बरसात के बाद काट देना चाहिए। बाड़े की सफाई तथा चरागाह में पानी का समुचित निकास होना चाहिए।

न्यूमोनिया : यह एक प्रमुख रोग है, जिससे सभी आयु के पशु प्रभावित होते है। पशुओं में अनेक प्रकार के विषाणु, जीवाणु, फफूँद एवं परजीवी न्यूमोनिया रोग पैदा करते है। इनमें से अनेक रोगाणु स्वयं न्यूमोनिया रोग पैदा कर पाने में असमर्थ होते हैं किन्तु किसी भी प्रकार के तनाव पैदा होने पर रोगरोधी क्षमता में कमी आते ही इस रोग की शुरूआत हो जाती है। प्रतिकूल मौसम में ऊन कतरने या ठंड के दिनों में खुली जगह पर पशुओं को रखने व बरसात में भीग जाने पर यह रोग ज्यादा होता है। इस रोग में पशु के फेफड़ों व श्वसन नलिका में संक्रमण के कारण सूजन हो जाती है जिससे पशु को श्वास लेने में कठिनाई होती है। रोगी पशु मे सुस्ती आना, कान लटक जाना, बुखार होना, नाक व आँख से पानी बहना, कभी-कभी नाक से खून बहना, भूख न लगना, खाँसी होना, लगातार कमजोरी आना व मृत्यु होना प्रमुख लक्षण है।

पशु चिकित्सक की सलाहनुसार एंटीबायोटिक व बुखार कम करने वाली दवा 3-5 दिनों तक देनी चाहिए। पशुओं को प्रतिकूल मौसम (विशेषकर कार्तिक व माघ-फाल्गुन माह में सुबह व शाम को) बाड़े में हवा का आवागमन सही होना चाहिए तथा ऊन कतरन के पश्चात् रेवड़ को वर्षा में भीगने से अधिक ठंड से बचाना चाहिए।

गर्भपात : पशुओं में गर्भपात अनेक संक्रामक रोगाणुओ से होता है। कुल गर्भपात में से लगभग 50 प्रतिशत असंक्रामक कारणों से होते हैं। जीवाणु जनित गर्भपात एक गम्भीर समस्या है क्योंकि जो भेड़ एक बार बच्चा गिरा देती है वह भेड़पालक के लिए अगले बच्चे तक भार बन जाती है, जिससे भेड़ पालक को आर्थिक हानि का सामना करना पड़ता है। गर्भपात मुख्यतः ब्रुसेलोसिस, विब्रयोसिस, साल्मोनेलोसिस व क्लोमाईडियोसिस जैसे जीवाणुओं के संक्रमण से होता है। पशु के खान-पान, रख-रखाव में कमी, जलवायु परिवर्तन, गर्भवती मादा को दूर तक परिवहन करने अथवा विषाणु जनित रोग जैसे निर्लसना, माता, खुर-मुँहपका रोग, परजीवी जनित रोग जैसे टॉक्सोप्लाजमोलिसस से भी गर्भपात हो सकता है।

रोगी भेड़ से जीवाणु बच्चेदानी के स्त्राव, मूत्र, गोबर, प्लेसेन्टा आदि के द्वारा बाहर निकलते हैं तथा स्त्राव से सने हुए चारा-दाना खाने, पशु की योनि चाटनें, सम्भोग से, स्वस्थ पशु रोग ग्रसित होकर बार-बार बच्चा गिराता है। रोगी भेड़ के सम्पर्क द्वारा ये रोग मेढ़े के जननांगों को प्रभावित करके उनको

रोग ग्रसित कर देता है। जो इस रोग के संवाहकर बन जाते है। इस रोग से होने वाले नुकसान से बचाने हेतु भेड़ पालकों को ग्याभिन भेड़ों पर विशेष ध्यान देना चाहिए। यदि किसी भेड़ की योनि से खून या खून मिश्रित स्त्राव (मेला गिरना) निकलता दिखे तो गर्भपात की संभावना समझना चाहिए। रोगी मादा पर निगाह रखते हुए निम्न उपाय करने चाहिए।

- ❑ मरे हुए मेमनों (अविकसित) का पशु चिकित्सक से शव परीक्षण करवाना चाहिए ताकि गर्भपात के कारण का पता चल सके तथा मादा का सही उपचार हो सके।
- ❑ संक्रामक गर्भपात छूत की बीमारी हो सकती है। अतः अन्य ग्याभिन मादाओं में संक्रमण से बचाव के उपाय करने चाहिए।
- ❑ भेड़ों के पोषण व रख-रखाव पर पर्याप्त ध्यान देवें।
- ❑ प्रजनन में प्रयोग होने वाले नर (मेढ़ें) के रक्त की जाँच समय-समय पर करा लेना चाहिए जिससे रोगाणु पूरे रेवड़ में फैलने का खतरा नहीं रहे। यदि मेढ़ां ब्रुसेलोसिस से ग्रसित पाया जाता है जो उसे तुरंत प्रभाव से रेवड़ से हटाकर वध करवा देना ही उचित रहता है।
- ❑ गर्भपात के उपरान्त जैर व अन्य स्त्राव को जमीन में दबा या जला देना चाहिए।

कोलिबेसिलोसिस : यह रोग मुख्य रूप से मेमनों में 2-6 सप्ताह की उम्र में होता है। इस रोग से नवजात मेमनों में मृत्युदर सबसे अधिक होती है। मौसम तथा बाड़े में नमी तथा धूप की कमी होने पर इस रोग की संभावना बढ़ जाती है। अतः शीतकाल के अंतिम दौर में उत्पन्न हुए मेमनों में दस्त रोग होने लगता है। रोग के जीवाणु मुँह द्वारा पशु के शरीर में प्रवेश कर आँतों में रोग उत्पन्न करते है। मेमनों के जन्म के पश्चात् खीस नहीं पिलाने पर रोग की संभावना ज्यादा होती है।

रोगी मेमनों में पीले या भूरे रंग के पतले दस्त लगते हैं तथा कभी-कभी दस्त में खून भी आने लग जाता है। पेट दर्द होने से मेमनों की पीठ धनुषाकार हो जाती है। दस्त से सनी पूँछ प्रायः उठी रहती है। समय पर उपचार नहीं होने पर लगातार कमजोरी से मेमने खड़े नहीं रह सकते तथा 2-3 दिन में ही मृत्यु हो जाती है। रोग के जीवाणु को शरीर में संक्रमण फैलने से तेज बुखार आना, सिर को एक ओर झुकाना, पैरो में जकड़न होना व चलने में कठिनाई होना, न्यूमोनिया के लक्षण होना, अचेत होना प्रमुख लक्षण है।

इस रोग से बचाव के लिए मेमनों को जन्म के पश्चात् खीसपिलाने पर विशेष ध्यान देना चाहिए। जन्म के दो घंटे के अन्दर प्रत्येक नवजात को 60 से 120 मिली खीस पिलाना चाहिए। जहाँ तक संभव हो प्रसव खुले स्थान पर होने देना चाहिए तथा बाड़े में पर्याप्त हवा व धूप आने की व्यवस्था रखें। रोग के लक्षण दिखाई देने पर पशु चिकित्सक की सलाह पर एन्टीबायोटिक दवा व जीवन रक्षक घोल से उपचार करवाना चाहिए तथा रोगी मेमनों को सीमित मात्रा में दूध पिलाना चाहिए।

परजीवी जनित रोग

भेड़- बकरियों में अनेक प्रकार के आंतरिक व ब्राह्मपरजीवी पाए जाते हैं। पशुओं पर परजीवी रोगों का प्रभाव मौसम व जानवर की उम्र आदि के अनुसार होता है। सामान्यतया शारीरिक रूप से कमजोर व कुपोषण की दशा में परजीवियों का प्रभाव अधिक दिखाई देता है। आंतरिक परजीवी शरीर के अंदरूनी अंगों (जैसे आहारनाल, यकृत, फेफड़े) खून व उतकों में तथा ब्राह्म परजीवी शरीर के ऊपर त्वचा पर आक्रमण करके न सिर्फ पशु को बीमार करते है अपितु विभिन्न प्रकार के रोगों को फैलाने में भी सहायक होते हैं।

आंतरिक परजीवी

भेड़ों की जमीन से सटकर चारा चरने की आदत से इनमें अंतःकृमियों का संक्रमण अत्यधिक होता है तथा सामान्य भाषा में भेड़ों को परजीवितयों का संग्रहालय भी कहा जाता है।

गोल कृमि : पशुओं के पेट एंव आँतों में विभिन्न प्रकार के गोल कृमि पाए जाते हैं। ये कृमि पशुओं का रक्त चूसने के साथ-साथ अंगों में सूजन व जलन पैदा करते हैं जिससे पशु की खुराक कम हो जाती है तथा शरीर का वजन दिन-प्रतिदिन कम होने लगता है। शरीर में रक्त की कमी, जबड़े के नीचे व गले में सूजन (गलसूजा), दाँत किटकिटाना, शरीर में खनिज तत्वों की कमी होने से पशु द्वारा मिट्टी या अन्य न खाने वाली वस्तुएँ (जैसे कागज, पोलीथिन, चमड़ा आदि) खाना प्रमुख लक्षण है। राजस्थान सहित पूरे भारतवर्ष में सबसे अधिक हानिकारक गोलकृमि द्वारा पशु अत्यधिक रक्त चूसने के कारण आँखों की प्रतिक्रिया सफेद (एनिमिया) हो जाती है।

इन कृमियों से होने वाले नुकसान से बचने हेतु इनका प्रभावी नियंत्रण आसानी से किया जाता है। यह पाया गया है कि भेड़ पालक एक वर्ष में 3-4 बार अंतःकृमिनाशक दवा पिलाते हैं जो कि एक अनावश्यक खर्च है। केन्द्रिय भेड़ एंव ऊन अनुसंधान संस्थान द्वारा राजस्थान मे किए गए सर्वेक्षण, अनुसंधान व प्रदर्शन के नतीजों के आधार पर सभी भेड़ पालकों को सलाह दी जाती है कि गोल-कृमियों के प्रभावी नियंत्रण हेतु वर्ष में एक बार (रक्षा बंधन के आस-पास) मानसून के मध्य में सही प्रकार की अंतःकृमिनाशक दवा पिलानी चाहिए। मानसून की अवधि ज्यादा होने पर मिगनियों की जाँच के आधार पर रेवड़ की कुछ भेड़ों को सर्दी शुरू होने के वक्त दवा पिलाने की आवश्यकता हो सकती है। अतः इस व्यवस्था को अपनाने से अंतकृमियों पर किए जा रहे अनावश्यक खर्च में भेड़ पालक अपने आप को बचा सकते है।

एम्फिस्टोमस : ये कृमि चने के आकार व गुलाबी रंग के होते है तथा सामान्यतया भेड़ के बड़े पेट में पाए जाते है। इन कृमियों की अवयस्क अवस्था अधिक हानिकारक होती है। इन कृमियो से ग्रसित भेड़ को तीव्र दस्त लगते है तथा जबड़े के नीचे सूजन आ जाती है। शरीर में रक्त व पानी की कमी हो जाती है। इस रोग का प्रकोप गर्मियों का संक्रमण तालाब नदी में पाए जाने वाले पौधोसे संक्रमित घास के खाने से होता है।

यक त क मि (लीवर फ्लूक) : ये कृमि पत्ति के आधार के होते है तथा पशु के यकृत (जिगर/ लीवर) में पाए जाते हैं। पानी से मिलने वाले घोंघा इस रोगाणु के फैलाव के लिए आवश्यक होता है। तालाब व

नदी के किनारे पर उगी हुई घास पर चरने से इनका संक्रमण तेजी से बढ़ता है। इन कृमियों द्वारा पित्त की नलिका में सूजन व यकृत को जख्मी करने से रोगी पशु को भूख का न लगना, शरीर से खून की कमी होना, पीलिया होना, शारीरिक वजन कम होना तथा गलसूजा होना प्रमुख लक्षण है।

प्रभावित रेवड़ में लक्षण दिखाई देने पर मेंगनी की जाँच करवाकर, स्थानीय पशुचिकित्सक की सलाहनुसार आक्सीक्लोजेनाईड़, रेफोक्सानाईड़, ट्राईक्लेबेन्डेजोल आदि दवा एम्फिस्टोमस के लिए मार्च-अप्रैल माह में तथा यकृत कृमि के लिए अक्टूबर माह में देनी चाहिए। रोग की रोकथाम हेतु पशुओं को दलदली व तालाब के पास वाले चरागाह में विशेषकर सुबह व शाम के समय नहीं चराना चाहिए।

रक्त क मि : ये धागे नुमा कृमि पशु की आँतों की रक्त नलिकाओं में पाए जाते हैं तथा इनका संक्रमण, त्वचा द्वारा या संक्रमित चारे-पानी से होता है। त्वचा द्वारा संक्रमण होने पर पशु के मुँह व नाक पर छाले के समान घाव हो जाते है। वयस्क कृमि द्वारा प्रभावित भेड़ में पीलिया के लक्षण दिखाई देते हैं। पशु के पेशाब का रंग लाल हो जाता है, मिंगनिया सूखी हुई होती है तथा यकृत में नुकसान होने से रोगी की मृत्यु भी हो जाती है। इन कृमियों के उपचार हेतु प्राजिक्विंटल नामक दवा का उपयोग पशु चिकित्सक की सलाहनुसार किया जा सकता है।

फीताक मि : कपड़ा नापने के फीते समान लम्बे (कुछ धागे जैसे लम्बे) कृमि आमतौर पर पशुओं में चारे के द्वारा फैलते हैं। इन कृमियों से संक्रमण होने पर इनके टुकड़े कट-कट कर मेंगनी के साथ शरीर से बाहर निकलने लगते हैं। ये कृमि पशु की आँतों में निवास करते हैं जिससे पशु की आँतों द्वारा पोषक पदार्थो का अवशोषण करने की क्षमता में कमी हो जाती है तथा प्रभावित पशु विशेषकर मेमने कमजोर हो जाते हैं तथा पेट के नीचे पानी भरा प्रतीत होने लगता है। इन कृमियों के उपचार सामान्य रूप से कान के लिए जाने वाली अंतःकृमिनाशक दवा जैसे बेनजिमिडेजोल आदि काम में ली जाती है।

अंतःक मिनाशक दवा के प्रयोग में निम्न बातों को ध्यान रखना चाहिए

अंतःकृमिनाशक दवा के अनावश्यक, अनियमित व बार-बार प्रयोग से या एक ही तरह की दवा को साल दर साल पिलाने से परजीवियों पर उनका असर कम होता जा रहा है। भेड़ पालकों को ध्यान होगा कि विगत 15-20 सालों पहले पिलाई जाने वाली बहुत सी दवाएँ मनमानी तरीके से पिलाते रहने के कारण बेकार हो गई। इसलिए अंतःकृमिनाशक दवा का चुनाव व पिलाने का समय निश्चित करने के लिए निम्न बातों का ध्यान रखना चाहिए।

- ❑ राजस्थान की जलवायु के अनुसार मानसून के मध्य में (रक्षा बंधन के आस-पास) एक बार सही अंतःकृमिनाशक दवा देनी चाहिए। अर्ध-शुष्कीय क्षेत्रों में आवश्यकतानुसार मेंगनियों की जांच के आधार पर अक्टूबर माह में प्रभावित भेड़ों को पुनः दवा पिलानी चाहिए।
- ❑ एक साल में एक ही प्रकार की दवा का प्रयोग रेवड़ में करें। कभी भी दो तरह की दवाएँ आपस में मिलाकर नहीं पिलावें।

- ❑ दवा का प्रकार पशु चिकित्सक की सलाह से प्रत्येक साल में बदल देवें।
- ❑ दवा की मात्रा तय करने हेतु भेड़ के वजन का सही अंदाज लगाकर सबसे भारी भेड़ के अनुसार ही पूरे रेवड़ को (मेमनों के अलावा) अंतःकृमिनाशक दवा पिलावें। भेड़ पालक ध्यान रखें कि कभी भी दवा की मात्रा कम नहीं करें।
- ❑ प्रायः यह देखा गया कि रेवड़ में दस्त का प्रकोप या गलसूजा होने पर एंव यहाँ तक कि किसी भी प्रकार की बीमारी होने पर भेड़ पालक स्वयं के स्तर पर दवा विक्रेता की सलाह से सर्वप्रथम अंतःकृमिनाशक दवा लेते रहते है। अतः यह ध्यान में रखें कि दस्त लगना, कमजोरी होना, गलसूजा होने के कारण पेट व आँतों के कीड़ों के अलावा अन्य बीमारियों भी होती हैं। इसलिए जहाँ तक संभव हो सके रेवड़ मे लक्षण दिखाई देने पर मिंगनियों की जांच के पश्चात् केवल पशु चिकित्सक की सलाह से ही अंतःकृमिनाशक दवा देवें।
- ❑ दवा पिलाने के दिन से 7 दिन पहले पशु को सूखा चारा खिलाने तथा दवा पिलाने के 18-24 घंटे पहले की पशु की चराई बंद करने से अंतःकृमिनाशक दवा अधिक देर तक प्रभावी होती है।
- ❑ अंतःकृमिनाशक दवा पिलाने हेतु काँच की शीशी की जगह प्लास्टिक की सीरिज का प्रयोग करना ज्यादा उपयुक्त रहता है। इससे दवा की खुराक सही मात्रा में जीभ के पिछले हिस्से पर छोड़ देने से दवा सही है।

काक्सीडियोसिस : यह रोग मेमनों मे विशेष प्रभाव दिखाता है जबकि वयस्क पशुओं में रोग के लक्षण उत्पन्न किए बिना रोगाणु आँतों की कोशिकाओं मे रहते है। इस रोग के परजीवी संक्रमित चारा-पानी के साथ पशु के शरीर में प्रवेश कर जाते हैं। प्रभावित मेमनों में सुस्ती, कम भुख, पेटदर्द, दस्त शरीर का पिछला भाग व पूंछ मल से सना होना तथा शरीर में पानी की कमी होना प्रमुख लक्षण होते हैं। उपचार हेतु चिकित्सक की सलाह से सल्फामेजाथीन एम्पोलियम यूराजोलिड़ोन आदि कोक्सीडियारोधी दवांए कम से कम 5 दिन तक लगातार देनी चाहिए। रोग का संक्रमण रोकने हेतु बाड़े की नियमित सफाई करना तथा बाड़े में पशुओं की संख्या को सीमित रखना आवश्यक है।

बाह्य परजीवी : ये परजीवी भेड़ों की त्वचा पर निवास करते है, जिससे त्वचा रूखी-सूखी हो जाती है तथा ऊन गिरने लगती है। इनसे प्रभावित पशु सुस्त हो जाते है व परवीजी द्वारा रक्त चूसने के कारण पशुओ में एनिमिया, कमजोरी, बैचेनी, ठीक से चारा-दाना नहीं खा पाना, उत्पादन में कमी होना प्रमुख लक्षण है। भेड़ों में पाए जाने वाले प्रमुख बाह्य परजीवी जनित रोग निम्न प्रकार है :

खाज (खुजली/ कराड़ी) : अत्यन्त छोटे-छोटे कीड़ों या बरूथियों (माइट्स) से उत्पन्न यह एक संक्रामक रोग है, जो रोगी पशु से स्वस्थ पशु में संपर्क से फैलता है। इस रोग से ग्रसित पशु की त्वचा पर छोटी-छोटी लाल फुंसियाँ हो जाती है जो धीरे-धीरे सफेद व चिपचिपे खुरंड़ से ढ़क जाती है। रोगी के शरीर से ऊन गिरने लगती है तथा चमड़ी मोटी व खुरदरी हो जाती है। शरीर में अत्यधिक खुजली होने से प्रभावित पशु

ठीक से चारा-पानी नहीं ले सकता। जिससे वह लगतार कमजोर होने लगता है। कराडी के लक्षण चेहरे पर, नाक के ऊपर होते है जबकि शरीर की खाज पैरों से लेकर पूरे शरीर में कहीं भी हो सकती है। यदि रोग से शरीर का थोड़ा हिस्सा प्रभावित हो तो इस रोग से उपचार हेतु मेलामियान, साइपरमेथ्रीन (0.05 प्रतिशत) को वेसलीन में मलहम बनाकर प्रभावित भाग पर सप्ताह में तीन बार लेप करना चाहिए। अन्य दवाएँ पशु चिकित्सक की सलाह से लगाई जा सकती है। रोगी के पूरी शरीर में खाज होने पर उसे कीटनाशक दवा के पानी से नहलाना ही उपयुक्त रहता है।

जूएँ : पशु के शरीर पर इनकी अधिकता से रोगी में खून की कमी (एनिमिया) हो जाती है तथा पशु की शारीरिक वृद्धि रूक जाती है। प्रभावित पशु की चमड़ी खुरदरी हो जाती है एंव जगह-जगह से ऊन गिरने लगती है। उपचार व रोकथाम हेतु पशु को मेलाथियान, साइथियान, साईपरमेथ्रिन को घोल से 15 दिन के अंतराल पर दो बार नहलाना चाहिए।

चीचड़ों का प्रकोप : भेड़ों के शरीर पर पाए जाने वाले चीचड़ों का जीवनकाल अधिकतर पशु के शरीर पर ही व्यतीत होता है। प्रजनन क्रिया के पश्चात् मादा चीचड़े पशु का खून चूस कर जमीन पर गिर जाती है तथा दीवारों पर दरारों व जमीन के अंदर अण्डे देती है। इन अण्डों से लार्वा निकल कर शरीर पर चढ़ जाते है। लगातार खून चूसने से पशु में बैचेनी व खून की कमी हो जाती है। इसके अलावा चीचड़ों द्वारा कई प्रकार की अन्य बीमारियाँ जैसे थिलेरियोसिस, वेबेसियोसिस, आदि की एक पशु से दूसरे पशु में फैलाते हैं। चीचड़ों से छुटकारा पाने हेतु साइथियान (0.1 प्रतिशत), डाएजिनान (0.05 प्रतिशत) साइयरमेथ्रिन (0.025 प्रतिशत) आदि दवा का प्रयोग प्रभावित जगहों (पूँछ के नीचे, मूतनी के आस-पास, कान के अन्दर जाँघ की अंदरूनी सतह) पर करना चाहिए। इसके साथ ही बाड़ों में स्वच्छता बनाए रखें तथा दीवारों की दरारों को समय-समय पर बंद करें।

नाक के कीड़े (लटों) का प्रकोप : यह रोग एक प्रकार की मक्खी द्वारा नाक के पास अण्डे देने पर होता है। अण्डों द्वारा लार्वा (लट) बनने के पश्चात् यह नाक के रास्ते सिर की तरफ चढ़ती चली जाती है जिससे नाक में खुजली व जलन से प्रभावित भेड़ की नाक तेजी से बहती है। बार-बार छींके आती हैं व छींक के साथ कभी-कभी लट भी जमीन पर गिरती है। लगातार बैचेनी के कारण पशु का स्वास्थ्य गिरता जाता है। रोग के उपचार हेतु रोफेक्सेनाईड़, क्लोसेटेल यया आइवरमेक्टिन जैसी दवाओं का प्रयोग अप्रैल-मई माह में करना चाहिए।

प्रमुख असंक्रामक रोग :-

अपच : पशुओ में खाने के प्रति अरूचि होना अपच रोग का प्रमुख लक्षण है। पशु के पेट में अपच का होना मौसम के बदलाव के अनुसार उपलब्ध घास-चारा के प्रकार व गुणवत्ता पर निर्भर है। फफूंदयुक्त काला पड़ा हुआ चारा-दाना खिलाने से यह रोग प्रायः हो जाता है। गर्मियों के मौसम में हरा चारा उपलब्ध नहीं होने के कारण सूखा चारा खाने पर पशु में क्षारीय अपच होती है जबकि अन्य मौसम में हरा चारा खाने से अम्लीय अपच होती है।

इस रोग से ग्रसित पशु में सुस्ती आना, खाने के प्रति अरूचि होना, जुगाली करना बंद हो जाना एवं हल्का कब्ज का अफारा होना प्रमुख लक्षण है। इस रोग के उपचार हेतु पशु चिकित्सक की सलाहनुसार पाचक चूर्ण व पेट तथा आँतों की गति बढ़ाने हेतु गोली देनी चाहिए। प्रभावित पशु को पर्याप्त मात्रा में पानी पिलाना चाहिए।

कब्ज : भेड़ द्वारा अत्यधिक मात्रा में कठोर चारा या भूसा खाने से या अचानक चारा बदलने से यथा पानी कम पिलाने से यह रोग होता है। रोगी पशु की भूख खत्म हो जाती है, जुगाली करना बंद हो जाता है, पेट के बाँयी कोख को मुट्ठी से दबाने पर पेट चारे से भरा व कड़ा होने का आभास होता है तथा कोख पर मुट्ठी का निशान काफी देर तक बना रहता है। आँतों में मिगनियाँ जम जाने से पशु द्वारा काफी जोर लगाने के बाद ही सूखा या कड़ा मल निकल पाता है। उपचार हेतु रोगी भेड़ को चिकित्सक की सलाह से इम्पेक्टजन पाऊड़र (20 ग्राम) व रूयूमटोन या बायोबूस्ट की एक गोली 2-3 दिन देना चाहिए। गम्भीर अवस्था में पेट में एंटीबायोटिक व एविल का इंजेक्शन लगवाना चाहिए।

अफारा : रोगी के पेट में गैस एकत्रित होने से पेट फूलने को अफारा कहते है। अधिक मात्रा में हरा दलहनी चारा घास या दाना खिलाने से या आहार नली में रूकावट होने से यह रोग होता है। प्रभावित पशु को बेचैनी व सांस लेने में कठिनाई होती है। रोगी की बाँयी कोख में गोलाकार उभार हो जाते हैं जिसे हथेली से थपथपाने पर ढोल की तरह आवाज होती है। अत्यधिक पेट फूलने से, फेफड़ों पर दबाव बढ़ जाता है जिससे पशु की आँखें बाहर निकली हुई व नीली दिखाई देती है। समय पर सही उपचार नहीं होने पर मृत्यु भी होती है। प्राथमिक उपचार हेतु प्रभावित पशु के मुँह में एक इंच मोटी गोल लकड़ी का डंडा जबड़ों के बीच डालकर उसके दोनो सिरे पर रस्सी बाँधकर कान के पीछे बाँध देवें जिससे पशु मुँह से श्वास ले सकें। घर में उपलब्ध हींग (5 ग्राम) व तारपीन या खाद्य तेल (50 मिली) को मिलाकर पशु को पिलाने पर लाभ मिलता है। आवश्यकतानुसार पशु चिकित्सक की सलाह से चूर्ण (टिम्पोल) या ब्लोटोसिल (20 मिली) या अन्य दवा देनी चाहिए। रोग की रोकथाम हेतु दलहनी व हरा चारा अधिक मात्रा में नही खिलाना चाहिए तथा खुराक में अचानक परिवर्तन नहीं करना चाहिए।

दस्त : विभिन्न प्रकार के रोगाणुओं के संक्रमण एंव प्रदूषित आहार से आँतों में सूजन होने से पशु को बार-बार पानी जैसे पतले खून व आँव मिश्रित दस्त आने लगते है। पशु सुस्त जो आता है एंव पतले, दुर्गंध युक्त मल से पिछले पैर व पूँछ सने रहते हैं। शरीर में पानी की कमी होने से रोगी पशु कमजोर व थका-थका सा लगता है। उपचार हेतु सामान्य दस्त होने पर नेबलोन (10 ग्राम) जैसे दस्तरोधी पाऊड़र सादे पानी या चावल की मांगड में मिलाकर 2-3 दिन तक देना चाहिए। इसके साथ ही पेसुलिन, डाइरोक, सिप्रोटीजेड़ आदि दवा भी उपयोगी साबित होती है। गम्भीर अवस्था में रोगी के शरीर में पानी व अन्य तत्वों की कमी दूर करने हेतु नस में इलेक्ट्रोलाईट, रिंगरलेक्टेट आदि तरल औषधियाँ पशु चिकित्सक से लगवानी चाहिए।

नाभिनाल का पकना : यह नवजात मेमनों में होने वाला साधारण रोग है परन्तु कई बार इसके कारण मेमनों में ताण की बीमारी होने से मृत्यु दर बढ़ने की आशंका रहती है। नाभि नाल का जन्म के पश्चात्

सही तरीके से उपचारित नहीं करने पर इसमें मिट्टी के साथ-साथ जीवाणुओं का संक्रमण हो जाता है तथा इसमें सूजन व मवाद हो जाती है। इससे मेमनों को दर्द के कारण बेचैनी होती है तथा वह ठीक से पर्याप्त मात्रा में माँ का दूध भी नहीं पी पाता है। संक्रमण से बुखार आता है तथा घाव पर मक्खियों द्वारा अण्डे देने से उसमें कीडे पड़ जाते हैं। इस रोग से बचाव हेतु भेड़ पालकों को चाहिए कि जन्म के पश्चात् नाभिनाल को 2-3 इंच की दूरी पर धागे से बाँध कर काट देवें तथा कटे हुए भाग पर टिंचर आयोडीन लगा देवें।

घाव/ जख्म : रेवड़ में भेड़ों की ऊन कतरते वक्त, चरागाह में चरते वक्त, उबड़-खाबड़, पथरीले रास्तों पर चलाने पर, किसी प्रकार की चोट लगने पर त्वचा या शरीर के किसी भी भाग की सामान्य निरन्तरता में टूटन आने को घाव के नाम से जाना जाता है। शरीर पर घाव होना कोई एक बीमारी नहीं है, परन्तु थोड़ी सी लापरवाही से घाव द्वारा पशु को अनेक बीमारियाँ हो सकती है। कोई भी घाव शरीर के लिए कितना नुकसानदायक है यह इस बात पर निर्भर करता है कि घाव किस कारण से हुआ, कितना गहरा हुआ तथा कौन सा अंग प्रभावित हुआ। घाव के कारण पशु की उत्पादन क्षमता पर विपरीत प्रभाव पड़ता है। सामान्यतया प्रारम्भिक लक्षणों में घाव से खून का बहना, दर्द होना, सूजन आना प्रमुख है। लम्बे समय तक रहने वाले घावों में ग्रेन्ग्रीन (गलन) होने से बदबू आने लगती है तथा त्वचा गलने लगती है। मक्खियों द्वारा अण्डे देने पर उसमे कीड़े भी पड़ जाते है। घाव की गंभीरता व प्रकार के आधार पर पशु में बुखार आना, चारा-पानी के प्रति रूचि कम होना, चलने-फिरने में परेशानी होना दिखाई देता है।

उपचार हेतु घाव से निकलते हुए खून के बहाव को तत्काल टिंचर बेजांईन की गौज (पट्टी) द्वारा घाव को पेक कर देना चाहिए। घाव को लाल दवा के पानी से अच्छी तरह से साफ करें, घाव के आस-पास के बाल काटकर बिटाडीन जैसी जीवाणुनाशक दवा या मलहम लगावें। पुराने घाव से गले हुए ऊतकों को निकालकर नारमल सेलाईन या हाइड्रोजन पराक्साईड के घोल से घाव को साफ करें तथा एंटिसेप्टिक मल्हम जैसे लोरेक्सन, हिमेक्स, प्युरासिन, इन्टाडीन आदि या जीवाणुनाशक स्प्रे का प्रयोग करें। इसके साथ-साथ पशु चिकित्सक की सलाहनुसार एंटीबायोटिक दवा जैसे पेनिसिलन आदि देने से घाव में मवाद की संभावना कम हो जाती है। घाव में मवाद होने पर सर्वप्रथम 2-3 दिन तक उसका मेग्नीशियम सल्फेट के पाउडर से उपचार करें। घाव के कीड़े पड़ने पर तारपीन के तेल द्वारा कीड़ों को बाहर निकाले एवं इसके बाद महत्व का प्रयोग करें।

सुनियोजित रेवड़ स्वास्थ्य कार्यक्रम

आदिकाल से पशुपालन व्यवसाय को मानव जीवन में प्रथम क्रांति के रूप में जाना जाता है। हमारे देश में भेड़ व बकरियों से प्राप्त आय की भागीदारी न केवल आर्थिक दृष्टि से महत्वपूर्ण है बल्कि ग्रामीण क्षेत्रों में रोजगार का प्रमुख साधन है। संभावित बीमारियों से पशुओं का बचाव करना पशुपालन का हमेशा से महत्वपूर्ण अंग रहा है फिर भी हमेशा पशुपालन व्यवसाय से होने वाली आय को विभिन्न बीमारियों से गहरा नुकसान होता है। यह हानि प्रमुखतया रेवड़ में मृत्यु दर में बढ़ोत्तरी एवं बीमारी से उत्पादन क्षमता में कमी के कारण होती है। इसके साथ-साथ बीमार पशुओं का उपचार, सार-संभाल व नए पशुओं की खरीद पर होने वाला खर्च भी रोगों से होने वाले नुकसान को बढ़ाता है।

रेवड़ की उत्पादकता को प्रभावित करने वाले रोगों के उपचार, रोकथाम व उन्मूलन आदि से जुड़ी समस्याओं ने पशु-चिकित्सा वैज्ञानिकों का ध्यान हमेशा से आकर्षित किया है। फलस्वरूप यह पाया गया कि रेवड़ स्वास्थ्य परिचर्या जिसमें नियमित, योजनाबद्ध स्वास्थ्य परिचर्या व उत्तम रेवड़ प्रबन्धन सम्मिलित है, के द्वारा भेड़ पालक अधिकतम उत्पादन प्राप्त कर सकते है।

पशुओं में रोगाणुओं का संक्रमण न होने देना ही रोग नियंत्रण का प्रमुख व सुरक्षित तरीका है। रेवड़ को स्वस्थ रखने के लिए स्वास्थ्य परिचर्चा के सुनियोजित वार्षिक कार्यक्रमों की पालना करना अति आवश्यक है। सुनियोजित वार्षिक स्वास्थ्य कार्यक्रम के अन्तर्गत हमें सबसे पहले उन बातों की जानकारी होनी चाहिए जिससे हम यह पता लगा सकें कि रेवड़ में कौनसा पशु बीमार है। भेड़ स्वास्थ्य वार्षिक कार्यक्रम में टीकाकरण अंत कृमिनाशक दवाकरण, उपचार व मौसम के अनुसार स्वास्थ्य संबंधी बातों की जानकारी समावेशित होती है।

रेवड़ स्वास्थ्य परिचर्चा में निम्न बातों का ध्यान रखते हुए समयानुसार उपाय करने चाहिए :

- ❑ बरसात के मौसम में बढ़े हुए खुर काटें और दवायुक्त (नीला थोथा का 10 प्रतिशत घोल) पानी से खुरों को सप्ताह में दो बार धोएं ।
- ❑ बरसात के प्रारम्भ में नई-नई घास खाने से रेवड़ की लगभग सभी भेड़ों को दस्त लगते हैं जिससे पूँछ के आस-पास की गंदगी के कारण मक्खियों के द्वारा अंडे देने से बचाव हेतु भेड़ों के पिछले हिस्से की ऊन (जिसे क्रचिंग कहते है) करतना चाहिए।
- ❑ गर्भावस्था के अंतिम माह के दौरान गर्भवती भेड़ों को अतिरिक्त मात्रा में संतुलित व पौष्टिक आहार देने से नवजात मेमनों में भेड़ों में गर्भ-अतिविषाक्ता जैसी स्थितियों से बचाव होता है।
- ❑ रेवड़ की लगभग 20-30 प्रतिशत भेड़ों की मिंगनियों की नियमित जाँच के आधार पर ही अंतःकृमिनाशक दवा पिलावें।
- ❑ ऊन कतरन के पश्चात् त्वचा पर लगे घावों को मक्खियों से बचावें।
- ❑ मौसम में होने वाले अचानक बदलाव (अक्टूबर व फरवरी-मार्च में) रेवड़ को उपयुक्त आवास प्रदान करावें जिससे पाश्चयूरिलोसिस नाम बीमारी के प्रकोप से बच सके।
- ❑ गर्मियों में रेवड़ को पानी की कमी न होने देवें तथा लू से बचाने के लिए सुबह-शाम को चराई करावें।

भेड़ स्वास्थ्य परिचर्या का वार्षिक कार्यक्रम अपनाने से यह पाया गया है कि रेवड़ में सालाना मृत्युदर 20-22 प्रतिशत से घटकर 5-6 प्रतिशत रह गई। उपरोक्त वर्णित स्वास्थ्य कार्यक्रमों को अपनाने की लागत वर्तमान् समय में लगभग 30 -35 रूपये प्रति भेड़ प्रति वर्ष आती है एंव 100 भेड़ों के रेवड़ में भेड़ पालक को सीधा-सीधा 15 से 20 हजार रूपये प्रतिवर्ष का लाभ भेड़ों की मृत्युदर से होने वाले नुकसान को बचाकर होता है।

ग्रामीण परिवेश में अधिकतर पशुपालक गरीब व अनपढ़ होने के साथ-साथ रूढ़िवादी एंव असंगठित होने से किसी नई तकनीक को अपनाने में न केवल पीछे रहता है बल्कि नई विधियों के प्रति अरूचि दिखाकर नई पीढ़ी को भी हतोत्साहित करता है। अतः वर्तमान् समय में जरूरत है कि भेड़ पालक रोग नियंत्रण कार्यक्रमों की नई तकनीकों को अपनाकर बीमारियों के रोकथाम उपायों को लागू करें । इससे रोगों की गंभीरता में कमी के साथ-साथ मृत्युदर में आश्चर्यजनक कमी होने से उनमें स्वास्थ्य कार्यक्रमों की महत्ता, उपयोगिता व विश्वसनीयता का आभास होगा तथा पशु पालक को पूरा लाभ सीधे ही मिलेगा।

❑❑❑

पशुओं में औषधियाँ देने की विधियाँ

राधाकृष्ण[1], सज्जन सिंह[2] एवं काशीनाथ[3]

[1]पशुधन सहायक, [2]प्रधान वैज्ञानिक, [3]पशु चिकित्सा अधिकारी

राष्ट्रीय उष्ट्र अनुसंधान केन्द्र, बीकानेर

पशु शरीर एक मशीन के समान है। जिस प्रकार एक मशीन को सुचारू रूप से चलने के लिए उसमें तेल देने, सफाई करने एवं पूर्ण देखभाल करने आदि की आवश्यकता होती है उसी प्रकार पशु को स्वस्थ रखने के लिए उसकी पूरी देखभाल एवं पर्याप्त संतुलित पशु आहार दिए जाने की आवश्यकता होती है। उचित देखभाल एवं संतुलित पशु आहार की कमी के कारण पशु धीरे-धीरे कमजोर हो जाता है और विभिन्न रोगों से ग्रसित हो जाता है। पशु बीमार पड़ जाता है जिसके ईलाज हेतु पशु को औषधियाँ दी जाती है। पशुओं में दवाइयाँ कई प्रकार से दी जाती है। जिनका विवरण निम्नप्रकार से है :

1. मुख द्वारा 2. अन्त-त्वचीय 3. अन्त-पेशीय

4 अन्तःशिरा 5. स्प्रे द्वारा 6. स्थानीय रूप से

1. **मुख द्वारा** - इस विधि में पशु को दी जाने वाली औषधी उसके मुख में तरल रूप में अथवा घोल कर सावधानीपूर्वक दी जानी चाहिए। बोलस अथवा टेबलेट रूप में दी जाने वाली दवा को कूट-पीसकर आवश्यकतानुसार पानी में घोल कर पिलाया जाना चाहिए। पाऊडर रूप में औषधि देते समय आवश्यकतानुसार पानी में घोल कर बीमार पशु को पिलाते हैं। बोलस-बायोबूस्ट, रूमेनटॉन, पाबाडीन आदि पाउडर- रूचामेक्स, बतीसा, रूमिकेयर आदि एवं तरल ऑस्टो कैल्शियम आदि प्रकार की दवाइयाँ इसी विधि द्वारा बीमार पशुओं को दी जाती है। यह विधि सरल है तथा पशु पालक अथवा समझदार व्यक्ति इसे जानकर अपना सकता है। परंतु इस विधि में सावधानी नहीं बरतने पर दवाई को फेफड़े में चले जाने से बीमारी (ड्रेंचींग निमोनिया) होने की सम्भावना रहती है।

2. **अन्तःत्वचीय**- इस विधि में दी जाने वाली औषधि पशु के मांस एवं त्वचा के बीच इंजेक्शन द्वारा दी जाती है। पशुओं में खुजली रोग के ईलाज हेतु आईवरमेक्टिन एवं सर्रा रोग के उपचार में एंट्रीसाईड, ट्राईक्वीन आदि दवा इसी विधि द्वारा पशुओं को दी जाती है। इस विधि द्वारा औषधि दिए जाने के समय सावधानी नहीं बरतने पर दवा दिए जाने वाले स्थान पर फोड़ा होने की संभावना रहती है। अतः इस हेतु पशु चिकित्सक या पशु चिकित्सा सहायक की सहायता ली जानी चाहिए।

3. **अन्तःपेशीय** - इस विधि में पशु को औषधि सूई के द्वारा उसकी सुविकसित पेशी में देते हैं। अधिकतर पुट्ठे (ग्लुटीयल) की पेशी में औषधि इंजेक्शन द्वारा पशु के शरीर में प्रविष्ट करवाई जाती है। टेट्रासाईक्लीन एल ए, मेलोनेक्स, जीत, लेसिक्स आदि दवाइयाँ इस विधि द्वारा दी जाती है। इस विधि द्वारा दवा देते समय यह ध्यान रखा जाता है कि दवा पशु की पेशी में गहराई तक जानी चाहिए अन्यथा फोड़ा आदि होने का खतरा बना रहता है।

4. **अन्तःशिरा**- बीमार पशु को दी जाने वाली औषधि उसके रक्त में सूई द्वारा प्रविष्ट करवाते हैं। इसके लिए औषधि को सूई द्वारा उसकी गले (जुगुलर) नाड़ी में प्रविष्ट करवाया जाता है। इस विधि द्वारा दवा दिए जाने का यह लाभ है कि दवा शीघ्र पशु के पूरे शरीर में असर करती है परंतु इसके लिए प्रशिक्षित व्यक्ति की सहायता आवश्यक है। टेट्रासाईक्लीन, जेंटामाईसीन, इंटासेफ, टैक्सीम, डीएनएस, आर एल, इंटालाईट आदि दवाइयाँ इसी विधि द्वारा ही दी जाती है।

5. **स्प्रे द्वारा**- पशुओं में परजीवी जैसे झूँ, चिचड़ आदि हो जाने पर अथवा खुजली हो जाने पर उपचार के लिए पशु पर भलीभांति दवा का छिड़काव करना चाहिए। इसमें ब्यूटॉक्स, टिकाउट, टिकटेक आदि औषधियाँ आवश्यकतानुसार पानी में घोलकर स्प्रेयर से पशु के शरीर छिड़की जाती है। छिड़काव के समय स्प्रे करने वाले व्यक्ति को पशु एवं स्वयं की आँखों का विशेष ध्यान रखना चाहिए ताकि किसी प्रकार की हानि से बचा जा सके।

6. **स्थानीय रूप से**-पशुओं में घाव हो जाने पर उसे एंटीसेप्टिक सोल्युशन से घाव को साफ करके उस पर मल्हम जैसे लोरेक्सन, हिमेक्स आदि लगाते हैं। पशु शरीर पर खुजली होने पर मीठे तेल एवं सल्फर की उचित मात्रा के मिश्रण से उसके शरीर पर लेपन भी इसी का उदाहरण है।

निष्कर्षतः पशु में जिस प्रकार का रोग हो उसके अनुसार उपरोक्त में से उचित विधि का चयन करना चाहिये ताकि सही समय पर दवा का असर प्रारम्भ हो एवं बीमार पशु स्वस्थ हो सके तथा पुनः उसकी कार्यक्षमता को प्राप्त किया जा सके। यह न केवल पशु अपितु पशु पालक के लिए भी लाभदायक होगा।

❑❑❑

पशुओं में होने वाली प्रमुख जीवाणु जनित संक्रामक बीमारियों के लक्षण व उपचार

शिरीष दादाराव नारनवरे
वैज्ञानिक
राष्ट्रीय उष्ट्र अनुसंधान केन्द्र, बीकानेर

पशु पालकों को अपने पशुओं के स्वास्थ्य की देखभाल के लिए उन्हें होने वाली कुछ महत्वपूर्ण बीमारियों के बारे में जानकारी रखना अत्यंत आवश्यक है। पशुओ में होने वाली कुछ महत्वपूर्ण बीमारियों के लक्षण व उसके उपचार के बारे में जानकारी निम्न प्रकार है :

1. हीमोरेजिक सेप्टिसेमिया (गलगोंटू)

लक्षण : यह रोग ऊँटो व गाय भैसो मे प्रमुख रूप से पाया जाता है. इस रोग में तेज बुखार (105- 107 डिग्री फै.) के साथ गले के आसपास सूजन आ जाती है, श्वास लेने में तकलीफ होती है तथा श्वास लेते समय गर्र-गर्र सी आवाज आती है। मुह से लार तथा नाक व आँखों से पानी बहता है। बाह्य लसीका ग्रंथियो में सूजन आ जाती है। यदि तुरंत उपचार ना किया जाए तो इस रोग से ग्रसित पशु की मृत्यु भी हो सकती है।

उपचार : पशुचिकित्सक की सलाह से तुरंत प्रतिजैविक इजेक्शन लगाएं। बुखार के लिए बुखार रोधी इंजेक्शन जैसे मेलोनेक्स सूई लगाएं। कमजोर जानवरों को ग्लूकोज सलाईन लगाएं।

बचाव : इस रोग के बचाव के लिए टीका उपलब्ध है जो कि हर साल बरसात पूर्व के महीनो मे लगाना चाहिए। बीमार पशु को अन्य स्वस्थ पशुओ से तथा चरागाह से दूर रखें। रोग से ग्रसित मृत पशु को जमीन मे गहरे गड्ढे मे गाडना चाहिए अथवा जलाना चाहिए ताकि यह रोग अन्य स्वस्थ्य पशुओं में न फैले।

2. क्षयरोग

लक्षण : इसमें पशुओ में कमजोरी आ जाती है जो कई सालों तक रहती है। खांसी व श्वास लेने में तकलीफ जैसे लक्षण दिखाई देते है व अंततः पशु की मृत्यु हो जाती है।

उपचार : इसका उपचार काफी लंबा व खर्चीला है व इसमें ठीक होने की संभावना काफी कम होती है। इसलिए ऐसे पशुओ को निकाल दें अथवा अन्य स्वस्थ ऊँटों से दूर ही रखें।

3. **परायक्ष्मा** (**दस्त**)

लक्षण : इसमें पशुओ को लंबे समय से दस्त रहते है जो सामान्यतः किसी भी दवाई से ठीक नहीं होते। पशु अत्यधिक कमजोर हो जाता है व हड्डियाँ दिखाई देने लगती है।

उपचार : इसका उपचार भी काफी लंबा व खर्चीला है व इसमें ठीक होने की संभावना काफी कम होती है। इसलिए ऐसे पशुओ को या तो निकाल दें अथवा अन्य स्वस्थ पशुओ से दूर ही रखें।

4. **ब्रूसेलोसिस**

लक्षण : इस रोग से ग्रसित पशु गर्भावस्था में आखिरी 3 महीने में गर्भ गिरा देती है अथवा समय से पहले ब्या जाती है। इन पशुओ में जर नहीं निकल पाती व इनके बच्चे भी कमजोर होते है। नर पशुओ में अन्डकोषें में सूजन आ जाती है.

उपचार : पशुचिकित्सक की तुरंत सलाह लेनी चाहिए व प्रतिजैविक औषधोपचार देना चाहिए।

बचाव : इस रोग के बचाव के लिए टीका उपलब्ध है, जो कि हर साल बरसात पूर्व के महीनों मे लगाना चाहिए. बीमार पशु को अन्य स्वस्थ्य पशुओ से तथा चरागाह से दूर रखे. रोग से ग्रसित मृत पशु को जमीन मे गहरे गड्ढे मे गाडना चाहिए अथवा जलाना चाहिए ताकि यह रोग अन्य स्वस्थ्य पशुओ मे ना फैले ।

5. **नवजात बच्चों में दस्त**

लक्षण : यह बीमारी नवजात बच्चों में जन्म से लेकर 10-15 दिनों की आयु तक पाई जाती है। इस रोग में तीव्र दस्त तथा बुखार के लक्षण दिखाई देते हैं। जोड़ों तथा नाभि में सूजन जैसे लक्षण दिखाई देते है। दस्त की वजह से शरीर में पानी की कमी हो जाती है।

उपचार : शरीर में पानी की कमी दूर करने के लिए डी.एन.एस. का इंजेक्शन शिराओ में दें, साथ ही प्रतिजैविक इंजेक्शन भी दें।

6. **एक्टीनोमायकोसिस**

लक्षण : इस रोग में जबडों में सूजन आती है व जबड़े की हड्डी में फोड़ा होकर उसमें से मवाद बहता रहता है। इससे जानवर को चबाने में तकलीफ होती है और वह चारा खाने में असमर्थ हो जाता है।

उपचार : जबड़े पर एंटीसेप्टिक मलहम जैसे टॉपीक्यूअर स्प्रे, लोरक्सीन मलहम अथवा हीमॅक्स मलहम लगाना चाहिए तथा पशुचिकित्सक की सलाह से प्रतिजैविक औषधोपचार देना चाहिए।

7. **लंगड़ा बुखार**

लक्षण : इस रोग में अधिकतर 6 महीने से 2 साल तक के जानवर बीमार होते हैं। यह बीमारी

मुख्य रूप से बरसात के दिनों मे होती है। इस रोग के प्रमुख लक्षणों मे लंगड़ापन, कूल्हो, पीठ तथा कंधो की मांसपेशियों मे तीव्र दर्द के साथ सूजन, तेज बुखार, श्वास लेने मे तकलीफ व चारा न खाना जैसे लक्षण दिखाई देते हैं।

उपचार : पशुचिकित्सक की सलाह से प्रतिजैविक औषधोपचार देना चाहिए। सूजन वाले स्थान पर चीरा लगाकर उससे मवाद को बाहर निकालना चाहिए।

बचाव : इस रोग का टीका बरसात से पहले लगाना चाहिए। बीमार पशु को अन्य स्वस्थ पशुओं से तथा चरागाह से दूर रखें। रोग से ग्रसित मृत पशु को जमीन मे गहरे गड्ढे में गाड़ना चाहिए अथवा जलाना चाहिए ताकि यह रोग अन्य स्वस्थ पशुओं में ना फैलें।

8. **थनेला**

लक्षण : यह रोग ज्यादा दूध देने वाले पशुओ मे प्रमुख रूप से होता है। इस रोग से पशुपालकों को अत्यधिक नुकसान सहना पड़ता है। इस रोग में थनों पर तीव्र दर्द के साथ सूजन आ जाती है। दूध का रंग पीला प्रतीत होता है व इसमें थक्के बन जाते हैं। कुछ समय पश्चात् इसमें से मवाद भी आता है। ऐसा दूध मनुष्यों तथा बछडो के पीने योग्य नहीं रहता। यदि त्वरित उपचार ना किया जाए तो थनों में कड़ापन आकर वह हमेशा के लिए खराब हो जाते हैं।

उपचार : थनों से पूरा दूध निकाल लेना चाहिए व इसके बाद इसमें प्रतिजैविक इंजेक्शन लगाने चाहिए। थनों पर सूजन कम करने के लिए गरम मैग्नेसियम सल्फेट से सिकाई करनी चाहिए।

बचाव : दूध निकालने से पहले हमेशा हाथो तथा पशुओं के थनों को अच्छी तरह से जीवाणु रोधक पानी से धो लेना चाहिए। जानवरों के बैठने के स्थान पर गन्दगी ना रहे, इसका ध्यान रखना चाहिए। थनों पर किसी प्रकार का जख्म ना हो, इसका ख्याल रखना चाहिए।

❑❑❑

पशुओं में पेट बंध जाना (उदर अम्ल रक्तता)

फतेह चन्द दूटेजा[1], डी.सुचित्रा सेना[1], जी.नागराजन[2] एवं अविनाश शर्मा[3]

[1]वरिष्ठ वैज्ञानिक, [2]वैज्ञानिक वरिष्ठ वेतनमान, [3]अनु.सहयोगी

राष्ट्रीय उष्ट्र अनुसंधान केन्द्र, बीकानेर

पशु द्वारा अधिक दाना-चारा या अन्य खाद्य पदार्थ खा जाने से पेट का कठोर होकर बंध जाना रूमनल ऐसिडोसिस कहलाता है। इससे पेट की सिकुड़ने व फूलने की सामान्य प्रक्रिया बंद अथवा कम हो जाती है और पेट में पैदा होने वाली कई जहरीली गैसें व तत्व खून के जरिये शरीर में चले जाने से टाक्सीमिया करते हैं। पेट का बंध जाना एकाएक या धीरे-धीरे कुछ दिनों में हो सकता है।

कारण

1. पशु द्वारा अधिक मात्रा में साबुत दाना, दाल आदि खा जाना
2. नियमित दिए जाने वाले चारे-दाने में एकाएक बदलाव लाना
3. घटिया किस्म का फफूंद लगा हुआ या सड़ा हुआ चारा खिलाना
4. अपर्याप्त पानी या पशु का लगातार खड़ी अथवा बैठी अवस्था में रहना
5. पेट की मांसपेशियों की गति (गेस्ट्रिक मोटीलिटी) का कम होना
6. कमजोरी, गर्भावस्था के अंतिम चरण में, बुढ़ापा, ट्रामेटिक गेस्ट्राईटिस इत्यादि

लक्षण

1. इम्पेक्शन के लक्षण कब प्रकट होते हैं। यह इस बात पर निर्भर करता है कि पशु द्वारा कैसा व कितनी मात्रा में चारा दाना खाया गया है।
2. प्रायः लक्षण कुछ ही घंटे में प्रकट हो जाते हैं
3. पेट में दर्द (कोलिक) के कारण पशु पैर उछालता है तथा पेट पर मारता है।
4. सिर लटका हुआ, कुछ गर्र-गर्र की आवाज तथा आँखे धंसी हुई दिखाई पड़ती है।
5. पशु इधर-उधर चलना कम कर देता है तथा लड़खड़ा कर चलता है ऐसा लगता है मानो अंधा हो गया हो।
6. नाक छिद्रों से सफेद पीला (म्युकोपुरूलेंट) द्रव निकलता है।

7. फलेक के हाथ से दबाने पर पेट बंधा हुआ कठोर महसूस होता है तथा सख्त गूंधे हुए आटे जैसा लगता है।

8. शारीरिक तापमान में कुछ कमी लेकिन श्वसन व नाड़ी गति बढ़ जाती है।

9. पशु दांत पीसने लगता है।

10. बार-बार कोशिश से कम मात्रा में चिकना, हल्के रंग का गोबर करता है तथा गोबर से दुर्गन्ध/बदबू आती है।

11. पशु निढ़ाल हो जाता है तथा सिर को लेक की ओर रखता है। पशु की 24-72 घंटों में मौत हो जाती है।

बिमारी उत्पन्न होने की प्रक्रिया

खाने में अधिक कार्बोहाइड्रेटस पर पेट के जीवाणु किण्वन कर लेक्टिक अम्ल बनाते हैं। इससे पीएच अम्लीय (4.5 तक) हो जाती है। इसे 'ऐसिडोसिस' कहते हैं। अधिक अम्लीयता के कारण पेट की मांसपेशियों की गति बंद हो जाती है।

अधिक अम्ल

↓

पेट के मित्र जीवाणुओं को नष्ट करता है

↓

यह टाक्सीमिया करते हैं

↓

पेट में अधिक लेक्टिक अम्ल

↓

शरीर से पानी को खींचता है (अधिक आस्मेटिक दबाव के कारण)

↓

इससे शरीर में पानी की कमी अथवा डीहाईड्रेशन होता है।

↓

अत : टॉक्सीमिया व डीहाईड्रेशन के कारण पशु की मौत हो जाती है।

शव परीक्षण

1. पेट के चारे में एक अजीब स्थिति व गंध
2. रूमन (बड़ा पेट) की ऐपीथीलीथम (अन्दर की दीवार झिल्ली) आसानी से उतरने वाली हो जाती है और लाल रंग जैसी झांई पड़ जाती है
3. कभी-कभी रूमन फट जाता है या ग्रसित हो जाता है।
4. खून गाढ़ा व गहरे रंग का हो जाता है।

उपचार

ईलाज का मुख्य उददेश्य रूमन कान्ट्रेक्शन को बढ़ाना तथा बंधे हुए रूमन व आंतों को खाली करना होता है। अतः

1. पेट अम्लीयता प्रभाव को कम करने के लिए तुरंत प्रभाव से लगभग 100 ग्राम मीठा सोडा मुंह से देते हैं।
2. पेट को खाली करने के लिए चिकनाहट परगेटिव जैसे कि तरल पैराफीन या मीठा तेल 300-1000 मि.ली. पिलाएं।
3. तीव्र ऐसीडोसिस में सोडा बाई कार्ब 300 मिली नस में दें।
4. मुंह द्वारा सीधे पेट में असर करने के लिए ऐन्टीबॉयाटिक्स जैसे कि ट्रेटासाईक्लिन पाउडर (8-10 मिलीग्राम)
5. डीहाईड्रेशन के लिए तरल थैरेपी
6. पाचकता के लिए यिस्ट पाउडर की गोली
7. एन्टी हिस्टामिनिक दवाई मांस पेशी में अथवा सीधा रूमन में
8. अगर दवाइयों से उपचार नहीं होता और स्थिति गंभीर होती है तो ऐसे में पशु के पेट को चीर कर (रूमेनोटोमी) सड़े हुए अम्ल युक्त चारे को निकाला जाता है।
9. यदि उपचार हो जाता है तो एकाएक ही पशु को ज्यादा दाना नहीं देना चाहिए जब तक रूमिनल गति सामान्य न हो जाए। रूमिनल गति सामान्य करने के लिए ऐसी दवाइयां दें जो रूमन कान्ट्रेक्शन को बढ़ाए तथा अंदर के लाभदायक बैक्टीरिया की संख्या में वृद्धि करें। तभी पशु सामान्य तरीके से खा पाएगा।

क्षय रोग के बारे में जानें

फतेह चन्द टूटेजा[1], उमेश कुमार बिस्सा[1], सज्जन सिंह[2] एवं नेमीचन्द बारासा[3]

[1]वरिष्ठ वैज्ञानिक, [2]प्रधान वैज्ञानिक, तकनीकी अधिकारी[3]

राष्ट्रीय उष्ट्र अनुसंधान केन्द्र, बीकानेर

टी.बी. मनुष्य तथा पशुओं में माइकोबैक्टीरियम जीवाणुओं द्वारा होने वाला एक भयंकर संक्रामक रोग है। छूत का यह रोग पशुओं व मनुष्य दोनों में लम्बे समय तक रहता है जिससे पशु के फेंफड़ों व लिम्फ ग्रन्थियों में ट्युबरकल गांठे बन जाती है। इसके अलावा ये गांठे लिवर, तिल्ली, आँतों, पेरिटोनियम तथा हड्डियों आदि में भी बन जाती है। यह रोग पशुओं से मनुष्य में तथा मनुष्य से पशुओं में भी फैलता है। इसलिए इसे जूनोटिक रोग भी कहते हैं। वैसे तो यह सभी पशुओं में पाया जाता है लेकिन गाय व भैंसों में अधिक पाया जाता है। विशेषकर रोग ग्रसित पशु के दूध से मनुष्य में तथा ग्रसित मनुष्य की संक्रमित मल आदि से पशुओं व अन्य मनुष्य में यह रोग फैलता है। विश्व में भारत उन तीन-चार देशों में शामिल है जहां टी.बी.के रोगियों की संख्या सर्वाधिक है। यहां प्रतिवर्ष लगभग 25 लाख लोग इस रोग के कारण मौत के शिकार हो जाते हैं। भारतीय लोगों में टी.बी. रोग के इस विकराल रूप में पशुओं की प्रमुख भूमिका है। अतः यदि जनता को टी.बी.रोग से मुक्ति दिलानी है तो पशुओं का भी टी.बी.मुक्त रहना अति आवश्यक है।

रोग का कारण

यह रोग मुख्यतः तीन किस्म के माइकोबैक्टीरीयम नामक जीवाणुओं से अधिक होता है।

1. मनुष्य में : माईकोबैक्टीरियम टयुबरक्लोसिस
2. पशुओं में : माईकोबैक्टीरियम बॉविस
3. पक्षियों में : माईकोबैक्टीरियम ऐवीयम

कैसे फैलता है टी.बी. रोग

- ❑ कम उम्र के पशुओं में यह रोग कम पाया जाता है लेकिन कम उम्र के मनुष्य (बच्चे) अधिक संवेदनशील होते हैं।
- ❑ जिन पशुओं में पौष्टिक आहार नहीं मिलता उनमें यह रोग अधिक होता है।
- ❑ पशुओं के बांधने के जिस स्थान पर भीड़भाड़ व गंदगी अधिक रहती है वहां के पशु रोग की चपेट में अधिक आते हैं।

जब भी शरीर में रोग प्रतिरोधक क्षमता में कमी हो जाती है जैसे कि ब्याने के बाद शरीर में कमजोरी, मौसम में बदलाव या फिर अन्य रोग हो जाने के बाद मौका पाते ही यह जीवाणु शरीर के कई भागों में पहुँचकर उग्र रूप धारण कर लेते हैं।

टी.बी. के बैक्टीरिया, पशु के फेफड़ों को अधिक प्रभावित करते हैं। अतः रोग ग्रस्त पशु की सांस, नाक से निकलने वाले स्राव, कफ,दूध, मूत्र, गोबर आदि के सम्पर्क में आने से मनुष्य एवं अन्य पशु भी इनकी चपेट में आ जाते हैं। इसी प्रकार रोगी मनुष्य के मल के सम्पर्क में आए चारे दाने, पानी के उपयोग से भी पशुओं में यह रोग फैल जाता है। इसी प्रकार टी.बी.रोगी गाय के दूध निकालने के बाद वही व्यक्ति यदि दूसरी गाय का दूध निकालता है तो अपने हाथों के जरिए दूसरी गाय को भी संक्रमण पहुँचाता है।

गर्भकाल में माँ के गर्भ में पल रहे भ्रूण में भी संक्रमण हो जाता है जिससे नवजात टी.बी.ग्रस्त पैदा होता है। इसके अलावा रोगी गाय का दूध पीने से भी नवजात बछड़े-बछड़ी को क्षय रोग हो जाता है। जिन गायों में टयुबरकल मैस्टाइटिस होती है उनके दूध में भारी संख्या में यह बैक्टीरिया निकलते हैं, अतः दूध से भी बड़े पैमाने पर क्षय रोग फैल जाता है।

कुत्तों में यह रोग संक्रमित दूध, मांस व मनुष्य का मल खाने तथा थूक चाटने से अधिक होता है।

लक्षण

यह एक ऐसा रोग है जिसमें लक्षण धीरे-धीरे लम्बे समय बाद प्रकट होते हैं। बाह्य लक्षण तो बहुत दिनों बाद प्रकट होते है। कई बार लक्षणों का पता ही नहीं चल पाता है। इसलिए लक्षणों के आधार पर रोग का निदान करना बहुत मुश्किल है। मौटे तौर पर पशु में कमजोरी, कम चारा-दाना खाना, कमजोरी लगातार बढ़ते रहना, हल्का बुखार रहना जैसे लक्षण प्रमुख है। ये लक्षण ऐसे है जो प्रायः हर बिमारी में देखने को मिलते हैं।

- ❑ पौष्टिक आहार के बावजूद पशु का वजन धीरे-धीरे कम होता है और पशु कमजोर होता जाता है।
- ❑ सबसे अधिक श्वसन तंत्र प्रभावित होता है तथा सांस लेने में तकलीफ होती है। सांस की गति बढ़ जाती है तथा पीड़ा के साथ सूखी सांस आती है।
- ❑ जब अयन अथवा लेवटी में यह रोग होता है तो मादा पशु की मेमेरी ग्लैण्डस में छोटी-छोटी गांठे बन जाती है। अयन में सूजन आ जाती है दूध उत्पादन कम हो जाता है। दूध में सफेद छीछड़े आते हैं तथा बाद में दूध का रंग हरा-पीला हो जाता है। अतः दूध के स्थान पर पानी जैसा स्राव आता है। ऐसा दूध बछड़ों व मनुष्यों के लिए भंयकर खतरनाक होता है।
- ❑ आहार तंत्र में यह रोग होने पर पेट में दर्द होता है। जबरदस्त दस्त लगती है। कई दिनों तक हल्की टिम्पेनी रहती है तथा पशु काफी कमजोर हो जाता है। गोबर के ऊपर चिकनी म्युक्स लिपटी रहती है। गोबर में मवाद तथा रक्त के कण भी आ सकते हैं। दस्त के बाद बराबर कब्ज बनी रहती है।

- ❑ गर्भाशय में टी.बी.रोग होने पर मवाद बाहर निकलती है जिसमें रक्त मिला होता है। इसमें इस्ट्रस साइकिल गड़बड़ा जाता है। गर्भपात हो सकता है। नर पशु में अण्डकोशों में सूजन आ जाती है और अंत में मवाद पड़ जाती है।
- ❑ केन्द्रीय तंत्रिका तंत्र प्रभावित होने पर आँख की ज्योति कम या बिल्कुल बंद हो सकती है। चलने में लड़खड़ापन होता है। मिर्गी जैसे दौरे पड़ते है तथा कभी-कभी पशु गोल घेरे में घूमता है।

निदान

(1) लक्षणों के आधार पर

(2) प्रयोगशाला जाँच (सूक्ष्मदर्शी द्वारा)-थूक, लार, नाक के स्राव, दूध, गोबर, मूत्र इत्यादि।

(3) ट्युबरकुलिन टेस्ट- इसमें गर्दन पर एक छोटे से भाग पर 0.1 मि.ली. सिथेंटिक ट्युबरक्लिन का त्वचा में (इन्ट्राडर्मल) इंजेक्शन लगाया जाता है। रोगी पशु में इस जगह पर 5 मि.मी.या इससे बड़ी गाँठ बन जाती है।

उपचार व बचाव

1. विशेषकर बड़े पशुओं में टी.बी.का इलाज प्रभावी नहीं क्योंकि यदि इन्हें इलाज के रूप में वही दवाइयाँ लम्बे समय तक दी जाए जो मनुष्य को दी जाती है तो यह काफी महंगा पड़ता है। इसके अलावा इसका ज्यादा असर भी नहीं पड़ता लेकिन बचाव संभव है।

2. जिन पशुओं में टी.बी.रोग होने का शक हो उनमें टयुबरक्लिन जाँच की जानी चाहिए। इसमें जो पशु रोगग्रस्त मिलें उन्हें संभव हो तो वध कर देना चाहिए तथा मृत पशुओं को जलाना या गाड़ना चाहिए। शेष पशुओं की छःमाह तक जांच करनी चाहिए।

3. रोगग्रस्त पशुओं को स्वस्थ पशुओं से अलग करना चाहिए। स्लाटर करना एक कारागार रोकथाम का उपाय है लेकिन भारत में धार्मिक व आर्थिक कारणों से ऐसा मुश्किल है। इसी कारण पशुओं व मनुष्यों में क्षय रोग दिनों दिन अधिक विकराल रूप धारण कर रहा है।

4. नए पशु खरीदने से पहले टी.बी.रोग की जाँच कर लेनी चाहिए।

5. पशुओं की समय-समय पर टी.बी.रोग की जाँच की जानी चाहिए।

6. अगर किसी पशु में टी.बी.रोग की आशंका भी पड़े तो जांच न होने तक पशु का दूध उपयोग में न लें।

❑❑❑

पशुओं का पालन पोषण

अशोक नागपाल[1], काशीनाथ[2], सज्जनसिंह[1] एवं एन.वी.पाटिल[3]

[1]प्रधान वैज्ञानिक, [2]पशु चिकित्सा अधिकारी, [3]निदेशक

राष्ट्रीय उष्ट्र अनुसंधान केन्द्र, बीकानेर

ऊँट पालन हेतु तीन बातें ध्यान रखने योग्य हैं रखरखाव, बीमारियों से बचाव एवं ईलाज और आहार। ऊँट पालन में मुख्यतः खर्च आहार का है जो 70-80 प्रतिशत तक है। पशु खाता भी ज्यादा है, इसलिए आवश्यक है कि इसके आहार के बारे में अच्छी जानकारी हो। जिस तरह मानव को जीवित रहने व कार्य करने हेतु भोजन की आवश्यकता है उसी तरह पशु को भी जीवित रहने व विभिन्न कार्य करने हेतु उचित आहार की आवश्यकता होती है।

पशु शरीर की संरचना : पशु की शरीर की संरचना आनुवांशिकी गुणों पर आधारित होती है। पशु का शरीर कई तत्वों जैसे प्रोटीन, वसा, शर्करा, खनिज तत्वों से बनता है। पशु के शरीर में 1 प्रतिशत से कम शर्करा होती है और जल, प्रोटीन, वसा, खनिज तत्व आयु के मुताबिक बदलते हैं। जन्म के समय शरीर में वसा लगभग 4 प्रतिशत होती है जो वयस्क पशु में 31 प्रतिशत तक बढ़ जाती है। पानी, प्रोटीन और खनिज तत्व बढ़ती आयु के अनुसार घटते हैं। एक शोध के अनुसार आयु बढ़ने के साथ गाय के शरीर में वसा 4.5 प्रतिशत से बढ़कर 31.0 प्रतिशत हो गई, पानी, प्रोटीन और खनिज 72, 20 और 43 से घटकर 48.5, 15.6 और 3.7 प्रतिशत रह गए। पशु के शरीर की रसायनिक संरचना उसकी अवस्था पर भी निर्भर करती है। पशु के शरीर में रोजाना पानी, ऊर्जा, प्रोटीन, खनिज तत्व, विटामिन का उपयोग होता है जो उसे आहार से प्राप्त होते हैं। आहार में पोषक तत्वों की कमी व अधिकता दोनों ही ऊँट के शरीर हेतु अनावश्यक है अतः जरूरी है कि पशु को सही मात्रा तथा अनुपात में आहार से पोषक तत्व उपलब्ध हो। पोषक तत्वों की कमी से हाने वाले रोगों में मुख्यतः विटामिन-ए कमी से रतौंधी तथा फास्फोरस की कमी से पाईका रोग है, जिन्हें विटामिन तथा खनिज लवणों से दूर किया जा सकता है ।

पशु उत्पादन दो कारकों पर निर्भर करता है एक तो स्वयं ऊँट इसकी अवस्था तथा दूसरा इसके चारे, दाने जिससे पोषक तत्व उपलब्ध होते हैं। पशु की विभिन्न अवस्थाओं हेतु जैसे जीवित रहने, भार ढोने, सवारी उपयोग, ग्याभिन एवं दूध अवस्था, प्रजनन हेतु, पशुओं के बच्चों की देहभार वृद्धि हेतु अलग-2 तरह के पोषक तत्वों की आवश्यकता होती है। कोई भी चारा/दाना पशु के सभी पोषक तत्वों की आपूर्ति करने के लिए पर्याप्त नहीं है। क्योंकि किसी चारे में कम व किसी में अधिक पोषक तत्व होते हैं। पशुओं के चारे/दाने के पोषक तत्वों के बारे में जानकारी होने से विभिन्न चारे/दानों को आपस में मिलाकर ऊँट

की सभी पोषक तत्वों की जरूरत को पूरा किया जा सकता है।

पशुओं से यदि किसान फायदा पा रहे हैं तो जरूरी है कि उन्हें स्वस्थ रखने के लिए इसके

❑ रख-रखाव ❑ खान-पान तथा ❑ बीमारियों की रोकथाम पर उचित ध्यान दें ।

रख-रखाव

पशुओं को स्वस्थ रखने के लिए पहले उनके रहने/रखने की जगह पर ध्यान दें । जहां पशु रखा जाए वह स्थान साफ सुथरा होना चाहिए। उनका गोबर हटाते रहना चाहिए ताकि मक्खी-मच्छर से बीमारी न हो । उनको साफ सुथरा पानी पिलाये ।दूषित पानी से पशु बीमार हो सकता है ।उनको सर्दी/गर्मी के प्रकोप से बचाऐं । रेगिस्तान में दिन का तापमान 50^0 सेन्टीग्रेड तक चला जाता है ।पशुओं को छायादार पेडों के नीचे बांधे तथा धूप में न ले जाएं। उन्हें हरा चारा जरूर दें, हरा चारा पशुओं को गर्मी से राहत प्रदान करता है। सर्दियों में पशु ब्याता है तो नवजात ऊँट को छत के नीचे रखें ।शरीर पर टाट/बोरी बांध दें । दिन में धूप सेकने दें । सूर्य की किरणों से शरीर को गर्माहट मिलने के साथ, शरीर में विटामिन डी बनता है, जिससे हड्डियां मजबूत बनती है । पशुओं के चारे तथा आहार में मिट्टी, कंकर, पत्थर, लोहे व ईंट के टुकड़े, प्लास्टिक की थैली, धागे इत्यादि नहीं होने चाहिए जो पेट में पहुंचकर आंतों को जाम कर देते हैं और पशु की मृत्यु तक का भी कारण बनते हैं। पशुओं का चारा अचानक न बदलें। यह धीरे-धीरे बदलें ताकि उसके रूमन में बैक्टीरिया की किण्वन क्रिया पर दुष्प्रभाव न पड़े। पीने के लिए साफ, हल्का, मीठा पानी दें। दूध में पानी की मात्रा तकरीबन 90 प्रतिशत होने के कारण पर्याप्त मात्रा में पानी उपलब्ध होना चाहिए। पीने का पानी खारा नहीं होना चाहिए। खारे पानी में लवण जैसे सोडियम, कैल्शियम, मैग्निशियम और फ्लोराइड तथा नाइट्रेट जहरीले तत्व पशुओं में पेट दर्द, अपच, दस्त, चक्कर आना जैसी समस्याएं पैदा कर दूध उत्पादन के साथ पशु के शरीर को भी घातक नुकसान पहुँचाते हैं।

बीमारियों की रोकथाम

- ❑ पशु पालक को पशु की बीमारियों तथा उनकी जानकारी होनी चाहिए ताकि समय पर पशु की बीमारी का इलाज कर व्यर्थ की परेशानी तथा खर्चे से बचा जा सके । पशुओं को कई रोग परेशान करते है । जैसे विषाणु रोग, जीवाणु, परजीवी रोग, पोषक तत्वों की कमी से रोग अन्य कारणों से भी हो सकते है ।
- ❑ विषाणु यानी वायरस से पैदा होने वाली बीमारियों से मुख्यतः चेचक, केनेटेजियस एग्जीमा, रेबीज है ।
- ❑ जीवाणु से पैदा होने वाले पशुओं के मुख्य रोग गिल्टी रोग, गलघोटू तथा सालमोनेलोसिस है ।
- ❑ परजीवी रोग प्रोटोजोआ शरीर के अन्दर तथा बाहरी कीड़ों से होते है। पोषक तत्वों की कमी से होने वाले रोगों में मुख्यतः विटामिन-ए कमी से रतौंधी तथा फॉस्फोरेस की कमी से पाईका रोग है, जिन्हें विटामिन तथा खनिज लवणों से दूर किया जा सकता है । इसके अलावा पशुओं को

अपच, पेट का बंद होना, आफरा, दस्त लगना, निमोनिया, जर न गिरना जैसी समस्याएं हो सकती है । पशुपालकों को सलाह है कि वे समय रहते पशु चिकित्सक से संपर्क कर अपने पशुओं का ईलाज करवा लेंवे ताकि उनको स्वस्थ रख उनसे बेहतर उत्पादन/कार्य किया जा सके ।

- ज्यादा दूध देने वाली पशुओं में थनैला रोग भी हो सकता है। इस स्थिति में थनों में सूजन, मवाद पड़ने के साथ, दूध भी खराब हो जाता है। अतः पशु पालकों को चाहिए कि दूध निकालने से पहले थनों व अपने हाथों तथा दूध के बर्तन को भी साफ करें।

खान-पान

- पशुओं का आहार प्रबन्धन : पशुओं को स्वस्थ रखने में आहार का बहुत महत्पवूर्ण योगदान है। पशु के रख-रखाव/पालन पोषण में चारे/दाने का 80 प्रतिशत से अधिक खर्चा होता है । इसलिए जरूरी है कि पशुओं को उचित मात्रा तथा गुणवता वाला आहार दें ।चारे की गुणवता से अर्थ है कि पशुओं को आहार में, उचित मात्रा में ऊर्जा प्रोटीन, विटामिन तथा खनिज तत्व उपलब्ध हो । उचित मात्रा से अर्थ है कि उसको भरपेट आहार मिले ।कम मात्रा तथा निम्न गुणवता वाले आहार से पशु जहां कमजोर और देर से वयस्क होगा, वहीं ज्यादा मात्रा तथा गुणवता वाले आहार से शरीर में ज्यादा वसा जमा होगी । पोषक तत्वों का शरीर में इस्तेमाल नहीं होगा। पशु जल्दी थकेगा। उचित मात्रा तथा गुणवता वाले आहार से पशु का शरीर सही, स्वस्थ रहेगा और अच्छा उत्पादन देगा ।

खान-पान स्तर

पशुओं को दो स्तर के आहार की आवश्यकता होती है। एक तो स्वयं के निर्वाह के लिए जिससे ऊंट जीवित रहने के लिए समस्त क्रियाएं जैसे सांस लेना, स्नायु तंत्र, रक्त तन्त्र, पाचन, गुर्दे प्रणाली बनाए रखता है ।

- दूसरे स्तर पर आहार को अपनी देह वृद्धि, दूध उत्पादन, कार्य करने के लिए प्रयोग में लाता है। कहने का तात्पर्य है कि पशु को विभिन्न अवस्थाओं में विभिन्न स्तर के आहार की आवश्यकता होती है।

पशुओं के छोटे बच्चों का आहार : पशुओं के छोटे बच्चों को दिए जाने वाला आहार बहुत महत्वपूर्ण है क्योंकि इसी के आधार पर पशु की भावी उत्पादन क्षमता निर्भर करती है। इस अवस्था में पशु के बच्चे के शरीर की वृद्धि सबसे अधिक होती है यदि इस अवस्था में पशु के बच्चे को अच्छा संतुलित आहार नहीं दिया जाता तो वह कमजोर और देरी से वयस्क होने के साथ बीमार भी जल्दी होगा और नुकसान देय होगा। ज्यादा आहार देना भी ठीक नहीं है क्योंकि शरीर में पोषक तत्वों का सही उपयोग नहीं होगा और उसमें चर्बी ज्यादा जमेगी अतः मेमनों, बछड़ों तथा टोडियों की संतुलित आहार देना ही श्रेष्ठ रहता है। पशु के बच्चे को जन्म लेने के 24 घंटों के भीतर खींस (ऊँटनी का पहला दूध) पिलाएं जिसमें पोषक तत्वों की भरपूर मात्रा के साथ बीमारी रोधक तत्व होते हैं। पशु के बच्चे को कम से कम तीन माह तक ऊँटनी का दूध दें ताकि उसके शरीर का विकास हो। 10-15 दिनों बाद उनको मादा के साथ चरने के लिए

हरा चारा दें जिससे उसके पेट में उपस्थित रूमन का समुचित विकास हो। धीरे-2 दूध की मात्रा घटाते जाएं और चारे/दाने की मात्रा बढ़ाते जाएं।

ग्याभिन पशु का आहार : गाय, भैंस, भेड़, बकरी, ऊँट का गर्भकाल अलग अलग होता है। गर्भ के आखिर समय में भ्रूण का विकास काफी तेजी से होता है। भविष्य में दुग्ध उत्पादन हेतु पोषक तत्वों को शरीर में जमा करने की आवश्यकता होती है। ऐसी स्थिति में ग्याभिन पशुओं को प्रोटीन और प्रतिशत कुल पाचक तत्वों वाले संतुलित आहार देना ठीक रहता है।

दुधारू पशु : दुधारू ऊँटनियों के पोषण प्रबन्ध में तीन बातों को ध्यान में रखना चाहिए, देहभार, दुग्ध उत्पादन तथा आहार। दुधारू ऊँटनियों को दो स्तर पर पोषण की आवश्यकता होती है, एक तो अपने अनुरक्षण हेतु तथा दूसरे दूध उत्पादन हेतु। अनुरक्षण स्तर पर पशु अपने शरीर की क्रियाएं जैसे रक्त संचार, स्नायु तन्त्र, श्वसन प्रणाली, पाचन तथा अपशिष्ट विसर्जन तन्त्र के साथ देहभार भी स्थिर बनाए रखता है और अनुरक्षण स्तर पर दुधारू ऊँटनी को अनुमानतः 1.25 से 1.50 किलोग्राम शुष्क आहार प्रति 100 किलोग्राम देह भार की आवश्यकता होती है जो कि गाय, भैंस, भेड़ एवं बकरी की अपेक्षा कम है। पहली तथा दूसरी ब्यांत में देहभार वृद्धि हेतु 10 से 20 प्रतिशत अतिरिक्त अनुरक्षण पोषण की आवश्यकता होती है।दुधारू ऊँटनियों को जंगल, चरागाहों में चराने हेतु भेजने से अतिरिक्त ऊर्जा व्यय होने पर आवश्यकतानुसार 20 प्रतिशत अधिक अनुरक्षण पोषण देना चाहिए। दूसरे स्तर पर दुधारू ऊँटनियों को दूध की वसा मात्रा, अन्य तत्व तथा मात्रा के मुताबिक पोषण देना आवश्यक है। इसके दूध में वसा, प्रोटीन, लेक्टोज तथा खनिज तत्व मौजूद रहते हैं जिनकी पूर्ति आहार से होनी चाहिए। दुधारू पशु आहार के प्रोटीन को बहुत क्षमता से दूध प्रोटीन में परिवर्तित कर लेते हैं। दूध की प्रोटीन की आपूर्ति को 1.25 गुणा आहार प्रोटीन द्वारा पूर्ण किया जा सकता है। दुधारू पशु आहार की शर्करा को, दूध की वसा में बदलने में सक्षम हैं पर उनके लिए आहार की वसा को दूध वसा में परिवर्तित करना आसान है। इसलिए आहार में हरा चारा, सांद्र मिश्रण द्वारा 4 प्रतिशत वसा की मात्रा रखना ठीक है। दुधारू ऊँटनियां प्रारम्भिक अवस्था में अधिक दूध उत्पादन से तनाव में रहती हैं क्योंकि आहार द्वारा उतनी पोषक तत्वों की आपूर्ति नहीं होती और शरीर में उपलब्ध ऊर्जा, प्रोटीन, खनिज तत्व, विटामिन का दूध में स्राव होने से उनके देहभार में कमी आ जाती है। दुधारू ऊँटनियों में पोषक तत्व बढ़ाकर शुष्क पदार्थ ग्रहण को कम से कम 2.25 किलोग्राम प्रति 100 किलोग्राम देहभार होना चाहिए ताकि देहभार में गिरावट न हो। अनुसंधान बताते है कि संतुलित आहार देने से दूध में प्रोटीन लेक्टोज की मात्रा भी बढ़ी और उसके देहभार में भी काफी वृद्धि हुई। संतुलित आहार देने से अधिक मात्रा में प्राप्त दूध वाली आय में बढ़ोतरी पाई गयी।

कार्य उत्पादन : सदियों से पशु अपने मालिक के लिए सवारी, कृषि कार्यों में सहायता तथा बोझा ढोने के कार्य करता आया है जिससे धन अर्जित होने से किसान अपने परिवार का पालन पोषण करता है। पेट्रोल, डीजल की कीमतें बढ़ने और नए टयूब वैल खुदने से ऊँट को फिर कृषि कार्यों में प्रयोग किया जाने लगा है। पशुओं द्वारा पानी की टंकियां ढोकर कई किसान अपना परिवार पालते हैं। केन्द्र द्वारा लिए गए शोध में देखा है कि जब पानी की टंकिया ढोने वाले ऊँटों को सिर्फ ग्वार फलगटी या मोठचारा या मूंगफली

चारा दिया गया तो ऊँटों को जल्दी थकान हुई और पानी की कम टंकियां ढोने से कम आय हुई जब ग्वारफलगटी, मुंगफली चारे, शीरे, ग्वार चूरी, चापड़, खनिज मिश्रण तथा नमक से बने संतुलित आहार के बिस्कुट दिये तो ऊँटों की सेहत, कार्यक्षमता में सुधार हुआ। ऊँटों ने ज्यादा पानी की टंकिया ढोई और आय 113 रू. से बढ़कर 126 रूपये प्रतिदिन हो गई। कहने का तात्पर्य है कि ऊँट से कार्य लेने पर उसे उसकी सेहत तथा कार्यक्षमता बनाए रखने के लिए संतुलित आहार का प्रयोग करें। राष्ट्रीय उष्ट्र अनुसंधान केन्द्र, बीकानेर में ऊँट की उपयोगिता बढ़ाने हेतु परियोजनाएं चल रही है ताकि ऊँट अधिक से अधिक अपने मालिक के लिए लाभकारी हो।

हमारे देश में घरेलू पशुओं के कम उत्पादन के मुख्य कारणों में कुपोषण तथा निम्न पोषण स्तर है। भारत के पशुओं के लिए चारे/दानों की उपलब्धता तथा आवश्यकता के विश्लेषण से पता चला है कि सूखे चारे, दाने तथा हरे चारे की आपूर्ति तथा मांग में 10,35, तथा 33 प्रतिशत की कमी है। पशुओं हेतु उपलब्ध फसल अवशेषों में मुख्यतः गेहूँ, चावल, बाजरा, ज्वार, जौ, रगी तथा गन्ना खोई इत्यादि हैं। क्योंकि यह फसल उपोत्पाद घरेलू पशुओं के मुख्य आहार है। इसलिए इनके बहुत प्रभावशाली तरीके से तथा अन्य हरे चारों के साथ मिलाकर या खिलाने से पूर्व भौतिक या रासायनिक उपचार करके या फीड ब्लॉक में डालकर अपने पशुओं की पोषण आवश्यकताओं को पूर्ण करना होगा। अनाज फसलों के उपोत्पाद, कम ऊर्जा, प्रोटीन तथा खनिज तत्वों के कारण निम्न कोटि चारों की श्रेणी में आते हैं तथा पशुओं की अनुरक्षण हेतु भी पोषक तत्वों की आपूर्ति नहीं कर सकते। हालांकि अनाज फसल उपोत्पाद पोषण मान के मुताबिक निम्न श्रेणी के हैं पर पशु आहार के बहुत उपयोगी है क्योंकि इनका स्थूल पशु को पेट भरने का एहसास देने के साथ आंतों की गतिशीलता हेतु आवश्यक है। जौ तूड़ी भी एक कम घनत्व और अधिक स्थूल वाला अनाज फसल उपोत्पाद है।

पशुओं के चारे

रेगिस्तान में कम वर्षा होने और कम पानी होने की वजह से पशुओं को हमेशा चारे की उपलब्धता की समस्या रही है पर पशु अपनी अद्‌भुत पाचन प्रणाली के कारण रेगिस्तान में पैदा होने वाली कई प्रकार की घास, झाड़ियों, पेड़ों को खाकर अपना जीवन बचाए रखता है। ग्रामीण इलाकों में पशु खेतों, चरागाहों, बंजर जमीन तथा जंगलों में घूम कर कई प्रकार के पेड़ पौधों पर निर्वाह करता है। वर्षा ऋतु में पशुओं के लिए काफी घास, पौधे, झाड़ियाँ पैदा हो जाती है। उसे घर में ज्यादा चारा/दाना नहीं देना पड़ता पर वर्षा ऋतु के थोड़े समय पश्चात् ही घास पौधे, झाड़ियां सूख जाते हैं और उसे अतिरिक्त चारे की आवश्यकता पड़ती है।

मिश्रित आहार

अगर पशुओं को अकेले चारे पर रखा जाए तो उन की भार वृद्धि बढ़िया नहीं होती। चारे की पोषकता तथा पशुओं का उत्पादन बढ़ाने के लिए एक चारे को दूसरे चारे के साथ मिलाना चाहिए। ऊँटों पर किए गए चारा खिलाई के तजुर्बों से पता चला कि अकेला चारा देने की बजाए मिश्रित आहार देने

से न सिर्फ चारे की पोष्टिकता बल्कि पाचक कच्ची प्रोटीन व कुल पाचक तत्व बढ़े तथा ऊँटों के भार में भी वृद्धि हुई। यह देखा गया कि मिश्रित आहार जिस में ग्वार फलगटी तथा पेड़ों की पत्तियां थी, उन में पाचक कच्ची प्रोटीन व कुल पाचक तत्व तथा ऊँटों के भार में वृद्धि की क्षमता ज्यादा थी। तुलनात्मक उस चारे के, जिस में ग्वार फलगटी तथा मूंगफली चारा था। ये भी देखा गया कि दुधारु ऊँटनियां जिन को मिश्रित आहार दिया गया उनमें 332 ग्राम / दिन के हिसाब से भार में कमी आई जिससे पता चला कि इस चारे में अभी पोषक तत्वों की कमी है और इस आहार को बेहतर बनाया जा सकता है।

सन्तुलित आहार

सन्तुलित आहार बनाने से न सिर्फ यह पता चलता है कि सारे चारे एकसारता से मिश्रित हो रहे हैं बल्कि नियंत्रित पोषक तत्वों की उपलब्धता होती है व रूमन किण्वीकरण सही रहती है ।राष्ट्रीय उष्ट्र अनुसंधान केन्द्र, बीकानेर में ऊँटों की खाने पीने की आदतों को, स्थानीय चारे के श्रोतों को तथा भोज्य पदार्थों की कीमत को ध्यान में रखते हुए सन्तुलित आहार के कई संयोजन बनाए गए तथा उन की पोषकता व ऊँटों की उत्पादकता बढ़ाने की क्षमता को देखा गया। सन्तुलित आहार बनाने के लिए ग्वार फलगटी तथा चने की खार को आधारभूत चारे के तौर पर लिया गया जिसमें मूंगफली चारा/मोठ चारा/हरी पत्तियां (खेजड़ी, अरडू, नीम, बूई) को हरे मोटे चारे की तरह तथा सान्द्र का इस्तेमाल किया गया है ताकि आधार भूत चारे की पोषकता बढ़ाई जा सके। तालिका में सन्तुलित आहारों (सअ) की भौतिकी रचना एवमं पोषण मान दिया गया है।

तालिका-ऊँटों के कुछ सन्तुलित आहारों (सअ) की भौतिकी रचना एवमं पोषण मान

विवरण	सअ 1	सअ 2	सअ 3	सअ 4	सअ 5	सअ 6	सअ 7
क.भौतिकी रचना							
ग्वार फलगटी	77	75	69	60	50	-	-
मूंगफली चारा	-	-	-	20	30	15	25
चने की खार	-	-	-	-	-	70.3	60.3
अरडू	8	-	-	-	-	-	-
नीम	-	10	-	-	-	-	-
खेजड़ी	-	-	16	-	-	-	-
शीरा	-	-	-	-	-	4	4
गुड़	4	4	4	5	5	-	-
चोकर	3	3	3	5	5	4	4

ग्वार चूरी	4	4	4	5	5	6	6
चावल कणी	3	3	3	4	4	-	-
खनिज मिश्रण	0.2	0.2	0.2	0.5	0.5	0.2	0.2
साधारण लवण	0.8	0.8	0.8	0.5	0.5	0.5	0.5
ख.पोषण मान							
पाचक कच्ची							
प्रोटीन (प्रतिशत)	7.58	6.12	6.83	4.48	5.38	8.70	8.78
कुल पाचक तत्व	57.26	54.15	53.80	60.61	58.67	68.86	67.16

तालिका-ऊँटों के कुछ सन्तुलित आहारों (सअ) की भौतिकी रचना एवमं पोषण मान

विवरण	सअ 8	सअ 9	सअ 10	सअ 11	सअ 12
क.भौतिकी रचना					
मूंगफली चारा	32	-	-	-	-
मोठ चारा	-	47	27	35.3	35.3
गेहूँ का भूसा	30	40	40	30	30
खेजड़ी	25	-	25	25	25
बुई	-	-	20	-	-
गुड़	4	4	4	4	4
चोकर	3	3	3	-	-
ग्वार चूरी	4	5	5	5	5
खनिज मिश्रण	0.2	0.2	0.2	0.2	0.2
साधारण लवण	0.8	0.8	0.8	0.5	0.5
ख.पोषण मान					
कच्ची प्रोटीन	11.02	9.85	10.26	11.59	11.59
पाचक कच्ची					
प्रोटीन (प्रतिशत)	6.54	6.04	6.70	9.30	7.16
कुल पाचक तत्व	59.20	55.73	56.36	72.10	60.98

सन्तुलित आहार की इँटें-ऊँटों को चारा खिलाने का आधुनिक चलनःचारे की ईटें

- सूखा/बाढ़ के लिएः अकाल/बाढ़ की अवस्था में जब स्थानीय उपलब्ध चारे की कमी हो जाती है तो ऐसे में बाहर के राज्यों से चारा मंगवाया जाता है। बाहर से चारा तो सस्ता या मुफ्त में उपल्बध हो जाता है पर इसके परिवहन में बहुत खर्च आता है तथा दूर दराज के गाँवों में नहीं पहुँच पाता। इस हालत में पशु धन को जीवित रखने के लिए सस्ते चारे की ईटें बना कर भेजी जा सकती हैं। इन ईटों में प्रोटीन 5 प्रतिशत तथा कुल पाचक तत्व 50 प्रतिशत तक रख सकते हैं।
- इससे रूमन किण्वीकरण सही रहती है जोकि चारे की उपयोगिता तथा उष्ट्र उत्पादन बढ़ाती है।
- सन्तुलित आहार को खुले चारे के रुप में देने से बेशक हम अपनी तरफ से सभी तत्व संतुलित मात्रा तथा अनुपात में देते हैं पर क्योंकि ऊँट चयन कर के खाने में माहिर होने से पसंद का चारा खाता है तथा नापसंद छोड़ देता है। मगर इस सन्तुलित आहार को भेली या ईटों के रुप मे देने से ऊँटों द्वारा पसंद का चारा खाना तथा नापसंद को छोड़ देना नहीं होता।
- ये ईटें स्थान भी कम घेरती हैं
- तथा इन के परिवहन में भी कम खर्च आता है।
- ईटें चारे एवं दाने का परस्पर मिश्रिण हैं। इन में ऊर्जा ,प्रोटीन की सुलभता से उष्ट्र आहार के प्रत्येक कण की उपयोगिता में वृद्धि होती है।
- 5 किलो की 3 ईटें एक ऊँट का एक दि खिलाने की जरुरत नहीं है।

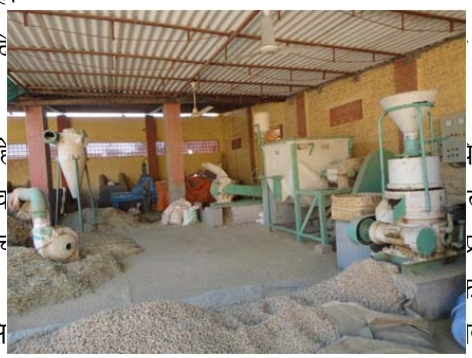

सन्तुलित गोलीदार दाना : हमारे केन्द्र ने ऊंटों हे त किया है जिससे चारे तथा कृषि उत्पादों के 50:50 अनुपात व लग चारे तथा कृषि उत्पादों के 50:50 अनुपात से ऊंटों के बच प्राप्त हुए हैं जिससे पता चलता है कि ऊंटों के बच्चों को 10 ता वाले गोलीदार दाने से देह भार वृद्धि 600 ग्राम प्रतिदिन से दार दाने के भी फायदे फीड ब्लॉक से अधिक है क्योंकि इसमें चारे दाने बेकार नहीं जाता।

ऊँट अपना प्राकृतिक अर्ध शुष्क और शुष्क पारिस्थितिक तंत्र में कमजोर गुणवत्ता घास और फसल अवशेष पर रहते हैं जिससे कम आवश्यक पोषण से अकुशल आमाशय किण्वन से कम उत्पादकता होने से पशु कमजोर रहते हैं। यूरिया शीरा खनिज ब्लॉक एक ठोस कड़ा परिवहनीय सामग्री है जिसमें विलय नाईट्रोजन, फेरमेंटबल ऊर्जा और खनिजों होने से आसानी से प्रथम आमाशय किण्वन एवं पाचन क्षमता और पशु उत्पादकता में वृद्धि ली जा सकती है। हमारे केन्द्र में 278 किलोग्राम देह भार वाले ऊंट बछड़े को ग्वार फलगटी के साथ 100 ग्राम प्रतिदिन यूरिया शीरा खनिज ब्लॉक देने से पाचन क्षमता तथा अधिक पोषक तत्व मिलने से देह भार में वृद्धि पाई गयी।

अकाल से बचाव हेतु सुझाव

- ❑ अकाल के समय सरकार समुचित प्रयास करती है। सरकार के अकाल राहत कार्यों से ग्रामीण प्रजा को बहुत सांत्वना मिलती है, जो बहुत सराहनीय है। यदि सरकार अपने राहत कार्यों का कुछ बजट चारागाह/सिल्वी वास्यार/होर्टीकल्चर/वन को पंचायत स्तर पर विकसित करने पर खर्च करें तो आने वाले समय में हम पशुओं के चारे की कमी का सामना कर सकते हैं।

- ❑ बंजर भूमि में; सेवन, धामन, ग्रामणा के साथ खेजड़ी, बेर-आंवला, केर लगाने से जहां पशुओं के लिए चारे की उपलब्धता में बढ़ोतरी होगी, वहां पशुपालक किसान खेजड़ी, बेर, आंवला, केर से भोजन के साथ अतिरिक्त आय भी प्राप्त कर पायेंगे।

- ❑ किसान/पशुपालक अपने खेतों की मेढ़ों पर पेड़ लगाकर जंगली पशुओं से अतिक्रमण दूर करने के अलावा, पशुओं को जलाऊ लकड़ी के द्वारा छाया मिलने के अलावा मिट्टी के क्षरण को रोकने, उसकी गुणवत्ता में सुधार कर अपने वातावरण को सुन्दर बना सकते हैं।

- ❑ आमजन की भागीदारी- उपरोक्त लेख में जो सुझाव हैं, वे तभी सम्भव है, जब आमजन भी अपना कर्त्तव्य समझे। सरकार को चलाने वाले सभी मंत्रीगण, आमजन के ही प्रतिनिधि हैं, वे वही नीतियां बनाएंगे और उन्हीं नीतियों के मुताबिक कार्य व सरकारी खजाने का इस्तेमाल करेंगे जैसे प्रजा चाहती है। अतः आमजन को अपने क्षेत्र में चारा, वन, पशुधन हित हेतु कार्य करवाने में कोई बाधा नहीं होनी चाहिए।

- ❑ गांवों में प्राचीनकाल से खेजड़ी/पाला झाड़ियों की छंगाई होती आ रही है, जिससे पशुओं के लिए पोषक पत्तियों के साथ ईधन की लकड़ी भी उपलब्ध होती है।

- ❑ पंचायत और नगरपालिकाएं अपने क्षेत्र में पेड़ों (नीम, अरड़, खेजड़ी) की छंगाई से पत्तियों से चारा और ईधन लकड़ी से अतिरिक्त आय का स्रोत भी बना सकती हैं।

राजस्थान व केन्द्र सरकार ने चारागाह, बागवानी, पशुपालन, गोदाम बनाने व जल संरक्षण हेतु सराहनीय योजनाएँ शुरू की हैं, किसान, पशु पालक इनसे लाभ उठाकर अपनी आर्थिक स्थिति सुधारने के

पशु-आहार बट्टिका उत्पादन तकनीक

एच. सी. बोहरा[1] एवं एन.वी.पाटिल[2]

[1]प्रधान वैज्ञानिक (से.नि.), केन्द्रीय शुष्क क्षेत्र अनुसंधान संस्थान, जोधपुर

[2]निदेशक, राष्ट्रीय उष्ट्र अनुसंधान केन्द्र, बीकानेर

राजस्थान के कुल भौगालिक क्षेत्र का लगभग 62 प्रतिशत भू-भाग (12 पश्चिमी जिले) शुष्क मरूस्थलीय क्षेत्र है । उष्ण एवम् न्यून-वर्षा के कारण इस क्षेत्र के कृषकों का मुख्य व्यवसाय एवं आय का स्त्रोत पशु-पालन आधारित कृषि है । निम्न व असमय वर्षा के कारण इस क्षेत्र में कृषि उत्पादन प्रभावित होता रहता है । हांलाकि इस मरूस्थलीय क्षेत्र में पडत एवं चारागाहों का विस्तृत क्षेत्र है जो कि पशुओं को चराई के लिये उपलब्ध रहता है पर कम वर्षा के कारण जो भी पशु-खाद्य उपलब्ध रहता है व न केवल मात्रा वरन् गुणवत्ता में भी निम्नतर होता है । ऐसी स्थिति में पशुओं को न केवल आवश्यकतानुरूप चारे की कमी रहती है अपितु उपलब्ध चारे में निम्न पोषकता के कारण भी पशुओं में कुपोषण की समस्या बनी रहती है । इसके कारण पशु-उत्पादन प्रभावित होता है । ऐसी अवस्था में पशु आहार-बट्टिका जो कि विभिन्न अति-आवश्यक तत्वों का संमिश्रण है, विशेष लाभदायक सिद्ध हो सकती है ।

पशुआहार बट्टिका, पशुओं द्वारा आवश्यकतानुसार अति आवश्यक पोषक तत्वों को ग्रहण करने का सुगमतम उपाय है। इसके चाटने से पशु द्वारा ग्रहित सूखे चारे के साथ-साथ पोषक तत्व भी मिश्रित होते रहते है। पशु आहार-बट्टिका के पोषक तत्व शनैः शनैः इन पशुओं के रूमन (प्रथम आमाशय) में विद्यमान लाभ-दायक सूक्ष्म जीवों को पोषण प्रदान कर इनकी संख्या में वृद्वि में सहायक होते है। यही सूक्ष्म-जीवी चारे में विद्यमान संरचनीय शर्करा (सैल्यूलोज) का विघटन कर वसा अम्लों का उत्पादन करते है जो कि अतंतः पशु की आहार नालिका में अवशोषित हो जाते है।यही अम्ल पशुओं में ऊर्जा के स्त्रोत तथा पशु द्वारा उत्पादित दूध में विद्यमान वसा के मुख्य घटक है। रूमन (ओदरी) में पाये जाने वाले लाभदायक सूक्ष्म-जीवी बट्टिका में विद्यमान सीरे का उपयोग ऊर्जा के स्त्रोत के रूप में, एवं यूरिया तथा लवण-मिश्रण में पाये जाने वाले गंधक-घटक का उपयोग सूक्ष्म जीवी प्रोटीन के निर्माण में करते है। बट्टिका में पाये जाने वाले विटामिन-लवण मिश्रण, नमक एवं डोलोमाइट-चूना पशु के विभिन्न खनिज लवणों की आवश्यकता की पूर्ति करते है। गेहूँ की चापड़ जो कि न केवल बट्टिका का मुख्य घटक है अपितु बट्टिका को स्थायित्व प्रदान करता है साथ ही उच्च कोटि की प्रोटीन, संरचनीय एवं विलनीय कार्बोहाइड्रेट तथा बी समूह के विटामिनों का मुख्य स्त्रोत भी है। इस बट्टिका में उपयुक्त विशेष प्रकार का कार्बनिक बंधक हालाकि बट्टिका को सुदृढ़ बनाने के लिये काम में लिया गया है, पर, यह पशु-आहार नालिका में पूर्ण रूपेण पचनीय है तथा पशु को ऊर्जा प्रदान करता है। अतः बट्टिका में विद्यमान पोषक तत्व रूमन परिस्थिति तंत्र को सुधार कर लाभदायक सूक्ष्म जीवियों

की वृद्धि के उपयुक्त बनाते है जिससे सूखे चारे का पाचन सहज हो सके तथा पशुओं के विटामिनों, कार्बोहाइड्रेट, प्रोटीन एवं अति-आवश्यक खनिज लवणों की आवश्यकता की पूर्ति करके उनके स्वास्थ्य में सुधार कर उत्पादन में भी वृद्धि करे।

पशु-आहार बट्टिका अति-आवश्यक पोषक तत्वों से युक्त विभिन्न पशु-आहारों का संकेन्द्रित प्रारूप है। काजरी संस्थान एवं राष्ट्रीय कृषि प्रौद्योगिकी परियोजना के संस्थान- गांव संयुक्त कार्यक्रम के तकनीक निर्धारण एवं पुनर्शोधन प्रयोग के अन्तर्गत द्वारा गोद लिये गये ग्रामीण पशुओ पर गावों में किये गये अध्ययन से इसकी उपयोगिता प्रमाणित हो चुकी है। यह मरू प्रदेश के उन पशुओं के लिये विशेष लाभदायक है, जिनको खलिहानों में सूखे चारे या कृषि के उत्पाद अथवा निम्न कोटि के चारागाहों पर निर्भर रहना पड़ता है। उनके लिये यह बट्टिका एक पौष्टिक पूरक पशु आहार है। इसके उपयोग (चाटने) से पशुओं (गाय, भैंस, भेड़, बकरी इत्यादि) में अति-आवश्यक पोषक तत्वों की आवश्यकता की आपूर्ति होती है जिससे पशुओं द्वारा ग्रहित सूखे चारे का पाचन सुचारू रूप से हो सके। हाल ही मे राष्ट्रीय डेरी अनुसंधान संस्थान, करनाल में किये गये अध्ययन से यह ज्ञात हुआ है कि इस प्रकार की बट्टिका खिलाने से पशु में सूक्ष्म जीवियों द्वारा सैल्यूलोज के विघटन से उत्पन्न मिथेन गैस के उत्पादन में भी कमी होती है। अतः हरित-गृह गैस के उत्पादन में कमी कर पर्यावरण क्षरण को रोकने में भी यह बट्टिका लाभकारी है।

ग्रामीण स्तर पर पौष्टिक पशु आहार बट्टिका बनाने की विधि सुगम है। इस विधि द्वारा साधारण ज्ञान रखने वाला किसान भी अपने यहॉ उपलब्ध विभिन्न पशु-आहार एवं साधरणतम् यंत्रों द्वारा यह बट्टिका बना सकता है। जिसका विवरण निम्न प्रकार है:

-मुख्य घटक-

1. ऊर्जा के स्त्रोत

सीरा या मालासेस अथवा पशुओं को खिलाने वाला गुड़। बट्टिका बनाने के लिये गहरे रंग (भूरे से स्लेटी) का गुड़ उत्तम रहता है ।

2. प्रोटीन के स्त्रोत

(अ) खल या चूरी : सोयाबीन खल या अन्य कोई भी तिलहन फसलों की खल। प्रोटीन के रूप में ग्वार-चूरी या ग्वार-कोरमा भी काम में लिया जा सकता है।

(ब) यूरिया : यह पशु के रूमन (औदरी) में पाये जाने वाले लाभदायक सूक्ष्मजीवियों द्वारा उच्च कोटि के सूक्ष्मजीवी-प्रोटीन में बदल दिया जाता है जो कि अन्ततः पशु की आहार नाल में अवशोषित हो जाता है ।

3. लवणों के स्त्रोत

(अ) साधारण नमक : आयोडीन युक्त नमक की आवश्यकता नहीं है क्योंकि जो लवण-मिश्रण काम में लिया जाता है उसमें आयोडीन आवश्यक मात्रा में उपलब्ध रहता है। कोई भी पीसा हुआ नमक काम में लिया जा सकता है पर डीडवाना से प्राप्त नमक जिसमे सोडियम सल्फेट भी प्रचुर मात्रा में उपलब्ध रहता है, बट्टिका बनाने के लिये उत्तम रहता है।

(ब) डोलोमाइटः यह कैल्शियम एवं मैगनीशियम कार्बोनिटों का यौगिक है तथा कैल्शियम व मैग्निशियम लवणो का अच्छा स्त्रोत है।

(स) लवण-मिश्रण : विभिन्न अति-आवश्यक लवणों का मिश्रण। विटामिन युक्त लवण मिश्रण जिसमें विटामिन ए, डी-3, ई, नियासिनेमाइड एवं कैल्शियम, फास्फोरस, कोबाल्ट, ताम्बा, आयोडीन, लोहा, मैगनीज, सैलिनियम व जस्ता इत्यादि, जिसमें उपयुक्त मात्रा में विद्यमान हो वह उत्तम रहता है पर यदि इस प्रकार का लवण-मिश्रण उपलब्ध न हो तो साधारण लवण-मिश्रण जिसमें विटामिन 'ए' का उपयुक्त मात्रा में समावेश कर उपयोग में लिया जा सकता है। इसके लिये बाजार में उपलब्ध 10,000 इकाई प्रति मि. मी. विटामिन 'ए' के घोल (निकोलस पिरामल इंडिया लिमिटेड का नाइकोरिच ए डब्लू एम) की लगभग 30 मि.ली. की मात्रा एक किलो ग्राम साधारण लवण मिश्रण में मिलाने की आवश्यकता होगी ।

4. संरचनीय घटक

(अ) गेहूँ का चापड़ को सर्वश्रेष्ठ माना गया है पर यह उपलब्ध न हो तो जौ, चावल इत्यादि किसी भी अन्न की चापड़ काम में ली जा सकती है। गेहूँ की चापड़ बट्टिका को न केवल संरचनीय स्थायित्व प्रदान करती है, वरन् यह संरचनीय व विलयशील कार्बोहाइड्रेट एवं बी-समूह के विटामिनो का भी मुख्य स्त्रोत है। छोटे दाने वाली गेहूँ की चापड़ हमेशा उत्तम रहती है। यदि बड़े दाने का चापड़ बट्टिका बनाने के उपयोग में लिया जाये तो सीरे व पानी की मात्रा आवश्यकतानुसार बढ़ानी पड़ेगी। इस प्रकार की बट्टिका को दबाने में ज्यादा दाब की आवश्यकता होगी तथा इसके अलावा जो बट्टिका प्राप्त होगी उसकी ऊपर की सतह समतल न होकर ऊपर की ओर उभरी तथा बट्टिका खुरदरी व भंगुर होगी ।

5. कार्बनिक-बन्धक (बाइन्डर) :

ग्वार-गम उद्योग का उप-उत्पाद (गम-डस्ट) इसके लिये विशेष उपयुक्त है। ग्वार-गौंद पाऊडर से न केवल बट्टिका अच्छी बनती है, वरन् इससे बट्टिका बनाते समय घटको का मिश्रण-पात्र की दिवारों पर भी

चिपकता नही है। अतः इस कार्बनिक-बन्धक के उपयोग से घटको का दीवार से चिपकने से होने वाला नुकसान निम्नतर होता है। यदि गम-डस्ट उपलब्ध न हो तो मैथी के बीजों का चूर्ण भी उपयोग में लिया जा सकता है।

6. भण्डारण की सावधानियाँ

उपरोक्त घटको में से केवल गेहू के चापड़ को संचय करने में सावधानी की आवश्यकता होती है। चक्की से प्राप्त ताजे चापड़ में नमी प्रचुर मात्रा में विद्यमान रहती है। इसलिए इसको पहले धूप में फैंला कर सुखा ले तब लोहे के ड्रम में संचय करें। बिना सुखाएँ संचय करने पर चापड़ में धान की इल्ली व सुंडी लग सकती है । साधारणतयाः संचयित चापड़ को कुछ घन्टों तक धूप में रख कर काम में लेना चाहिये। उपरोक्त घटकों को किसी विशेष क्षेत्र में उपलब्ध उसी प्रकार के अन्य पशु-खाद्य पदार्थो द्वारा विस्थापित किया जा सकता है।

यंत्रों की आवश्यकता

बट्टिका को कुटीर-उद्योग के अनुसार बनाने के लिये निम्न यंत्रो की आवश्यकता होती है ।

(क) **तुला (तराजु)** : 10 किलो समता वाली दो पलड़ो की तुला अच्छी रहती है । व्यावसायिक उत्पादन के लिए बाजार में उपलब्ध 100-150 किलो तक तौलने के लिए उपयुक्त इलेक्ट्रोनिक-तुला काम में ली जा सकती है।

(ख) **मिश्रक (मिक्सर-यंत्र)** : एक बार में 10 बट्टिका बनाने के लिये आवश्यक घटको को हाथ द्वारा, प्लास्टिक, इस्पात या लोहे के बड़े बर्तन में मिलाया जा सकता है। पर व्यावसायिक उत्पादन के विद्युत चलित यांत्रिक मिश्रक काम में ले सकते है।

(ग) **बट्टिका साँचे** : इसके लिये लकड़ी के साँचे भी काम में लिये जा सकते हैं । पर लोहे के साँचे जिनको बाहर की तरफ खोला जा सके तथा एक लोहे की कील लगाकर बन्द किया जा सके, विशेष उपयुक्त है ।

(घ) दाब-मशीन : बहुत ही कम लागत मे लकड़ी अथवा लोहे के साँचे में घटको को डालकर उपयुक्त आकार की लकड़ी की पट्टिका द्वारा दबाया जा सकता है पर इसके लिये लोहे की हस्त-चलित दाब मशीन विशेष लाभकारी रहती है।

(ड) बट्टिका-उश्मक (ड्रायर) : बट्टिका को सुखाने का सबसे सरल तरीका है, इनको सौर- उश्मक में सुखाया जाए। विद्युत हाइब्रीड-सौर अथवा गैस-सौर हाइब्रीड उश्मक भी काम में लिया जा सकता है। विद्युत उश्मक (इलेकट्रिक ऑवन), ड्राप्ट-टाईप विद्युत उश्मक जिसमे गर्म वायु का संचरण पंखे द्वारा होता हो तो उत्तम रहता है।

(त) पैकिंग करना : सूखी हुई तैयार बट्टिका को छपे हुए रैपर की उपयुक्त नाप की नलिका में पैक कर दिया जाता है। अंततः इसके दोनो छोरों को सिलिंग-मशीन द्वारा बन्द कर दिया जाता है।

बनाने की विधि

यहाँ पर बट्टिका बनाने की विस्तृत विधि दी गई है। घटकों की मात्रा अथवा इनके गुण-धर्मो में परिवर्तन होने पर निम्न वर्णित विधि में भी थोड़े बदलाव की आवश्कता हो सकती है । यह विवरण एक साथ 10 बट्टिकाऐं बनाने के लिये है। यदि इससे कम व ज्यादा बट्टिकाओं का उत्पादन करना हो तो घटकों की मात्रा में उसी अनुपात में बदलाव की आवश्यकता होगी ।

10 बट्टिकाओं के एक बैच के लिये घटको की मात्रा व विधि निम्न होगी ।

(1) सर्वप्रथम 1 किलो ग्राम युरिया-दाणों का 500 मि. ली. गर्म जल में घोल बना ले। इसके लिये काँच अथवा इस्पात के पात्र ही काम में लेने चाहिये।

(2) एक बड़े प्लास्टिक टब में 10.0 किलो 400 ग्राम सीरे को ले तथा इसमें उपरोक्त विधी द्वारा तैयार युरिया का घोल (1) अच्छी तरह से इस्पात के चम्मच की सहायता से मिलाये। यदि सीरा उपलब्ध न हो तो पशुओं के गुड़ की 8 किलो 500 ग्राम मात्रा को लोहे के पतीले में 3.0 लीटर पानी के साथ गर्म करके घोल बना ले तथा इसमें उपरोक्त बने युरिया के घोल को अच्छी तरह से मिला लें।

(3) सीरा-युरिया के उपरोक्त घोल (2) में क्रमशः 1.0 किलो पीसा हुआ साधारण नमक, 1 किलो विटामीन-युक्त लवण-मिश्रण एवम् 1.0 किलो डोलोमाइट चूना (अथवा कैलसाइट) को इस्पात के चम्मच से धीरे धीरे हिलाते रहें जब तक कि ये विभिन्न लवण, सीरा-यूरीया घोल (2) में अच्छी तरह से मिल न जाये।

(4) एक बड़े प्लास्टिक टब में 7.0 किलो 500 ग्राम गेहूँ की चापड़ लें तथा इसमे 1.0 किलो सोयाबीन-मील (सोयाबीन के बीजो से तेल निकालने के बाद बची दाल) को हाथ से अच्छी तरह से मिलाये। सोयबीन मील की जगह ग्वार की चूरी अथवा ग्वार-कोरमा काम मे लिया जा सकता है। इस चापड़ एवम् सोयाबीन मील (अथवा ग्वार-चूरी या कोरमा) मिश्रण में उपरोक्त प्राप्त सीरा-यूरीया-लवण मिश्रण इत्यादि (3) का घोल धीरे-धीरे डाले व इसको अच्छी तरह से मिलाते रहे।

(5) अंत में 240 ग्राम ग्वार-गम डस्ट थोड़ी-थोड़ी मात्रा में उपरोक्त मिश्रण (4) पर छिड़कते रहे व मिश्रण को अच्छी तरह से मिलाते रहे।

(6) सबसे पहले बाहर की ओर खुलने वाले लोहे के साँचे में अन्दर की ओर एक प्लास्टिक की तह बिछा दें। इससे 4.0 किलो 700 ग्राम, उपरोक्त बने मिश्रण (5) की मात्रा को लेकर हस्त-चलित मशीन द्वारा दबा दें।

(7) 24-घंटे इनको (6) साँचे में रहने दें तथा अततः शुष्मक में रख कर सुखा दें।

(8) सूखने के बाद कागज अथवा प्लास्टिक के रेपर, जिस पर बट्टिका के बारे में पूर्ण जानकारी छपी हो, में पैक कर दें। 10-10 बट्टिकाओं को जूट के बने उपयुक्त साइज के बैग अथवा पेपर कार्टुन में पेक कर दें।

क्रम वार पौष्टिक पशु-आहार बनाने की विधि

1. किलो यूरिया-दानों को आधे लिटर जल में काँच या इस्पात के पात्र में गर्म करके घोल बनाये

१ किलो पीसा हुआ नमक
१ किलो विटामिन युक्त लवण मिश्रण
१ किलो डोलोमाइट या कैलसाइट पाउडर इन सबका मिश्रण बनाये

→ प्लास्टिक के बड़े टब में 10 किलो 400 ग्राम सीरा लें

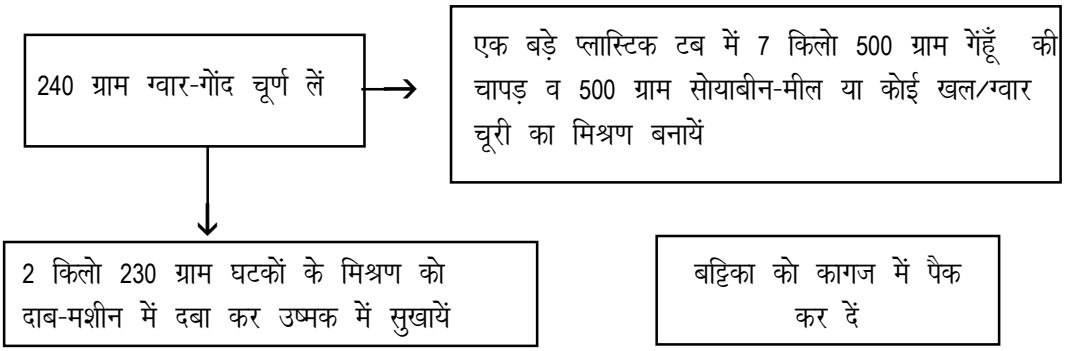

तालिका संख्या 1: **पशु आहार बट्टिका के मुख्य-घटक एवं वैकल्पिक घटक जिनको मुख्य-घटको के स्थान पर उपयोग में लिया जा सकता है ।**

क्र.	मुख्य एवं उत्तम घटक	वैकल्पिक अथवा प्रतिस्थापित घटक
1.	गन्ने का सीरा	चूकून्दर का सीरा/पशु-आहार गुड़, कोर्न-स्टीप लिकर (मक्की-स्टार्च उद्योग का उप-उत्पाद)
2.	युरिया	-
3.	साधारण नमक	-
4.	डोलोमाइट	कैलसाइट/कम सिलिका का संगमरमर-पत्थर का चूरा
5.	अमीनो अम्ल एवम् विटामीन ए, डी, ई युक्त लवण मिश्रण	विटामीन ए युक्त लवण मिश्रण/कैलशियम एव फास्फोरस युक्त लवण मिश्रण।
6.	गेहूँ की चापड़	वसा युक्त या (और) वसा-विहीन चावल की चापड़/जौ की चापड़ । माल्ट-स्प्राउट/नीम की पत्ती का चूरा/अरडु की पत्ती का चूरा/बीज-निकली विलायती बबूल फली का चूरा/बीज-निकली इजरायली बबूल की फली का चूरा/अच्छी तरह से कुतर किया गया धामण/घास बाजरी का चूरा व वसा-युक्त चावल की चापड़ का मिश्रण।
7.	सोयाबीन-मील	ग्वार-कोरमा/ग्वार-चूरी/अच्छे तिलहन बीजों की खल/कपास के बीजों का चूरा ।
8.	कार्बनिक-बन्धक (बाईन्डर): ग्वार-गौंद उद्योग का उत्पाद (ग्वार-गौंद डस्ट)	1. कार्बनिक बंधक : मैथी के बीजों का चूर्ण 2. अकार्बनिक-बंधकः सिमेन्ट/मैगनिशीयम आक्साइड/ बेन्टोनाइट या सोडियम बेन्टोनेट/ जिप्सम/अनबुझा चूना (कैलशियम आक्साइड) इत्यादि

जहाँ तक सम्भव हो उपरोक्त तालिका मे वर्णित ''मुख्य एवं उत्तम घटकों''को ही पशु आहार बट्टिका बनाने में प्रयोग करना चाहिये। पर यह सम्भव न हो तो वैकल्पिक अथवा प्रतिस्थापित घटकों में से कोई भी एक घटक काम में लिया जा सकता है । इस स्थिति में बनाने की विधि में वर्णित घटको की मात्रा में थोड़े बदलाव की आवश्कता हो सकती है।

हानि लाभ का लेखा-जोखा

किसी भी उद्योग में हानि-लाभ का लेखा-जोखा एक महत्वपूर्ण कार्य है। बट्टिका-उत्पादन कुटीर उद्योग में यह निम्न प्रकार लगाया जा सकता है।

(अ) **परमानेन्ट असेट्स** : निम्न यंत्रों के खर्चो का योग

(1) लोहे के साँचे मय लकड़ी की पट्टिकाएँ
(2) दाब-मशीन
(3) तराजू एवं इसके विभिन्न तोल
(4) विभिन्न घटको के संचय के पात्र
(5) यूरीया व अन्य घटको के घोल व इनके मिश्रण बनाने के पात्र
(6) उष्मक : सौर अथवा विद्युत उष्मक
(7) सिलिंग अथवा पैकिंग करने के यंत्र

(ब) **कन्जूमेबलस्** : कुटीर उद्योग में बट्टिका बनाने का मुख्य खर्च घटको की खरीद पर लगता है । यह प्रत्येक घटक की मात्रा एवं उनके बाजार मूल्य पर निर्भर रहता है। उपरोक्त वर्णित काजरी द्वारा विकसित सरल-विधी द्वारा पशु आहार बट्टिका बनाने का व्यावसायिक स्तर पर उद्योग स्थापित करने का विस्तृत विवरण दिया गया है । कुटीर उद्योग में यंत्रों व मशीनों का उपयोग बहुत कम होता है । अतः इसमें मुख्य लागत, पारिश्रमिक व घटकों की खरीद में होने वाला खर्च है तथा श्रमिकों का पारिश्रमिक ही मुख्य लाभ गिना जाता है। इस प्रकार के व्यवसाय ग्रामीण क्षेत्रों में रोजगार उपलब्ध करवाने के अच्छे उपाय हो सकते हैं ।

❑❑❑

वैज्ञानिक विधि से सूखे चारे की पौष्टिकता कैसे बढ़ाएं ?

ए.के. पटेल[1] एवं एन.वी.पाटिल[2]
[1]प्रधान वैज्ञानिक, केन्द्रीय शुष्क क्षेत्र अनुसंधान संस्थान, जोधपुर
[2]निदेशक, राष्ट्रीय उष्ट्र अनुसंधान केन्द्र, बीकानेर

गाय एवं भैंसों को केवल सूखा चारा विशेषतौर से गेहूँ का भूसा या खाखला खिलाकर स्वस्थ नहीं रखा जा सकता। खाखले जैसे चारे में पौष्टिक तत्वों का अभाव रहता है। ऐसा चारा खिलाने से शरीर में ऊर्जा एवं अन्य पोषक तत्वों की कमी होने लगती है जिससे पशु कुपोषण का शिकार होकर मृत्यु की ओर अग्रसर होने लगता है। यह स्थिति अकाल के समय रेगिस्तानी क्षेत्रों में सामान्य रूप से देखी जा सकती है।

अतः पशुधन को बचाने हेतु अकाल जैसे समय में, जबकि पशु को खिलाने हेतु केवल खाखला ही उपलब्ध होता है, ऐसे सूखे चारे को उपचारित करके ही खिलाना चाहिए। चारा उपचारण के द्वारा चारे की पौष्टिकता में कई गुणा वृद्धि हो जाती है और पशु को केवल उपचारित चारे पर भी स्वस्थ रखा जा सकता है।

चारे की उपचारण विधि अत्यन्त सरल, सस्ती, आसानी से अपनाने योग्य हैं।

अ. तुरंत उपयोग हेतु

10 किलो (या इसी अनुपात में) सूखे चारे/खाखले के उपचारण हेतु लगभग चार लीटर पानी में 100 से 200 ग्राम युरिया (कृषि उपयोग हेतु रसायनिक खाद), 1/2 किलो गुड़ (रसकट, पशु-उपयोग हेतु) तथा 50 ग्राम लवण-मिश्रण (मिल्कमिन, लाइकामिन, सरस, आयुमिन आदि ट्रेड नामों से उपलब्ध) घोलकर सूखे चारे में अच्छी तरह मिला दें। मिलाने के पश्चात् तुरंत ही यह चारा पशु को खिलाया जा सकता है। इस उपचारण की लागत (प्रति दस किलो चारा) 7-11 रूपये आती है एवं इससे पशु के शरीर में सभी पौषक तत्व आवश्यक मात्रा में पहुँच जाते हैं।

ब. अन्तराल के बाद उपयोग हेतु

इस विधि से उपचार के बाद चारा पहले बताई गई विधि के मुकाबले अधिक पौष्टिक हो जाता है परन्तु इस विधि में उपचारित करने के बाद चारे को लगभग 21 दिन तक ढक कर रखना चाहिए।

एक क्विंटल उपचारित चारे को उपचारित करने हेतु 3-4 किलो यूरिया एवं 40-50 किलो

(मौसमानुसार) पानी की आवश्यकता होती है। इस विधि में यूरिया का छिड़काव चारे की विभिन्न परतों (3-4 या अधिक) में किया जाता है। अर्थात् उपचार करने वाले चारे की कुल मात्रा को 3-4 भागों में विभाजित कर उपचार किया जाता हैं। इस हेतु तल (फर्श) या तो पक्का होना चाहिए अन्यथा उस पर प्लास्टिक बिछा ले ंजिससे छिड़कने वाला युरिया का घोल मिट्टी में न जाए।

कुल एक क्विंटल चारा उपचार करने हेतु (उदाहरण के तौर पर) पहले फर्श पर 25 किलो सूखा चारा बिछाकर उसकी चौकड़ी बना लें। 10-12 लीटर पानी में 750 ग्राम से 1 किलो तक यूरिया घोल लें। युरिया को घोलने हेतु किसी पेड़ की टहनी का उपयोग करें उसे हाथ से न मिलाएं। इस यूरिया के घोल को चारे के ऊपर एक सार छिड़कें। इस हेतु झारे का उपयोग ज्यादा अच्छा रहता हैं। ध्यान रहे कि यह यूरिया का घोल पशुओं के लिये अत्यन्त घातक होता है। अतः इस घोल को पशु को न पीने दें। छिड़काव के बाद चारे को पैरों से अच्छी तरह से दबाएं जिससे चारे के बीच की हवा निकल जाए।

इस उपचारित पहली तह के ऊपर फिर उसी अनुपात में यूरिया का घोल बनाकर छिड़के एवं पैरों से दबाएं। दूसरी तह के ऊपर इसी तरह तीसरी एवं चौथी तह बिछाकर उपचार करें। सबसे ऊपर की तह को भी अच्छी तरह पैरों से दबाकर उसके ऊपर प्लास्टिक (मेणिया) इस प्रकार ढकें कि उसका निचला हिस्सा भी चारे के नीचे दब जाए। इस हेतु एक से अधिक टुकड़ों या बोरियों का भी उपयोग किया जा सकता है। चारों तरफ से अच्छी तरह ढकने के बाद प्लास्टिक को पत्थर आदि से अच्छी तरह दबा दें जिससे हवा आदि से प्लास्टिक हट न सके।

इस तरह चारे को लगभग 21 दिन तक ढका रहने दे। उसके बाद प्लास्टिक कवर को एक तरफ से खोलने पर अमोनिया गैस की गंध आती है तथा उपचारित चारे का रंग भी भूरा हो जाता हैं।

आवश्यक मात्रा में चारे को बाहर निकालकर 2-3 घण्टे हवा में खुला रखे जिससे उसमें अटकी अमोनिया गैस की गंध निकल जाये। इस उपचारित चारे को सीधे पशु को खिलाया जा सकता है। हो सकता है कि हल्की गंध होने के कारण पशु इसको आरंभ में खाना स्वीकार न करें। पशु को इसके खिलाने की आदत धीरे-धीरे डालनी होती है। इस हेतु आरंभ में इसमें सादा चारा मिलाया जा सकता है जिसकी मात्रा धीरे-धीरे कम की जा सकती हैं।

इस उपचारित चारे को अधिक पौष्टिक एवं स्वादिष्ट बनाने के लिए इसमें खिलाने से पहले 5-10 प्रतिशत गुड़ तथा 0.5 प्रतिशत लवण मिश्रण पानी में घोलकर मिलाया जा सकता हैं। इस मिश्रण को खिलाने से पशु में प्रोटीन संबंधी सभी आवश्यकता की पूर्ति हो जाती हैं। इस सम्पूर्ण के उपचारण का खर्चा भी एक रूपया प्रति किलोग्राम से कम ही आता हैं।

आम तौर पर मध्यम वजन की गाय 5-7 किलो एवं अधिक वजन वाली गाय या भैंस 7-10 किलो सूखा चारा खाती है। अधिक दूध देने वाले पशु को इस उपचारित चारे के अतिरिक्त दैनिक दूध की मात्रा का 30-40 प्रतिशत संतुलित दाना मिश्रण (पशु आहार) भी अवश्य खिलाना चाहिए।

साइलेज द्वारा सूखे चारे का पौष्टिकरण

पूरे देश में और विशेष रूप से राजस्थान जैसे क्षेत्रों में न केवल पशुओं के चारे की समस्या प्रमुख है बल्कि उपलब्ध चारा सूखा, रेशेदार और निम्न कोटि का होने के कारण पशुओं को खिलाने के उपयुक्त नहीं होता है। इस प्रकार का चारा जैसे भूसा, कडबी, खाकला, सूखी पत्तियां, घासे, खरपतवार और फसलों के बचे हुए अन्य पदार्थ जानवरों के केवल पेट भरने का काम कर सकते हैं। जिससे जानवरों में प्रोटीन, ऊर्जा आदि आवश्यक तत्वों की कमी ज्यों की त्यों बनी रहती है। इसी कारण गर्मियों में दुधारू पशुओं का दूध और वजन कम हो जाता है। दूसरे अकाल के समय में घास और सूखी पत्तियां भी उपलब्ध नहीं होती। इस समस्या का एक ही समाधान है।

सूखे चारे का गैर परम्परागत विधि द्वारा साइलेज बनाना

गैर परम्परागत साइलेज में न्यूनतम 13 प्रतिशत अपरिष्कृत प्रोटीन की मात्रा होती है। इससे चारा स्वादिष्ट, सुगंधित और पाचनशील हो जाता है। 40 प्रतिशत खिलाने के आधार पर दाने की खुराक में 60 प्रतिशत की कमी की जा सकती है। गाय को रोजाना 10 कि. ग्रा. खिलाकर दाने गट्टे आदि राशन के खर्च में कमी और दूध की मात्रा एवं गुणवत्ता में सुधार से पशु पालक प्रति पशु न्यूनतम 7 रू प्रतिदिन का लाभ कमा सकता है। अतिवृष्टि और अकाल के समय साईलेज जीवनरक्षक का काम करता है।इसे बनाने की विधि निम्न प्रकार से है–

साइलो पिट बनाना

3 फीट गहरा व 5 फीट गहरा गढ्ढा लगभग 4 क्विंटल (400 किग्रा) चारे का साइलेज बनाने के काम आता है जिससे दो दुधारू जानवर 40 प्रतिशत खिलाने (खिलाई) के आधार पर 20 दिन तक साइलेज खा सकते हैं। साइलेज बनाते समय ध्यान देने योग्य बातें

1. साइलो गढ्ढा की परिधि उसकी गहराई से कम से कम आधी होनी चाहिए।
2. साइलो गढ्ढा की अंदरूनी दीवारें सपाट और सीधी होनी चाहिए।
3. जमीन से थोड़ी ऊपर बनाना चाहिए जिससे आसपास का पानी अंदर न जा सके।
4. साइलो गढ्ढा खोलने के बाद कम से कम एक महिने में साइलेज उपयोग में ले लेना चाहिए।

साइलो गढ्ढा सीमेंट, आर.सी.सी. अथवा कच्चा भी हो सकता है।

चारा तैयार करना

सूखे चारे की 1 से डेढ़ इंच कुत्तर करनी चाहिए। इसके बाद चारे को ढाई गुना पानी में भिगोकर टंकी, पक्के फर्श या जमीन पर अथवा प्लास्टिक शीट पर रख दें। अगले दिन 10 प्रतिशत मोलासिस (शीरा

या गुड) तथा 2 प्रतिशत यूरिया (यानि 100 किलो सूखे चारे में 10 किलो मोलासिस और 2 किलो यूरिया) का घोल बनाकर भिगोए हुए चारे में मिला दें इसके बाद इस चारे को ठूंस-ठूंस कर साइलो में भर दें। साइलो को डेढ़ फीट ऊपर तक भर दें। ऊपर सूखा भूसा प्लास्टिक आदि रख मिट्टी से लिपाई कर दें। ध्यान रखने योग्य बात यह है कि साइलो के अंदर हवा पानी नहीं जाना चाहिए। डेढ़ से 2 महिने बाद खोल कर खिलाना शुरू कर दें। आपका गैर पारम्परिक साइलेज तैयार है।

पशुओं की खिलाई

पशुओं को उनके प्रतिदिन के आहार का 40 प्रतिशत यानी एक वयस्क गाय को रोजाना 10 किलो साइलेज दिया जा सकता है। साइलो खोलने के बाद यदि ऊपर खराब चारा हो तो उसे फैंक दें। ऊपरी चारे का खराब होना साइलेज का खराब होना नहीं है और इससे घबराना नहीं चाहिए। साइलेज दूध निकालने से आधा घंटा पहले अथवा बाद में देना चाहिए। अन्यथा दूध में साइलेज की महक आ जाती है। साइलेज खिलाते समय दाना/कन्सेंट्रेट को 60 प्रतिशत तक कम किया जा सकता है।

गैर परम्परागत साइलेज के मुख्य लाभ

1. सूखे मौसम में साइलेज हरे चारे की कमी पूरी कर सकता है।
2. इस विधि से कम जगह में अधिक चारे का संग्रह किया जा सकता है।
3. साइलेज में 12-14 प्रतिशत प्रोटीन होता है। जिससे दूध और वसा में वृद्धि होती है।
4. अच्छी गंध होने के कारण पशु इसको ज्यादा पसंद करता है।
5. सूखा, बाढ़, अकाल के समय साइलेज पशुओं को जीवनदान दे सकता है।

❑❑❑

पशु-पौष्टिक दाना : मरूस्थलीय पशुओं के लिए वरदान

एच. सी. बोहरा[1] एवं एन.वी.पाटिल[2]
[1]प्रधान वैज्ञानिक (से.नि.), केन्द्रीय शुष्क क्षेत्र अनुसंधान संस्थान, जोधपुर
[2]निदेशक, राष्ट्रीय उष्ट्र अनुसंधान केन्द्र, बीकानेर

पशु-पौष्टिक दाना, स्थानीय उपलब्ध पशु-पोषक घटकों जैसे उच्च किण्वीत-शर्करा तथा वनस्पति प्रोटीन, अप्रोटीन नत्रजन, खनिज लवण एवं विटामिनों का संतुलित मिश्रण है। केन्द्रीय रूक्ष क्षेत्र अनुसंधान संस्थान ने इसको बनाने की सरल तकनीक विकसित की है जिसमें गन्ने का सीरा, ग्वार-कोरमा, गेंहूँ की चापड़, विटामिन युक्त लवण मिश्रण, नमक एवं डोलोमाइट चूना-पत्थर, इन सबको उपयुक्त मात्रा में संमिश्रित कर सौर-ताप अथवा सौर-उष्मक द्वारा सूखा लिया जाता है। इस प्रकार तैयार किये गये दानें में सीरा द्वारा गेहूँ की चापड़ एवं ग्वार कोरमा पर अन्य पोषक घटक अच्छी तरह से लेपित होने के कारण, दाने के प्रत्येक भाग में सभी पोषक तत्व समान मात्रा में विद्यमान रहते है। इस पौष्टिक दाने को मरू ग्रामीण जन अथवा कृषक आसानी से उत्पादन कर रोजगारोन्मुख व्यवयाय की तरह अपना सकते हैं। काजरी संस्थान द्वारा पौष्टिक दाने का ग्रामीण पशुओं पर किये गये प्रयोगों के उत्साहवर्धक परिणाम प्राप्त हुए है। इनके उत्पादन की सरल-तकनीक के कारण यह पौष्टिक दापस मरू-पशु-पालकों में बहुत लोकप्रिय हो रहा है तथा ग्रामीण किसान इसके उत्पादन को व्यवसाय स्वरूप अपना रहें है।

राजस्थान के कुल भौगोलिक क्षेत्र का लगभग 62 प्रतिशत भू-भाग (12 पश्चिमी जिले) शुष्क मरूस्थलीय क्षेत्र है। शुष्कता एवं न्यून वर्षा के कारण इस क्षेत्र के ग्रामीण कृषको का मुख्य व्यवसाय एवं आय का स्त्रोत कृषि एवं पशु-पालन आधारित कृषि हैं। सीमित एवं असमय वर्षा के कारण इस क्षेत्र में कृषि उत्पादन प्रभावित होता रहता है। इस क्षेत्र में पड़त एवं चारगाहों का विस्ततृ क्षेत्र है, जो कि पशुओं को चराई के लिए उपलब्ध रहता है पर कम वर्षा के कारण जो भी पशु खाद्य उपलब्ध रहता है वे न केवल मात्रा वरन् गुणवत्ता में भी निम्नतर होते है। इस समस्या को उच्च पशु दर और बदतर कर देती है। ऐसी अवस्था में पशुओं को न केवल आवश्यकतानुरूप चारा उपलब्ध हो पाता है वरन् इसकी निम्न पोषकता के कारण पशुओं में पोषक तत्वों की लगातार कमी बनी रहती है जिससे पशु-स्वास्थ्य एवं उत्पादन प्रभावित होता है।

हालांकि मरू चारागाहों में पाले जाने वाले पशुओं में लगभग सभी मुख्य पोषक घटको की कमी रहती है जिसमें किण्वीत शर्करा, प्रोटीन, विटामीन 'ए' एवं 'ई', तथा विभिन्न लवणों की निम्नता मुख्य समस्या है।

अतः मरूस्थलीय पशुओं के लिए ऐसे पौष्टिक-दाने की आवश्यकता होती है जिसमें सभी आवश्यक पोषक-तत्वों के साथ-साथ उच्च किण्वीय शर्करा का समावेश हो। काजरी संस्थान ने उपरोक्त सभी बिन्दुओं

को ध्यान में रखकर इस प्रकार का पौष्टिक-दाना बनाने की विधि विकसित की है जिसमे सभी घटक एकाकार होते है। इस प्रकार के दाने के उत्पादन के लिए कोई विशेष यंत्र की आवश्यकता नहीं होती है।

उत्पादन एवं विभिन्न घटकों का विवरण :

1. किण्वीय ऊर्जा अथवा शर्करा के स्त्रोतः मुख्यतया गन्ने का सीरा (मॉलासेज) ही काम में लेना चाहिए। इसकी अनुपलब्धता की स्थिति में चूकून्दर का सीरा, अथवा गहरे-भूरे रंग का काला गुड़ (रसकट) भी काम में लिया जा सकता है।

2. नत्रजन के स्त्रोतः (2.क.) वनस्पतिक प्रोटीनः ग्वार-कोरमा अथवा ग्वार चूरी, सोयाबीन-खल या अन्य कोई भी अच्छी तिलहन फसलों की खल उपयोग में ली जा सकती है। (2.ख.) युरिया जो कि पशु के रूमन (औदरी) मे विद्यमान लाभदायक सूक्ष्मजीवियों द्वारा उच्च कोटि के सूक्ष्म जीवी-प्रोटीन में बदल जाता है जो कि अंततः पशु की आहार नाल में पचकर अवशोषित हो जाता है।

3. लवणों के स्त्रोतः (3. अ.) पीसा हुआ साधारण नमक, आयोडिन युक्त नमक की आवश्यकता नहीं होती क्योंकि लवण-मिश्रण में आयोडिन आवश्यक मात्रा में उपलब्ध रहता है। सोडियम सल्फेट युक्त नमक जो कि कम दाम में मिलता है, यदि उपलब्ध हो तो काम में लिया जा सकता है। (3.ब.) डोलोमाइट-चूनाः यह कैल्शियम एवं मैगनिशीयम कार्बोनेटों का यौगिक है तथा दोनो तत्वों का अच्छा स्त्रोत है। (3. स.) लवण-मिश्रणः विटामिन युक्त लवण-मिश्रण जिसमें सब मुख्य एवं सूक्ष्म आवश्यक खनिज तत्वों जैसे कैल्शियम, फास्फोरस, कोबाल्ट, ताम्बा, आयोडीन, लोहा, मैग्नीज, सैलिनियम एवं जस्ता इत्यादि तथा विटामिन ए, डी-3, ई, नियासिनेमाइड का समावेश हो, उपयोग में लिया जाना चाहिए। यदि इस प्रकार का लवण मिश्रण उपलब्ध न हो तो साधारण लवण-मिश्रण में विटामिन 'ए' की उपयुक्त मात्रा मिश्रित कर उपयोग में लिया जा सकता है। लवण-मिश्रण की अनुपलब्धता की अवस्था में उच्च कोटि के डाई-कैल्शियम फास्फेट (डीसीपी) तथा जल-विलनीय 1 लाख अन्तर्राष्ट्रीय इकाई प्रति मि.ली. के विटामिन ए के घोल की लगभग 60 मि. ली. मात्रा को 1 किलो ग्राम साधारण नमक साथ समिश्रण बनाकर उपयोग में लिया जा सकता है।

4. संरचनीय घटकः गेहूँ का चोकर, पौष्टिक दाना बनाने के लिए उत्तम रहता है। यह न केवल दाने के अन्य घटको को आधार प्रदान करता है, बल्कि यह विलयशील कार्बोहाइड्रेट एवं बी समूह के विटामिनों का भी मुख्य स्त्रोत है। इसकी अनुपलब्धा की अवस्था में चावल की चोकर, मक्का-ग्लूटन-फीड या अन्य इसी प्रकार के पदार्थ जैसे मूगंफली की फली का चूरा भी काम में लिया जा सकता है। हालाँकि उपरोक्त वर्णित पशु-पोषक घटकों द्वारा पौष्टिक दाणें का उत्पादन करना उत्तम रहता है पर किसी क्षेत्र में इनकी अनुपलब्धता की अवस्था में इन घटको को उसी प्रकार के अन्य पशु-खाद्य पदार्थो द्वारा विस्थापित किया जा सकता है।

यंत्र

पौष्टिक दाना बनाने के लिए कोई विशेष यंत्र की आवश्यकता नहीं होती है केवल तुला, दाने को

छत पर फैलाकर सुखाने के लिए प्लास्टिक की चधर (सीट) तथा घटकों के भण्डारण एवं मिश्रण तैयार करने के लिए विभिन्न प्लास्टिक तथा लोहे के टब इत्यादि की आवश्यकता होती है। यदि सौर-उष्मक, विशेषकर विद्युत-सौर-उष्मक उपलब्ध हो तो दाने को सुखाने मे सुगमता रहती है।

बनाने की विधि

एक बार में 100 किलो ग्राम पौष्टिक दाणा बनाने के लिए सर्व-प्रथम (अ) 1 कि. ग्रा. दानेदार युरिया का लगभग 0.500 मि. मी. गर्म जल में घोल तैयार करे तथा 47.00 कि. ग्रा. सीरा (मेलासेज) मे मिलाये। (ब) अलग से 5.0 कि. ग्रा. साधारण नमक 5.0 कि. ग्रा. विटामिन लवण-मिश्रण एवं 5.0 कि. ग्रा. डोलोमाइट पाउडर, इन सब को अच्छी तरह से मिलाएं। (स) अब सीरा-यूरीया (अ) के घोल में सब लवणों के मिश्रण (ब) को अच्छी तरह से मिलाएं। (द) अलग से 32.00 कि. ग्रा. गेहूँ के चोकर तथा 5 कि. ग्रा. ग्वार चूरी अथवा खली को अच्छी तरह से मिलाएं। इस मिश्रण (द) में यूरिया-सीरा-लवणों का बना गाढ़ा घोल डाल दें तथा हाथ द्वारा अच्छी तरह से मिलाएं जिससे गेंहूँ के चोकर एवं ग्वार-चूरी के मिश्रण पर अन्य पोषक घटकों का अवलेपन हो जाए। इस प्रकार बने मिश्रण को खुली धूप में प्लास्टिक की चद्दर फैलाकर उस पर सूखाने के लिए रख दे तथा सूखने तक सुबह-शाम एक-एक बार अच्छी तरह से मिलाते रहे जिससे सूखा हुआ पौष्टिक दाणा सूखने के बाद बड़े-बड़े दाने के रूप में न रह कर छोटे-छोटे दानों के रूप में प्राप्त हो। इस प्रकार तैयार पौष्टिक दाने को 100-100 ग्राम प्रतिदिन एक बकरी अथवा भेड़ को देने के लिए, तथा 150-150 ग्राम सुबह-शाम गाय अथवा भैंस को, इनके चारे/बाँटे में मिलाकर देने के लिए जल-रोधी प्लास्टिक के पैकेट में पैक कर दें।

क्रम वार पशु-पौष्टिक दाना बनाने की विधि (कुल मात्रः 100 किग्राॅ)

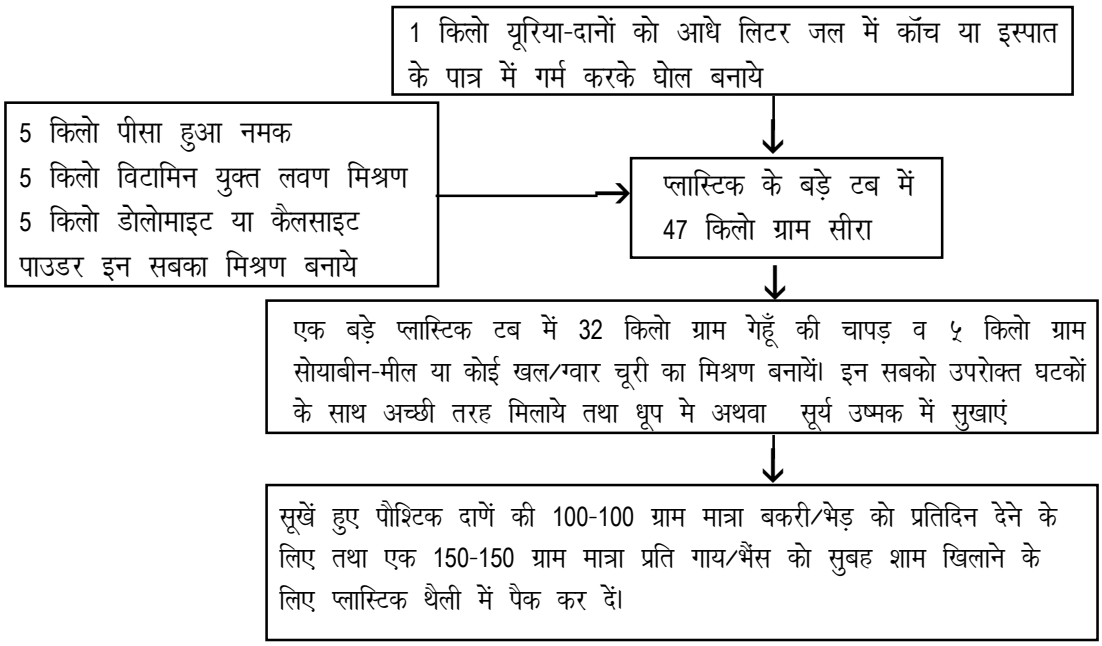

इस प्रकार के पशु-पौष्टिक दाने व पशु-पालकों तथा संस्थान के पशुओं पर विस्तृत वैज्ञानिक शोध के आधार पर पाया कि काजरी पशु-आहार बट्टिका की तरह, इसके सेवन से पशुओं में भूख जागृत होना तथा पानी का सेवन ज्यादा करना, जुगाली में सुधार, लवणों की कमी से पशुओं में होने वाली पाइका नामक व्याधि से मुक्ति, स्वास्थ्य तथा दूध उत्पादन में अभूतपूर्व सुधार दर्ज किए गए। भेड़ एवं बकरियों पर अलग-अलग स्थान पर किए गए प्रयोगों द्वारा यह देखा गया कि केवल 100 से 150 ग्राम पौष्टिक दाना प्रतिदिन उन बकरी अथवा भेड़ों जो केवल मरू-चारागाहों पर निर्भर है, खिलाने से उनमें न केवल दैनिक दूध-उत्पादन में आशातीत वृद्धि आँकी गई अपितु प्रति-ब्यांत, तथा कुल ब्यांत-काल में भी दुग्ध-उत्पादन में बढोतरी दर्ज की गई। जिन भेड़ों अथवा बकरियों को पौष्टिक दाना पूरक आहार के रूप में दिया गया उनके मेमनो में दैनिक भार-वृद्धि एवं तोल में भी उन भेड़ों अथवा बकरियों जिनको यह दाना नहीं खिलाया गया उनमें तुलनात्मक ज्यादा वृद्धि आंकी गई।

यह पौष्टिक दाना हर प्रकार के पशु, दूधारू एवं ग्याभित, विशेषकर गर्भावस्था के अन्तिम महीनों में देना अति लाभकारी रहता है। इस दाने में उन सभी पोषक घटकों का उचित मात्रा तथा अनुपात में समावेश किया गया है, जिससे पशुओं को पूरक आहार के रूप में देने पर इनमें आवश्यक पोषक तत्वों की आपूर्ति कर उनके स्वास्थ्य में सुधार एवं उत्पादन में आशातीत वृद्धि की जा सकती है। यह पशु पालको के पशु-पालन के व्यवसाय को लाभदायक बनाता है।

इस प्रकार तैयार किया गया शुष्क, मरू पशु-पौष्टिक दाने का न केवल उत्पादन भी सरल है अपितु उच्च शर्करा व नमक के कारण इसका भण्डारण भी सुगम है। इस प्रकार के पशु-दाने का उपयोग कर न केवल पशुओं के स्वास्थ्य वरन् उत्पादन में भी आशातीत लाभ प्राप्त किया जा सकता है। साथ ही साथ पशु-पालक ग्रामीण क्षेत्र में इसका उत्पादन कर रोजगारोन्मुख व्यवसाय अपना सकते है।

❑❑❑

वन चरागाह प्रणाली से प्राकृतिक संसाधनों का टिकाऊ विकास एवं चारा उत्पादन

एम. पाटीदार[1] एवं एन.वी. पाटिल[2]
[1]प्रधान वैज्ञानिक, केन्द्रीय शुष्क क्षेत्र अनुसंधान संस्थान, जोधपुर
[2]निदेशक, राष्ट्रीय उष्ट्र अनुसंधान केन्द्र, बीकानेर

कृषि भारत की ग्रामीण अर्थ व्यवस्था का मूल आधार है, जबकि निरन्तर बढ़ती हुई जनसंख्या के साथ-साथ खेतों के आकार छोटे हो रहे हैं। देश के सकल घरेलु उत्पाद (जी.डी.पी.) में कृषि की साझेदारी कम हुई है एवं कृषि विकास वृद्धि दर भी प्रभावित हो रही है। ग्रामीण क्षेत्रों में घेरलू आय को पूरा करने के लिए पशुपालन पर ज्यादा ध्यान देने की आवश्यकता है क्योंकि दुग्ध-उत्पादन अब कृषि अर्थव्यवस्था में 20 प्रतिशत का योगदान देता है और 70 प्रतिशत ग्रामीण जनसंख्या दुग्ध-उत्पादन में सक्रियता से लगी हुई है। कृषि तन्त्र में जानवरों को अधिक संख्या में लगाने से कृषकों द्वारा भूमि, जल, धूप आदि प्राकृतिक संसाधनो और पारिवारिक श्रम का अधिकत्तम उपयोग किया जा सकता है। चूंकि भूमि की कमी है इसलिए दुधारू पशुओं की अतिरिक्त संख्या भारतीय कृषि-तंत्र की उत्पादकता को बढ़ाती है। इससे वर्ष भर लोगों को रोजगार मिलता है, जबकि खेती मुख्यतः एक ही फसल को उगाने तक ही सीमित होती है। शुष्क क्षेत्र में पशुपालन का महत्व ओर भी बढ़ जाता है, क्योंकि यहाँ पर जलवायु की विषम परिस्थितियों के कारण फसल उत्पादन सफल एवं लाभदायक कम ही हो पाता है। राजस्थान की अर्थव्यवस्था खेती एवं पशुपालन दोनों पर निर्भर करती है एवं राज्य की सकल घरेलू आय का लगभग 19 प्रतिशत भाग पशुपालन से प्राप्त होता है। राज्य देश में 10 प्रतिशत दूध, 30 प्रतिशत माँस और 40 प्रतिशत ऊन उत्पादन में योगदान देता है। राजस्थान में कुल भू-भाग का लगभग 19.67 मिलियन हैक्टर शुष्क क्षेत्र है जिसमें लगभग 10 मिलियन हैक्टर भूमि पर खेती की जाती है व ज्यादातर वर्षा आधारित खेती है। सिंचित क्षेत्र का हिस्सा लगभग 10-15 प्रतिशत रहता है। यहाँ पर वनों का क्षेत्रफल भी 2 प्रतिशत से कम है, जबकि पर्यावरण का सही संतुलन बनाए रखने के लिए यह 33 प्रतिशत होना चाहिए। लगभग 40 प्रतिशत भूमि पड़त, बंजर एवं खराब रहती है। इस प्रकार के भू-क्षेत्र के बढ़ने की संभावनाएं और अधिक जताई जा रही हैं केवल 4 प्रतिशत भूमि ओरण-गोचर व चरागाह के लिए है जिसकी उत्पादन क्षमता बहुत कम है। इस तरह शुष्क क्षेत्र में न केवल कृषि उत्पादन कम होता है, परन्तु पशुओं के लिए आवश्यक चारे की आपूर्ति भी नहीं हो पाती। अतः आज की आवश्यकता है कि वन चरागाह पद्धति अपनाकर कम उपजाऊ भूमि का उत्पादन बढ़ाया जाए, जिससे चारे, काष्ठ लकड़ी एवं जलाऊ लकड़ी की उपलब्धता में वृद्धि की जा सके।

वन चरागाह पद्धति का महत्व

हमारे देश मे वनों का पुराने समय से पशुओं की चराई के लिए उपयोग किया जाता रहा है। इसी

सिद्धान्त को आगे बढ़ाते हुए चारा फसलों को पेड़ों के साथ उगाने की प्रक्रिया को वन-चारागाह पद्धति का नाम दिया गया है। यह भूमि प्रबन्धन की वह पद्धति है जिसमें पेड़ों की पंक्तियों के बीच की रिक्त जमीन में घास या चारा फसलों को उगाया जाता है जिससे पशुओं के लिए चारा उपलब्ध हो जाता है। यह पद्धति बंजर व पथरीली तथा अनुपयोगी भूमियों में ईधन एवं चारा प्राप्त करने के लिए उपयुक्त है। कृषि अयोग्य भूमि पर उन्नत तकनीकी से बहुउद्देशीय वृक्ष और झाड़ियों को उगाकर चारा, ईंधन, इमारती लकड़ी और हरी खाद की आपूर्ति की जा सकती है। शुष्क एवं अर्धशुष्क क्षेत्रों में वन चरागाह पद्धति से गर्मी के दिनों में पशुओं को हरा चारा उपलब्ध करवाया जा सकता है। चारा वृक्षों से चारा पत्तियों के साथ-साथ जलावन लकड़ी भी प्राप्त होती है। वन चारागाह पद्धति में उन्नतशील बहुवर्षीय घासों के साथ दलहनी फसलों को मिश्रित करने से चारा उत्पादन एवं घास की गुणवत्ता में वृद्धि होती है तथा कम उपजाऊ भूमि को अधिक उपयोगी बनाया जा सकता है। इस विधि से मृदा क्षरण कम होता है और भूमि में जीवाश पदार्थों की मात्रा में वृद्धि होती है, जिससे भूमि की जल-धारण क्षमता एवं उत्पादकता बढ़ जाती है। इस प्रकार वन चरागाह पद्धति द्वारा भूमि सुधार से कम उपयोगी भूमि को कृषि योग्य बनाकार विशाल पशुधन की भूख को मिटाने मे मदद मिल सकती है। वन चरागाहों में उगाए गए चारा वृक्षों की भू-जल को गहराई से प्राप्त करने की क्षमता होती है, जिससे अन्य फसलों की अपेक्षा अधिक सूखा सहन कर सकने साथ ही पर्यावरण सरंक्षण में भी सहयोग मिलता है। वन चरागाह पद्धति में घासों एवं फसलों के साथ-साथ छायादार पेड़ एवं झाड़िया लगाते हैं जिससे पशुओं का गर्मी में तपती धूप से बचाव होता है।

वन चरागाह पद्धति के लिए घास, पेड़ एवं झाड़ियों का चयन

वन चरागाह पद्धति के लिए पेड़, पौधों, झाडियों एवं घासों का चयन वर्षा की मात्रा और भूमि के प्रकार के अनुसार किया जाता है। पेड़ों का चुनाव करते समय इस बात का ध्यान रखना चाहिए कि जिन वृक्षों की पत्तियाँ चारे के रूप मे उपयोगी होती हैं उनमें तेज वृद्धि, पत्तियाँ पशुओं के खाने योग्य हों, काटने के बाद उनमें शाखा पुनः उत्पादन की क्षमता हो। सूखे को सहन करने की भी क्षमता एवं विपरित परिस्थितियों में भी उगने की क्षमता आदि गुण भी होने आवश्यक हैं। पेड़ एवं झाड़ियाँ छायादार होने चाहिए ताकि गर्मियों में पशुओं को तेज धूप से बचाव मिल सके। शुष्क क्षेत्र के लिए वन चारागाह पद्धति में उगाए जाने वाले वृक्षों में मुख्य रूप से खेजड़ी नीम, बबूल, कुमट, अरडू, सिरस,

(अ) वार्षिक वर्षा की उपलब्धता के अनुसार निम्नलिखित पेड़/झाडियों एवं घासों का चयन वन चरागाह पद्धति के विकास के लिए किया जा सकता हैः

वर्षा की मात्रा	पेड़/झाड़ियाँ	घासें/दलहनी फसलें
150-300 मिमी	खेजड़ी (प्रोसोपिस सिनेरेरिया) कुमट (अकेशिया सेनेगल) बोरडी (जिजीफस न्यूम्लेरिया) बेर (जिजीफस रोटन्डीफोलिया)	सेवण (लेज्युरस सिंडिकस) अंजन घास (सेन्क्रस सिलियेरिस)

300-500 मिमी	बबूल (अकेशिया निलोटिका)	सेवण (लेज्युरस सिंडिकस)
	खेजड़ी (प्रोसोपिस सिनेरेरिया)	अंजन (सेन्क्रस सिलियेरिस)
	मोपेन (कोलोफोस्परमम मोपेन)	मोडा धामण (सेन्क्रस सेटीजेरस)
	नीम (अजाडिराक्टा इन्डीका)	ग्रामना (पेनिकम एन्टीड़ोटल)
	अरडू (ऐलयान्थस एक्सलेसा)	सेम (लब लब परप्यूरियस)
	सिरस (एलबेजीया लेबेक)	तितलीमटर (क्लाइटोरिया टरनेशिया)
	नूतन (डाइक्रोस्टेकिस न्यूटान्स)	
	अंजन (हाईविकिया बाईनेटा)	
500 मिमी से ऊपर	सूबबूल (ल्यूसेनिया ल्यूकोसिफेला)	धामण (सेन्क्रस सिलियेरिस)
	अरडू (ऐलयान्थस एक्सलेसा)	मोडा धामण (सेन्क्रस सेटीजेरस)
	शीशम (डलबरजीया सिसो)	करड़ (डाइकेनथीयम एनयूलेटम)
	अंजन (हाईविकिया बाईनेटा)	ग्रामना (पेनिकम एन्टीड़ोटल)
	सेंजना (मोरिंगा ओलीफेरा)	स्टाइलो (स्टाइलोसन्थस हमाटा)

विलायती बबूल, अजंन, मोपेन, बेर, नूतन आदि का चयन किया जा सकता है तथा झाड़ियों में झरबेरी, फोग, लाना, खरसन सिनिया आदि प्रमुख हैं। चरागाह विकास के लिए बहुवर्षीय घासें जैसे अंजन, धामण, सेवन, ग्रामना, मूरठ का चयन करना चाहिए। इसके साथ-साथ बहुवर्षीय दलहनी फसलों में मुख्य तौर से तितलीमटर (क्लाईटोरिया), सेम, वनकुल्थी, स्टाइलो, सिराट्रो आदि तथा एक वर्षीय दलहनी फसलों के रूप मे मोठ, मूंग, चवला तथा ग्वार को सफलतापूर्वक उगाया जा सकता है।

(ब) भूमि प्रकार के अनुसार निम्नलिखित पेड़/झाड़ियो एव घासों का चयन करे।

भूमि प्रकार	**पेड़/झाड़ियाँ**	**घासें**
1. समतल भारी मृदा	बोरडी (जिजीफस न्यूम्लेरिया)	अंजन घास (सेन्क्रस सिलियेरिस)
	मोपेन (कोलोफोस्परमम मोपेन)	मोडा धामण (सेन्क्रस सेटीजेरस)
	खेजड़ी (प्रोसोपिस सिनेरेरिया)	
	अंजन (हाईविकिया बाईनेटा)	
2. हल्की बलुई मृदा	बोरड़ी (जिजीफस न्यूम्लेरिया)	सेवण (लेज्युरस सिंडिकस)
	मोपेन (कोलोफोस्परमम मोपेन)	अंजन (धामण) (सेन्क्रस सिलियेरिस)
	खेजड़ी (प्रोसोपिस सिनेरेरिया)	
	फोग (फेलीगोनम पोलीगोनोइडिस)	
	नूतन (डाइक्रोस्टेकिस न्यूटान्स)	
3. कंकरीली	बोरड़ी (जिजीफस न्यूम्लेरिया)	बूर (सीमबोपोगोन ज्वारनकुसा)
	केर (केपेरीस डेसिडुआ)	गठिया (डकराइलेक्टीकम सिंडीकस)
	कुमट (अकेशिया सेनेगल)	

4. टीब्बा	फोग (फेलीगोनम पोलीगोनोइडिस) बावली (अकेशिया जेक्कुमोन्टाई) लाना (हेलोजीलान सेलिकार्निकम) कुमट (अकेशिया सेनेगल)	मूरठ (पेनिकम टरजीडम) ग्रामण (पेनिकम एन्टीडोटेल) सेवण (लेज्युरस सिंडिकस)
5. क्षारीय/लवणीय	जाल (सालवाडोरा परसिका) खारालाना (हेलोजीलान रिकर्वम) लुनी (सुएडा फ्रटीकोसा) इजराइली बबूल (अकेशिया टोरटीलिस) देशीबबूल (अकेशिया निलोटिका)	खारा घास (स्पोरोलोबोलस मारजीनेटस) रोडस घास (क्लोरिस गायना) दूब (साइनोडोन डक्टाइलाने) ब्रेकेरिया म्यूटिका

बहुवर्षीय घासें, दलहनी पौधे एवं झाड़ियों के अलावा गोचर भूमि में पौष्टिक पौधे जैसेः कागांरोटी (कोरकोरस ट्राइडेन्स), दूधेली (यूफोरबीया ग्रेनुलाटा), सोनेकी (पूलीकेरिया), कांटी (ट्रिबुलस टेरीस्टीरस), बेकरिया (इन्डीगोफेरा कोरडीफोलिया), कागियो (टेट्रापोगोन टेनुलस), बगफूल (हिलफेट्रोपियम मरीफोलियम) आदि भी होते हैं, जिन्हें पशु बहुत पसन्द करते हैं लेकिन अधिक चराई के दबाव के कारण इन वनस्पतियों पर विपरित प्रभाव पड़ा है। इनके बीज आसानी से उपलब्ध नहीं होते। परन्तु सरंक्षित स्थानों से बीज संग्रहण कर घासों के बीज के साथ इनका छिड़काव किया जा सकता है। इस तरह के पौधे घास सूखने पर हरे चारे का काम करते हैं।

वन चरागाह विकास एवं प्रबंधन

वन चरागाह विकास के लिए उचित वृक्षों के साथ-साथ बहुवर्षीय घासों एवं चारा फसलों को लगाया जाता है जिससे वर्ष पर्यन्त, चारे के साथ-साथ जलाऊ लकड़ी एवं काष्ठ की प्राप्ति होती रहे। वन चरागाह पद्धति को टिकाऊ बनाये रखने के लिए उचित प्रबन्धन अति-आवश्यक होता है। भूमि एवं जलवायु के अनुसार उचित पेड़-पौधों का चुनाव करके उचित समय एवं विधि अपनाकर वन चरागाह विकसित किया जा सकता है। वन चरागाह मे पेड़-पौधे लगाने का उचित समय जून-जुलाई माह है। जहाँ चरागाह लगाना है वहाँ से अवांछित एवं अव्यवस्थित झाड़िया हटाकर भूमि को अच्छी तरह से समतल करके पेड़ो को लगाने के लिए 45 x 45 x 45 सेमी आकार के गड्ढ़े आवश्यक दूरी पर जून के महिने में बना लेने चाहिए। पेड़ से पेड़ की दूरी 5 x 5 मीटर, 5 x 10 मीटर या 10 x 10 मीटर जमीन की उपलब्धता व वृक्ष की प्रजाति के अनुसार रखी जाती है। पौधे लगाने से पूर्व गड़ढों को तीन-चौथाई तक 3:1 के अनुपात में मिट्टी तथा गोबर की खाद के मिश्रण से भर देना चाहिए। इसके बाद जुलाई माह मे जैसे ही वर्षा शुरू हो, नर्सरी में तैयार किये हुऐ पौधों का रोपण कर देना चाहिए। पौधों को दीमक के प्रकोप से बचाने के लिए प्रति गड्ढ़ा 50 ग्राम

मिथाइल पेराथियान या इन्डोसल्फास कीटनाशी को मिट्टी की ऊपरी सतह पर अच्छी तरह से मिला देना चाहिए। वन चरागाह लगाने से पूर्व सरकारी एवं निजी पौधशालाओं में पौधों की उपलब्धता को सुनिश्चित कर लेना चाहिए। पेड़ व झाड़ियों को बीज द्वारा भी वन चरागाह में उगाया जा सकता है, परन्तु इसमें पूर्ण सफलता मिलने की आशंका रहती है। इसलिए नर्सरी में तैयार पौधों का रोपण अच्छा रहता है।

पेड़ एवं झाड़ियां लगाने के बाद उन्नत तकनिकी से बहुवर्षीय घासों तथा दलहनी चारा फसलों को पेड़ों के बीच रिक्त जमीन पर उगाएं। घासों को 50-75 सेमी की दूरी रखते हुए पंक्तियों में बुआई करें। प्रति हेक्टर जमीन के लिए 5-6 कि. ग्राम. अंजन घास, 5-7 कि. ग्रा मोडा धामन, 6-7 कि. ग्रा. सेवण तथा 2-3 कि. ग्रा. ग्रामना के बीज पर्याप्त होते है। बुआई करते समय ध्यान रहे कि बीज के ऊपर मिट्टी की परत कम से कम आए अन्यथा अंकुरण पर विपरित असर पडता है क्योंकि घास के बीजों के दाने बहुत ही छोटे होते हैं। बीजों को खेत की नम मिट्टी के साथ (1:5 आयतन से) मिलाकर बुवाई करें। बहुवर्षीय घासों को पुरानी जड़ो द्वारा भी लगाया जा सकता है परन्तु इसमे श्रम ज्यादा लगता है। इसके अलावा गोलियाँ बनाकर (जिसमें बीज, चिकनी मिट्टी, गोबर की खाद एवं रेत का अनुपात 1:35:2.5:2.5 में हो) घास की बुआई की जा सकती है।

अधिक चारा उत्पादन के लिए खाद एवं उर्वरको का आवश्यकतानुसार प्रयोग किया जा सकता है। 5-10 टन अच्छी तरह सड़ी हुई गोबर की खाद को बुआई से पूर्व खेत मे मिला देवें। इसके बाद बुआई के समय 20 कि. ग्रा. प्रति हैक्टर की दर से फास्फोरस एवं नत्रजन डालें तथा वर्षा होने पर 20-25 दिन बाद 20 कि. ग्रा. नत्रजन का छिड़काव करें जिससे घास की गुणवत्ता बढ़ जाती है। इसके अलावा चरागाह से अधिक गुणवत्ता वाला चारा प्राप्त करने के लिए घासों के साथ-साथ दलहनी फसलें जैसे सेम, तितली मटर, स्टाइलो ग्वार, चंवला, मोठ आदि को समानान्तर 4-4 मीटर की पट्टियों मे बुआई करें। दलहनी फसलों का 15-20 कि. ग्रा. बीज एक हैक्टर के लिए पर्याप्त रहता है। दलहनी फसलों के वन चरागाह मे लगाने से भूमि की उर्वरकता में सुधार होता है तथा प्रोटीन की मात्रा भी बढ़ जाती है।

केन्द्रीय शुष्क क्षेत्र अनुसंधान संस्थान, जोधपुर में वर्ष 2003 से 2006 तक वन चरागाह पद्धति के लिए किए गए प्रयोग में अंजन और सेवण घास को हार्डविकिया बाइनेटा व मोपेन के पेड़ों के बीच पट्टियों में उगाया गया। प्रयोग के परिणाम दर्शाते (सारणी 1) हैं कि प्रारम्भिक अवस्था मे पेड़ों की वृद्धि धीमी होने से घास की उपज पर विपरीत प्रभाव नहीं पड़ा। सेवण तथा अंजन घास को अकेले पड़ों के बीच पट्टियों में बोने से शुष्क पदार्थो की अधिक उपज प्राप्त हुई और दलहनी फसल चवला अथवा सेम के साथ समानान्तर पट्टिओं में बोने से कम वर्षा वाले सालों में चारे की उपज मे थोड़ी कमी जरूर हुई परन्तु चारे की गुणवत्ता (क्रूड प्रोटीन की उपज) मे बढ़ोतरी हुई। इस पद्धति मे 40 कि. ग्रा. नत्रजन प्रति हैक्टर डालने से 15 प्रतिशत की उपज मे वृद्धि हुई। इसके अलावा पाँचवें वर्ष के उपरान्त पेड़ों से पत्तियाँ एवं जलाऊ लकड़ी प्राप्त होने लगी। प्रतिवर्ष 15-20 क्विंटल सूखे चारे के अलावा लगभग 1-2 क्विंटल सूखी पत्तियाँ एवं 2-3 क्विंटल जलाऊ लकड़ी प्राप्त होती है।

वन चरागाह पद्धति में कभी-कभी पेड़ एवं झाडियों को खेत में न लगाकर, चरागाह के चारों तरफ लगाकर बाड़ के रूप मे भी उपयोग किया जा सकता हैं। मेड़ बन्दी के साथ-साथ नागफली, थोर और

इजराइली बबूल लगा सकते हैं। अगर नीम के लिए उपयुक्त जमीन है तो चरागाह के चारो तरफ लगा सकते है। इससे चरागाह की सुरक्षा के साथ-साथ इनकी पत्तियों को पशुओं के लिए चारे के रूप मे प्रयोग किया जा सकता हैं।

सारणी 1. फसल प्रणाली एवं नत्रजन उर्वरक का वन चरागाह पद्धति में चारे की उपज पर प्रभाव

फसल प्रणाली	सूखे चारे की उपज (क्विंटल/है°)				
	2003	2004	2005	2006	औसत
अंजन घास	22.08	10.98	23.70	14.55	17.82
सेवण घास	30.80	6.62	29.50	11.94	19.71
चंवला/सेम	24.60	1.33	15.80	3.15	11.22
अजंन, चवंला/सेम	27.75	7.01	19.30	10.04	16.07
सेवण, चंवला/सेम	30.78	5.38	27.30	10.04	18.38
नत्रजन की मात्रा (कि° ग्रा°/है°)					
0	25.39	6.17	21.23	9.11	15.48
40	29.01	6.37	24.87	10.85	17.78

वन चरागाह पद्धतियों के प्रकार

वन चरागाह मे विभिन्न प्रकार के पेड़ों, झाडियों तथा बहुवर्षीय घासों को लगाया जाता है। इन पेड़-पौधों की बढ़वार एक समान नहीं होती, इसलिए पौधों की ऊँचाई के आधार पर वन चरागाह पद्धति को तीन श्रेणियों मे विभाजित किया जा सकता है।

(1) **एक स्तरीय वन चरागाह पद्धति** : इस पद्धति में केवल घास व दलहनी चारा फसलों की खेती की जाती है (चित्र 1)। इस पद्धति में समान ऊँचाई से बढ़ने वाली बहुवर्षीय घास तथा एक वर्षीय दलहनी चारे व दाने वाली फसलें या बहुवर्षीय दलहनी चारा फसलों को चरागाह भूमि या कम उपजाऊ भूमि पर उगाते हैं। इन फसलों को मिश्रित या समानान्तर पट्टियों में उगाया जाता है। चरागाह की इस पद्धति का उपयोग चारे के साथ खाद्यान्न उत्पादन के लिए भी किया जा सकता है।

चित्र 1: एक स्तरीय वन चरागाह पद्धति

चित्र 2: द्वि स्तरीय वन चरागाह पद्धति

चित्र 3: त्रि स्तरीय वन चरागाह पद्धति

(2) **द्विस्तरीय वन चरागाह पद्धति** : इस पद्धति में असमान ऊँचाई तक बढ़ने वाली चारा फसलों एवं वृक्षों/झाड़ियों की रोपाई एक ही साथ एक ही भूमि पर करते हैं। भूमि की सतह पर चारा फसलों के रूप में धामण, सेवण, कुरा घास, ग्रामणा तथा दलहनी चारा फसलों को चारा वृक्षों के बीच मे उगाया जाता है (चित्र 2)। इस पद्धति में चारे वाली फसलें भूमि की सतह से कुछ ऊँचाई तक बढ़ती है तथा चारा वृक्ष ज्यादा ऊँचाई तक बढ़ते हैं।

(3) **त्रिस्तरीय वन चरागाह पद्धति** : इस पद्धति में तीन स्तर की ऊँचाई के पौधे लगाये जाते हैं। इसमें कम ऊँचाई के लिए घास या दलहनी फसलें, मध्यम ऊचाँई के लिए झाड़ियाँ तथा तीसरे स्तर में ऊँचें बढ़ने वाले चारा वृक्षों को लगाया जाता है (चित्र 3)। अन्य पद्धतियों की तुलना में इस पद्धति से अधिक चारा एवं ईधन की प्राप्ति होती है एवं चारे की उपलब्धता भी लम्बे समय तक बनी रहती है। इस तरह इस विधि से प्राकृतिक संसाधनों का अधिक उपयोग हो पाता है जिससे प्रति इकाई क्षेत्र में अधिक चारा एवं ईधन मिलता है।

वन चरागाह पद्धति में घास-पेड़ों में अनुकूलता एवं प्रतिर्स्पधा

वन चरागाह विकास की प्रारम्भिक अवस्था में घास का उत्पादन वृक्षों एवं झाड़ियों से प्रभावित नहीं होता, क्योंकि इस समय पेड़ों की वृद्धि धीमी होती है तथा उनका फैलाव भी कम होता है। जैसे-जैसे पेड़ बढ़ने लगते हैं और उनका फैलाव बढ़ता जाता है तो उनके आस-पास उगने वाली घास एवं चारा फसलो की वृद्धि प्रभावित होती है और उपज में कमी आ जाती है। केन्द्रीय शुष्क क्षेत्र अनुसंधान संस्थान, जोधपुर मे किए गए अध्ययन से पता चलता है कि घास की उपज एव पाला उत्पादन बेर की झाड़ियों के घनत्व से प्रभावित हुआ। झाड़ियों का घनत्व बढ़ने से चारा उत्पादन कम हुआ जबकि पाला उत्पादन बढ़ गया। इससे यह निष्कर्ष निकाला गया कि झाड़ियों के घनत्व जिससे 14 प्रतिशत क्षेत्रफल आच्छादित रहता है, अधिक चारा प्राप्त किया गया। इस प्रकार अन्य पेड़ों जैसे बबूल, कुमट, नीम, सिरस आदि के नीचे घास की वृद्धि कम होती है जबकि खेजड़ी के नीचे व आस-पास घास एवं चारा फसलों की वृद्धि अच्छी होती है और चारा उत्पादन बढ़ जाता है। एक अन्य प्रयोग में पाया गया कि मोपेन एवं हार्डविकिया बाईनाटा के पौधों को 9 x 5 मी दूरी पर लगाने से प्रथम चार वर्षो तक घासों एवं दलहनी फसलों के उत्पादन पर

प्रतिकूल प्रभाव नहीं पड़ा जबकि पांचवे वर्ष में वृक्ष से 1 मीटर की दूरी तक घास एव दलहनी फसलों की वृद्धि कुछ कम हुई तथा पेड़ से दूरी बढ़ने पर घास की वृद्धि प्रभावित नहीं हुई। इसी तरह वृक्षों की वृद्धि पर घास का प्रभाव देखा जा सकता है। प्रारम्भिक अवस्था में जब वृक्ष छोटे होते हैं और जड़े कम गहराई तक होती है तब घास और वृक्ष मे पोषक तत्वों एवं नमी के लिए प्रतिस्पर्धा अधिक होती है और पड़ो की वृद्धि प्रभावित होती है परन्तु जैसे-जैसे वृक्ष बड़े होते जाते है और जड़े गहराई तक जाती है तब पेड़ो की वृद्धि पर घास का प्रभाव नहीं होता है। इसलिए स्थापना वर्ष में पेड़ो के तने से 1 मीटर की परिधि ा की घास निकाल देनी चाहिए।

वन चरागाह पद्धति की देखभाल

वन चरागाह लगाने के बाद अधिक उत्पादन के लिए उचित देखभाल करना अति आवश्यक है। वन चरागाह पद्धति का विकास वैसे तो बरसात के महिनों में ही किया जाता है लेकिन रोपे गए पौधों के लिए प्रथम तीन महिनों तक अधिक सावधानी बरतनी चाहिए। वर्षा कम होने पर पर्याप्त नमी बनाए रखने के लिए ऊपरी मृदा की गुड़ाई कर देनी चाहिए या कूड़े करकट द्वारा पौधे के आस-पास बिछावन कर देना चाहिए, जिससे भूमि से वाष्पीकरण रोका जा सकता है। वन चरागाह के स्थापना वर्ष मे पशुओं की चराई पर प्रतिबन्ध रखना चाहिए और जब घास बढ़ जाए तो काटकर प्रयोग करना चाहिए। वर्ष में कम से कम एक बार अवांछित झाडियों एवं खरपतवारो को साफ करना चाहिए ताकि ये वन चरागाह की गुणवत्ता को खराब न कर सके तथा नमी एवं पोषक तत्वों का ह्रास भी न हो। पर्याप्त नमी होने पर एक बार आवश्यकतानुसार उर्वरको का प्रयोग करना चाहिए। बहुवर्षीय घासों की लगातार चराई के कुछ वर्षो बाद घास सूखने लगती हैं जिससे घास का फूटना कम हो जाता है। इसलिए पुराने अवशेष (स्टेबल्स) को हटाकर, घास की बुआई दुबारा कर देनी चाहिए।

वन चरागाह में चराई एवं कटाई प्रबन्ध

वन चरागाह का उपयोग इस प्रकार करना चाहिए कि चरागाह की उत्पादकता लम्बे समय तक बनी रहे। वृक्षों एवं झाड़ियों की आवश्यकतानुसार कटाई-छंटाई करें। घास लगने के प्रथम वर्ष पशुओं से चराई नहीं कराएं और जहाँ पर पशुओं द्वारा चराई नहीं करानी हो तो घास को 50 प्रतिशत फूल आने की अवस्था मे काटकर पशुओं को हरी घास खिला सकते हैं अथवा सूखा कर 'हे' बनाकर जब हरी घास उपलब्ध नहीं हो तो पशुओं को खिलाया जा सकता है। अधिक चराई होने से बोई गई घासें जल्दी खत्म हो जाती है और इनकी जगह ऐसे खरपतवार आ जाते हैं जिनको पशु नहीं खाते। घास की चराई या कटाई हर साल कराएं। इससे घास अच्छी फूटती है और घास का उत्पादन बढ़ता है।

अधिक चारा प्राप्त करने एवं चरागाह को पूर्ण विकसित रखने के लिए चक्रवात चराई करानी चाहिए। लगातार चराई पद्धति में पशुओं को चराने से चरागाह के किसी भी भाग को विश्राम नहीं मिलता तथा घास को वृद्धि का समय नहीं मिलता है इससे चरागाह जल्दी समाप्त हो जाते हैं। परिवर्तित चराई पद्धति में चरागाह को चार बराबर भागों में बाँट देते हैं। पहले एक भाग में पशुओं को चराते है तथा इस भाग में

चारे की उपलब्धता कम होने पर अगले भाग मे पशुओं को चराई के लिए प्रवेश देना चाहिए। इस तरह चारों भागों की पूर्ण चराई करनी चाहिए, जिससे प्रत्येक भाग को विश्राम मिल जाता है और घास की वृद्धि के लिए भी समय मिल जाता है। चरागाह के कुछ हिस्से को बीज उत्पादन के लिए रखना चाहिए। वन चरागाह पद्धति में जब उन्नत घास, जैसे अंजन या सेवण घास को दलहनी फसल के साथ मिश्रित करके बुआई करते हैं तो प्रति हेक्टर 1-2 गायें या 6-8 भेड़ों या बकरियों के लिए पर्याप्त चारा मिलता है।

शुष्क क्षेत्र में सर्दी तथा गर्मी की ऋतु में जब हरा चारा उपलब्ध नहीं होता है तब वन चरागाह पद्धति में लगे वृक्षों की कटाई छंगाई करके प्राप्त पत्तियों को हरे चारे के रूप मे उपयोग किया जा सकता है। इन वृक्षों की मुलायम टहनियों, फूलों, फलियों एवं पत्तियों को भी चारे के रूप मे प्रयोग लिया जा सकता है। कुछ पौधों की फलियाँ उसकी पत्तियों से अधिक स्वादिष्ट होती हैं। चारा वृक्षों की कटाई तब करें जब वृक्ष पूर्ण रूप से विकसित हो जाएं। 'हेज' के रूप मे लगाई गई झाड़ियों को 2-3 मीटर ऊपर से काटने से अधिक चारा मिलता है। जबकि चारा वृक्षों की कटाई करते समय इस बात का ध्यान रहे कि 2-3 सेमी से अधिक मोटाई की शाखाओं को न काटें तथा वृक्ष के एक तिहाई हिस्से को छोड़ कर कटाई-छंगाई करें जिससे वृक्ष की वृद्धि प्रभावित न हो। इस प्रकार वन चरागाह पद्धति से वर्ष भर चारे की उपलब्धता को बनाये रखने में मदद मिलती है।

❑❑❑

पशुओं को वर्ष भर हरा चारा कैसे मिले ?

शीला चौधरी

सह आचार्य, स्नातकोत्तर शिक्षा व पशुधन स्वास्थ्य एवं उत्पादन अनुसंधान केन्द्र, जयपुर

राजस्थान पशु चिकित्सा एवं पशु विज्ञान विश्वविद्यालय, बीकानेर

पशुधन के विकास हेतु उत्तम प्रजनन के साथ-साथ उत्पादन क्षमता का भी विशेष महत्व है। जनजातीय क्षेत्रों में यह महत्व और भी बढ़ जाता है क्योंकि पर्याप्त जानकारी के अभाव में किसान बिना योजना के फसलों की बुआई कर देता है जिससे उसे जब जरूरत नहीं हो तब आवश्यकता से अधिक एवं जरूरत के वक्त पर्याप्त मात्रा में हरा चारा उपलब्ध नहीं होने से आर्थिक नुकसान उठाना पड़ता है। कई किसान अच्छी प्रजाति के दुधारू पशु तो खरीद लाते है परंतु उनकी पोषण विधि ठीक न होने के कारण पशु पालन से लाभ नहीं लेकर हानि उठा रहे हैं। इस कारणों से अन्य किसान भी पशुपालन अपनाने से हिचक रहे हैं। अतः उन्नत नस्ल के दुधारू पशु लाने से पूर्व उनकी खिलाई-पिलाई कैसे की जाए ? यह जानना जरूरी है क्योंकि पशु पालन खेती के साथ-साथ बहुत उपयोगी व्यापार है, इसमें दोहरा लाभ किसान को मिलता है। दूधारू पशु एक तरफ तो दूध का उत्पादन करते हैं दूसरी तरफ पशुओं से प्राप्त गोबर से देशी खाद खेतों में डालने के लिए प्राप्त करते हैं। पशु धन की यह उत्पादन क्षमता हरे चारे पर निर्भर करती है। पशुओं की वृद्धि एवं उत्पादन क्षमता बनाए रखने के लिए उन्हें वर्षभर हरा चारा मिलना चाहिए। अतः पशुओं की उत्पादन क्षमता बढ़ाने के लिए पशुओं को हरा चारा जैसे जिरका, बरसीम, चोला, जई, बाजरा आदि जितना संभव हो सके, खिलाना चाहिए। हरा चारा पौष्टिकता में उत्तम माना जाता है एवं इसे खिलाने से दाने की बचत होती है यदि हरा चारा ज्यादा उपलब्ध है तो प्रति 10 किलो फलीदार हरे चारे पर एक किलो दाने की मात्रा कम की जा सकती है और यदि हरा चारा कम पड़ता है तो 1 किलो दाने की मात्रा बढ़ाई जा सकती है। इस प्रकार कम खर्च पर पशुओं की उत्पादकता बनाए रखने में हरे चारे का विशेष महत्व है।

अधिकांशतः पशुपालक एवं किसान अपने पशुओं को सूखा भूसा, कडबी आदि खिलाते हैं जिसमें पोषक तत्व बहुत कम होते हैं। पशुओं को पौष्टिक आहार खिलाने का मतलब है कि पशुओं के भोजन में वो सभी तत्व एक निश्चित अनुपात और मात्रा में होने चाहिए। जो कि पशु को अपने शरीर की रक्षा और उनसे होने वाले उत्पादन के लिए आवश्यक हो। इसमें मुख्य रूप से प्रोटीन, कार्बोहाइड्रेट, वसा व खनिज लवण के तत्व पाए जाते हैं, हरे चारे में लगभग ये सभी तत्व पशुओं को मिल जाते हैं तथा जो थोड़ी बहुत कमी होती है, वह संतुलित आहार के माध्यम से पूरी हो जाती है। हरा चारा मुलायम एवं स्वादिष्ट होता है जिसे पशु बड़े चाव से खाता है। हरा चारा विशेषकर दलहनी, हरे चारे में प्रोटीन, कैल्शियम, फॉस्फोरस आदि पर्याप्त मात्रा में होते हैं। हरे चारे में विटामिन ए की प्रचुर मात्रा होती है जो पशुओं को

स्वस्थ रखने एवं संक्रामक रोगों से बचाने के लिए महत्वपूर्ण है। विटामिन ए की कमी पशुओं में बांझपन एवं गर्भापात होने का मुख्य कारण है। इस समस्या के निवारण के लिए भी पशुपालक अपने खेत पर वर्षभर हरा चारा उत्पादित कर पशु को खिला सकता है और यह पशुपालक को सस्ता भी पड़ेगा।

हरा चारा पूरे वर्ष पशुओं को उपलब्ध हो सके, इसके लिए पशु पालकों को चाहिए कि वे अपने खेत में एक सफल वैज्ञानिक फसल चक्र अपनाएं और हरे चारे का उत्पादन करें। लेकिन यह सुविधा सिर्फ सींचित क्षेत्रों में ही प्राप्त की जा सकती है। जिन स्थानों पर सिंचाई के साधन नहीं है एवं वर्षा पर ही निर्भर रहना पड़ता है, ऐसी अवस्था में हरे चारे को छाया में सूखाया या साइलेज बनाया जा सकता है और पशुओं के लिए पौष्टिक हरे चारे का साल भर के लिए प्रबंध किया जा सकता है। वैज्ञानिक तरीके से चारा फसल चक्र के द्वारा यदि पशुपालक हरे चारे का उत्पादन करें तो सींचित क्षेत्र में वर्ष भर हरा चारा पशुओं के लिए उपलब्ध हो सकता है और यह पशुपालक को सस्ता भी पड़ता है। हरा चारा मुख्यतः तीन प्रकार का होता है।

1. दलहनी हरा चारा-यह अत्यंत पौष्टिक होता है–बरसीम रिजका लोबिया

2. अदलहनी हरा चारा - यह दलहनी हरे चारे से कम पौष्टिक होता है - मक्का, ज्वार, बाजरा, एम.पी.चरी.

3. घासें-इनकी पौष्टिकता अत्यंत कम होती है।

हरा चारा प्राप्त करने हेतु फसल चक्र

1. मार्च माह में

ज्वार, मक्का, काऊपी, ग्वार, चोला, बाजरा आदि की बुआई करने से मई एवं जून के माह में हरा चारा पशुपालक के पशुओं के लिए उपलब्ध होगा।

2. मई माह में

ज्वार, मक्का, काऊपी, दूब, घास की बुआई से जुलाई एवं अगस्त माह में हरा चारा उपलब्ध होगा।

3. जुलाई माह में

ज्वार, मक्का, काऊपी, दूब घास की बुआई से सितम्बर एवं अक्टूबर माह में हरा चारा उपलब्ध होगा।

4. सितम्बर माह में

जई, रिजका, बरसीम की बुआई करने पर नवम्बर एवं दिसम्बर में हरा चारा उपलब्ध होगा।

5. अक्टूबर माह में

बरसीम, जई एवं रिजका की बुआई करने पर दिसम्बर से मार्च तक हरा चारा उपलबध होगा।

6. **नवम्बर माह में**

रिजका, बरसीम एवं जई की बुआई से जनवरी से अप्रैल माह के बीच हरा चारा उपलब्ध होगा।

पौष्टिक हरा चारा दुग्ध उत्पादन एवं उत्पादकता में वृद्धि का सुगम उपाय है। पशुओं को पौष्टिक चारा खिलाने से जहां अधिक दुग्ध उत्पादन होगा वहीं पशुपालकों की स्थिति सुदृढ़ होगी। इस प्रकार पशुपालक उन्नत हरा चारा उगाकर पशुओं को अधिकतम हरा चारा खिला सकता है। हरे चारे के खाने से कम से कम खर्च में अधिकाधिक पोषक तत्व प्राप्त होते हैं चूंकि वर्षभर तो हरा उगता नहीं अतः इसकी उपलब्धता के समय पर संरक्षण करना अत्यंत आवश्यक है।

हरा चारा संरक्षण की सर्वोत्तम विधि है। साइलेज बनाना, साइलेज को आमतौर पर चारा का 'आचार' कहा जाता है। साइलेज हरे चारे के संरक्षण की एक विधि है जिसमें हरे चारे का भण्डारण इस प्रकार किया जाता है कि चारा मुलायम, पौष्टिक एवं हरे चारे के समान ही नमी बनाए रखता है। साइलेज बनाने के लिए हरा चारा जिसमें मांड एवं शर्करा की मात्रा अधिक होती है। सबसे ज्यादा उपयुक्त रहता है। इसलिए मक्का, ज्वार, बाजरा आदि साइलेज बनाने के लिए उपयुक्त है। पौष्टिक साइलेज बनाने के लिए फसल को पकने से पहले काट लेना चाहिए।

साइलेज बनाने के स्थान को साइलो कहते हैं। जमीन के नीचे साइलो बनाना आसान एवं सस्ता होता है। इसमें पशुपालक हरे चारे की उपलब्धता के अनुसार खड्डा खोदकर साइलेज बनाकर हरा चारा प्राप्त कर सकता है। साइलेज बनाने के लिए पक्का व कच्चा दोनों ही प्रकार के गड्डे उपयोग में ले सकते हैं। यदि कच्चा गड्डा उपयोग में लेना हो तो उसकी दीवारों पर, तले पर गोबर में बी.एच.सी. पाउडर मिलाकर लीप देना चाहिए। अब कटे हुए हरे चारे को गड्डे में भरकर इसे अच्छी तरह दबाना चाहिए जिससे अन्दर की वायु बाहर निकल जाए। चारे की प्रत्येक 1.5 फीट तह जमने के बाद बराबर करना चाहिए। साइलो जब चारे से पूर्ण रूप से भर जाए तब इसे दूबारा अच्छी तरह दबाकर पहले सूखी घास या भूसे से ढकते हैं, इसके बाद मिट्टी एवं गोबर का लेप करके इसे बंद कर दिया जाता है। करीब 2-3 महीनों में साइलेज बनकर तैयार हो जाती है, इसके बाद इसे कभी भी उपयोग में लाया जा सकता है। जब भी साइलो खोलें तब मिट्टी एवं ऊपर का कुछ भाग हटा देना चाहिए तथा पशुओं के लिए आवश्यक साइलेज की मात्रा ही निकालनी चाहिए। चारा निकालने के बाद सूखी घास से साइलो को पुनः ढक देना चाहिए। साइलेज किस किस्म का बना है। यह उसके रंग से पता चल जाता है। यदि साइलेज पीलापन लिए हुए हरे रंग का होता है तो साइलेज अच्छा बना है। यदि साइलेज का रंग गहरा भूरा बना है तो उसमें नमी की कमी रही है। साइलेज अगर गहरा हरा व कालापन लिए है तो उसमें नमी अधिक रही है।

इस प्रकार पशुपालक वर्ष भर हरा चारा प्राप्त करने के लिए फसल चक्र व साइलेज बनाने की विधि को अपना सकते हैं। इससे पशु निश्चित ही स्वस्थ रहेंगे और दुग्ध उत्पादन भी अधिक होगा।

❑❑❑

सूखे चारे को लाभदायक बनाना

शीला चौधरी

सह आचार्य, स्नातकोत्तर शिक्षा व पशुधन स्वास्थ्य एवं उत्पादन अनुसंधान केन्द्र, जयपुर

राजस्थान पशु चिकित्सा एवं पशु विज्ञान विश्वविद्यालय, बीकानेर

पशु पोषण की छोटी-छोटी जानकारियों से एक आम पशुपालक न केवल अपने पशु को पाल सकता है बल्कि उससे उचित उत्पादन भी ले सकता है जैसे पशुओं के लिए हरा चारा बहुत आवश्यक है लेकिन संसार में बहुत कम ऐसे देश हैं जिनमें वर्षभर जलवायु ऐसी रहती है, जिससे हरा चारा पैदा किया जा सकता है। अच्छे दूध उत्पादन के लिए पशुओं को हरा एवं रसीला चारा देना बहुत आवश्यक है। जो पशु पालक अपने जानवरों को हरा चारा खिलाने में असमर्थ रहते हैं अथवा अकाल के समय वे अपने पशुओं को यूरिया उपचारित चारा खिलाकर प्रोटीन की आवश्यकता पूरी कर सकते हैं।

पशु की पाचन क्रिया को बनाये रखने के लिए उसे जो भी घास खिलाया जाता है, उसमें कम से कम तीन प्रतिशत प्रोटीन की मात्रा होना आवश्यक है क्योंकि जिस घास व दाने में तीन प्रतिशत से कम प्रोटीन पाई जाती है उसको पचाने में पशु असमर्थ रहकर तरह-तरह की बीमारियों से पीड़ित हो जाता है।

यूरिया से चारा उपचारित करना

100 किलोग्राम चारे को पक्के फर्श या प्लास्टिक शीट पर तीन मीटर घेरे में फैला दें। दो किलो यूरिया, 1 किलो नमक व 1 किलो खनिज मिश्रण को 40 लीटर पानी में अच्छी तरह घोल लें। यूरिया घोल को पानी देने वाले झारे से फैलाए गए चारे पर समान रूप से छिड़के और साथ ही चारे को ऊपर नीचे करते रहे। उपचारित चारे का ढेर बना लें। दूसरे प्लास्टिक की शीट से उसे ढककर चारों ओर से मिट्टी या गोबर का लेप कर दें ताकि उसमें हवा न जा सके। दो तीन सप्ताह बाद एक तरफ से चारे को निकाले। पशु को खिलाने से पहले चारे को थोड़ी देर हवा में खुला छोड़ दें। एक पशु को तीन-चार किलो प्रतिदिन खिलाने से हरे चारे के अभाव की पूर्ति होती है। उपचारित चारे को गलत तरीके से खिलाने पर पशु को आफरा आ जाता है और सांस लेने में तकलीफ होती है। ऐसे में बड़े पशु को 600-700 मिली लीटर व छोटे पशु को 100-200 मिली लीटर सिरका पिलाने से तुरंत लाभ मिलता है।

यूरिया- गुड़ के घोल से चारा उपचारित करना

100 किलोग्राम चारे को लगभग 3 मीटर के घेरे में फैला लें। फिर एक टब में 40 लीटर पानी लेकर सबसे पहले उसमें 10 किलो गुड़ को घोल लें। इसी पानी में 2 किलो यूरिया, 1 किलो नमक व 1 किलो खनिज मिश्रण को भी डालकर अच्छी तरह घोल बना लें। इस घोल को झारे से फैलाए हुए चारे पर थोड़ा-थोड़ा छिड़के व चारे को ऊपर-नीचे करके अच्छी तरह मिला लें और हवा में थोड़ा सुखा दें। सुखाने के बाद चारे का ढेर बना लें। पशुओं को रूचि अनुसार थोड़ा-थोड़ा खिलाएं। चार-पांच दिन पश्चात् भरपेट खिलाएं। छः माह से कम उम्र के पशु को उपचारित चारा नहीं खिलाएं। ❑❑❑

पशु पोषण की नवीनतम जानकारियाँ

निर्मला सैनी[1] एवं नितीन वसंतराव पाटिल[2]

[1]वरिष्ठ वैज्ञानिक, [2]निदेशक

राष्ट्रीय उष्ट्र अनुसंधान केन्द्र, बीकानेर

कृषि एवम् पशुपालन आय ही पशुपालकों के जीविकोपार्जन का मुख्य स्त्रोत है। परन्तु पोषण संबंधी जानकारी के अभाव में पशुपालको को प्रति पशु वांछित उत्पादन प्राप्त नहीं होता। साथ ही लागत खर्चे में बढोतरी हो जाती है।

मनुष्य की भांति पशुओ को भी उतम स्वास्थ्य, प्रजनन एवम उत्पादन हेतु प्रोटीन, ऊर्जा, कार्बोहाइड्रेट विटामिन एवम खनिज लवणों की आवश्यकता होती है। हमारे देश में अधिकांश पशुधन सूखे चारे/भूसे पर निर्वाह करता है। इस चारे से पशु का पेट तो भर जाता है परन्तु आवश्यक पोषक तत्वों की पूर्ति नहीं हो पाती क्योंकि भूसे में प्रोटीन, ऊर्जा, एवम खनिज लवण बहुत कम मात्रा होते है। अतः भूसे में हरा चारा/दाना मिलाकर अथवा नवीनतम तकनीकों का उपयोग कर सुधार किया जा सकता है। किसी एक खाद पदार्थ में सभी पोषक तत्वों का उचित मात्रा में मिलना संभव नहीं है। इसलिए संतुलित आहार के लिए एक से अधिक पदार्थ को मिलाया जाता है। पशुपालक थोड़े से ज्ञान से संतुलित आहार घर पर बना सकते है। संतुलित आहार का मतलब है कि समस्त आवश्यक पोषक तत्व उचित मात्रा एवम् अनुपात में विद्यमान हो किसी एक की कमी से पशु के उत्पादन, प्रजनन एवम वृद्धि पर विपरीत प्रभाव पड़ता है। संतुलित आहार में ऊर्जा स्त्रोत हेतु मोटा अनाज, दाना, प्रोटीन स्त्रोत हेतु खल, एवम पूरक उप पदार्थ के रूप मे चोकर, चापड़ को बाजार में उपलब्धता एवम् भाव के अनुसार मिलाया जाता है।

कुल मात्रा-100 भाग

ऊर्जा स्त्रोत	मोटा अनाज/दाना (मक्का, जौ, ज्वार, बाजरा)	30-40 भाग
प्रोटीन स्त्रोत	खल (मूंगफली बिनोला, तिल और सरसों)	30-40 भाग
पूरक उप पदार्थ	चोकर, चापड, दल चुरी	30-40 भाग
विटामिन और खनिज लवण		2 भाग
नमक		1 भाग

सामान्यतः पशुपालक दुधारु पशुओं को केवल बिनोला खल देते है। यह उचित नहीं है। खल से प्रोटीन की पूर्ति होती है। प्रोटीन के पूर्ण पाचन हेतु उपयुक्त ऊर्जा का होना आवश्यक होता है। इसलिए खल के साथ समान मात्रा में अनाज देना लाभकारी रहता है। इसी तरह तुड़ी के साथ थोडा सा हरा चारा (3:1) एवम् दाना मिलाने से तुड़ी की पाचकता एवम गुणवत्ता को बढ़ाया जा सकता है। तुड़ी की गुणवत्ता को बढ़ने के लिए नवीनतम तकनीकियाँ निम्नलिखित हैं–

यूरिया तकनीक द्वारा भी चारे भूसे में प्रोटीन मात्रा में 2-3 गुणा व पाचकता में 4 प्रतिशत की बढ़ोतरी की जा सकती है। एक क्विंटल चारे के लिये 4 किलो यूरिया 40 लीटर पानी के खोल में एकसार मिलाएं। तीन सप्ताह बाद हवा युक्त अवस्था मे रखने के बाद पशु की धीरे-धीरे खिलाना शुरू करें। इससे पशु के हरे चारे की आवश्यकता पूरी हो जाती है।

यूरिया शीरा तकनीक के लिए 1 क्विंटल चारे को 2 किलो यूरिया, 10 किलो मोलासिस एवम् 10 लीटर पानी से उपचारीत किया जा सकता है। एकसार मिलाना अति आवश्यक है। यूरिया शीरा उपचारित चारा सुखाने के बाद पशु को खिलाया जा सकता है।

संपूर्ण पशु आहार तकनीक - इस नवीनतम तकनीक चारा एवम् दाना को पशु की पोषण आवश्यकता के अनुसार मिलाया जाता है। चारा और दाना जिसे साधारणतया पशु खाना पसंद नहीं करते परन्तु सस्ता एवम स्थानीय स्तर पर उपलब्ध होता है उसको मिलाकर आसानी से खिला सकते है। उम्र, उत्पादन एवम वृद्धि के लिए आवश्यकतानुसार विभिन्न अनुपात में चारा दाना मिलाकर संतुलित आहार तैयार किया जा सकता है जो पशु की सभी पोषक आवश्यकता को पूर्ण कर सकता है। इसे कई प्रकार से बनाया जा सकता है।

1. **मैश (पीसा हुआ) तकनीक** :- सभी अवयवों को 8 मि मी कि छलनी युक्त ग्राइनडर द्वारा पीसा जाता है। उसके पश्चात सभी अवयव मिक्सचर में लगे होपर में डाला जाता है। शीरा, खनिज लवण, नमक, विटामिन के साथ सभी को 10 मिनट तक घुमाया जाता है।

2. **पैलेटिंग तकनीक**- पेलेटिंग हेतु तैयार मैश को पेलेट मशीन में डाला जाता है। इस तरह 8-10 मि. मी. के पेलेट इस मशीन की सहायता से बन जाते है। इसमें संपूर्ण एवं पूरक आहार के पेलेट भी बनाये जा सकते है।

3. **ईंट तकनीक**-संपूर्ण आहार इट तकनीक में मिश्रण एवम् लवण को चारे के साथ मिक्सचर द्वारा समानरूप में मिलाया जाता है। इसके पश्चात् हाइड्रोलिक दबाव के द्वारा मशीन माध्यम से बड़ी ईंट का रूप दे दिया जाता है। इस तरह तैयार पशु आहार को आसानी से संग्रहण किया जा सकता है तथा अकाल एवम् सुखे की स्थिति में सरलता से दूर दराज के क्षेत्र मे भेजा जा सकता है। इस तरह के तैयार संपूर्ण आहार से रुमन का वातावरण एक सा बना रहता है। जिससे जीवाणु किण्वन अधिक होता है। अतः पाचन अच्छा होता है। जो उत्पादन को बढ़ाता है।

यू तो संतुलित आहार (मैश, ईट, पेलेट आहार) प्रत्येक पशु की आवश्यकता है परन्तु ब्यांत पूर्व

एवम् बाद, गर्भावस्था एवम् सक्रिय वृद्धि काल के दौरान विशेष पोषण एवम् देखभाल महत्वपूर्ण होता है तथा इसी पर पशु पालकों का लाभ निर्भर करता है। विशेष पोषण एवम् देखभाल के अभाव में पशु बीमार हो जाता है। दुग्ध उत्पादन कम होने से पशु पालकों को अत्यधिक हानि होती है।

ब्यांत प्रक्रिया एवम् ब्यांत बाद दुग्ध उत्पादन शुरू होने के बीच अवधि में घटित शारीरिक बदलाव, हारमोन निर्माण एवम् पोषक तत्वों की अत्याधिक मांग एवम् तनाव के कारण नवजात दुधारू ऊँटनियों की प्रतिरोधक क्षमता कम हो जाती है। अतः इस दौरान पोषण एवम् उपापचयी संबंधी अनेक बिमारियां जैसे मिल्क फीवर, किटोसिस, रूमेन अम्लता (ऐसीडोसिस),अपच, वसा लिवर सिन्ड्रोम, लंगड़ापन, थनैला, जर न गिरना, बच्चेदानी में संक्रमण एवम् बांझपन के होने की संभावना बढ़ जाती है। इस समय पशु को उत्पादन मांग के अनुसार पोषक तत्वों की पूर्ति के लिए संतुलित एवं पूरक आहार अति आवश्यक है। ताकि उत्पादन को बनाया रखा जा सके।

पशु पालाकों को पोषण संबंधित कुछ महत्वपूर्ण सुझाव

1. पशु पालक ब्यांत के तुरंत बाद पशु को एक साथ अत्यधिक मात्रा में अनाज देते हैं। अधिक वसीय अम्ल अवशोषण के कारण पशु में प्रायः एसीडिटी और अपच की समस्या उत्पन्न हो जाती है। पशु खाना बंद कर देता है। जुगाली नहीं करता। अतः आहार में दाने की मात्रा धीरे-धीरे बढ़ाई जानी चाहिए। पशु पालक हमेशा ध्यान रखे कि आहार में बदलाव अचानक न हो।
2. ब्यांत पूर्व चारा खाने की क्षमता 11-13 किलो प्रतिदिन से 8-9 किलो प्रतिदिन तक रह जाती हैं। परन्तु उत्पादन के कारण आहार की मांग बढ़ जाती है। इसीलिए इस समय पोषक तत्वों से भरपूर आहार ही पशु को खिलाये।
3. अधिकतर पशुपालक ब्यांत के तुरंत पूर्व बाद पशु को घी-तेल पिलाते हैं। आहारीय वसा का रूमेन में जल अपघटन होने से जैविक किण्वण की प्रक्रिया प्रभावित होती है। वसा फाईबर को चारों तरफ से घेर लेती जिससे चारे का पाचन कम हो जाता है और पशु चारा खाना कम कर देता है।
4. साधारणतया पशु पालक ब्यांत के तुरंत बाद पशु को उच्च प्रोटीन युक्त आहार देते हैं। यह सही नहीं है। पशु आहार में प्रोटीन की अत्यधिक मात्रा ओव्यूलेशन मे देरी एवम् ग्याभिन होने के लिए सर्विस में बढ़ोतरी कर देती है। अतः प्रोटीन एवं ऊर्जा युक्त मात्रा वाला संतुलित आहार ही पशु

को खिलाये ।

5. ब्यांत बाद दूध उत्पादन शुरू होने के कारण शरीर में कैल्शियम संतुलन बिगड़ जाता है। खून में अचानक कैल्शियम की मात्रा कम हो जाती है। इस समय कैल्शियम क्लोराईड, अमोनियम क्लोराईड, मैगनीशियम सल्फेट, कैल्शियम सल्फेट इत्यादि एनायनिक साल्ट खिलाना लाभप्रद रहता है। परन्तु इसे अचानक अधिक मात्रा में ना दे क्योंकि अत्यधिक कैल्शियम की मात्रा पेराथायराइड ग्रन्थि को निष्क्रिय कर देता है। जिससे कैल्शियम की कमी और बढने की संभावना बढ़ जाती है। इसे ब्यांत पूर्व शुरू कर बाद तक नियमित रूप से खिलाए ।

6. इस दौरान रक्त प्लाज्मा से खनिज लवण और विटामिन की मात्रा कम होने से प्रतिरोधक क्षमता कम हो जाती है। अतः आक्सीडेटिव तनाव कम करने के लिए विटामिन ई, सेलेनियम एवम् दूसरे सूक्ष्म पोषक तत्व देना लाभप्रद रहता है।

7. अधिक उत्पादन वाली गायों की प्रोटीन आवश्यकता पूरी करने के लिए उच्च गुणवता वाला प्रोटीन जो कि रूमन में अपघटित न हो । छोटी आंत्र में अवशोषित सीधे होकर दुग्ध उत्पादन हेतु उपलब्ध हो। इसके लिये बायपास प्रोटीन खिलाने से दूध उत्पादन में बढोतरी होती है। बिनौले की खल, सोयाबिन और ऐनीमल वसा में बायपास प्रोटीन अधिक होता है।

8. ब्यांत बाद शरीर में ऊर्जा की कमी हो जाती है। ऐसा आवश्यकता बढ़ने एवम् खाद्य पदार्थों द्वारा ऊर्जा की आपूर्ति कम होने के कारण होता है। शरीर में संचित वसा उपयोग में आती है। इस कारण पशु के शारीरिक भार में कमी आ जाती है। इस समय ऊर्जा की कमी के कारण अंड कोश की वृद्धि कम तथा कार्पस ल्युटियम के कार्य प्रभावित होने से पशु के गर्भाधन की संभावना कम हो जाती है। ऐसी स्थिति में बायपास वसा देकर अधिकतम उत्पादन की मांग को पूरा किया जा सकता है।

9. पशुओ के उतम स्वास्थ्य, प्रजनन एवम् उत्पादन हेतु आहार मे खनिज लवणों तथा विटामिन अवश्य मिलाये। शरीर में खनिज लवणों की आवश्यकता थोड़ी परन्तु लाभ बहुत अधिक होते हैं। नियमित मिनरल मिक्सचर देने से गर्भाधन न होने तथा ताव में न आने की समस्या से छुटकारा मिल जाता है।

10. प्रोटीन की अधिकता, ऊर्जा की कमी, सूक्ष्म खनिज तत्वों की कमी, विटामिन ए, विटामिन ई की कमी तथा ग्लूकोस, यूरिया और वसा अम्ल प्रत्यक्ष और अप्रत्यक्ष रूप से अंड कोश वृद्धि एवं भ्रूण विकास को प्रभावित करते हैं अतः इस तरह के संतुलित आहार द्वारा पोषक तत्वों की कमी अधिकता को कम कर ग्याभिन दर को बढाया जा सकता है।

पशुपालकों को अपने पारंपरिक ज्ञान के साथ में नवीनतम तकनीकियों का उपयोग कर अधिकतम उत्पादन प्राप्त कर सके। इसके लिए उपरोक्त जानकारियों का होना अति आवश्यक है।

लवण-बट्टिका उत्पादन तकनीक

एच. सी. बोहरा[1] एवं एन.वी.पाटिल[2]
[1]प्रधान वैज्ञानिक (से.नि.), केन्द्रीय शुष्क क्षेत्र अनुसंधान संस्थान, जोधपुर
[2]निदेशक, राष्ट्रीय उष्ट्र अनुसंधान केन्द्र, बीकानेर

राजस्थान के कुल भौगोलिक क्षेत्र का लगभग 62 प्रतिशत भू-भाग (12 पश्चिमी जिले) शुष्क मरूस्थलीय क्षेत्र है। शुष्कता एवं न्यून वर्षा के कारण इस क्षेत्र के ग्रामीण कृषको का मुख्य व्यवसाय एवं आय का स्त्रोत कृषि एवं पशु-पालन आधारित कृषि है। सीमित एवं असमय वर्षा के कारण इस क्षेत्र में कृषि उत्पादन प्रभावित होता रहता है। हालांकि इस क्षेत्र में पड़त एवम् चारागाहों का विस्तृत क्षेत्र है, जो कि पशुओं को चराई के लिए उपलब्ध रहता है पर कम वर्षा के कारण जो भी पशु खाद्य उपलब्ध रहता है वह न केवल मात्रा वरन् गुणवत्ता में भी निम्नतर होते है। इस समस्या को उच्च पशु दर और बदत्तर कर देती है। ऐसी अवस्था में पशुओं को न केवल आवश्यकतानुरूप चारा उपलब्ध हो पाता है वरन् इसके निम्न पोषकता के कारण पशुओं में पोषक तत्वों की लगातार कमी बनी रहती है जिससे पशु-उत्पादन प्रभावित होता है।

हालांकि मरू चारागाहों में पाए जाने वाले पशुओं में लगभग सभी मुख्य पोषक घटको की कमी रहती है जिसमें की किण्वीय शर्करा, प्रोटीन, विटामीन ए एवं ई, तथा विभिन्न लवणों की निम्नता मुख्य समस्या है। ऐसा देखा गया है कि पशु-चारे में फास्फोरस की कमी तथा कैल्शियम-फास्फोरस लवणों का उचित अनुपात में न पाये जाने के कारण पशु ''पाइका'' नामक व्याधि से ग्रसित हो जाते हैं। इस अवस्था मे पशु बार-बार जमीन, दीवार, जूते, कपड़े, चमड़ा, मल-मूत्र इत्यादि में मुँह डालता है। हरे चारे की कमी के कारण पशुओं को भूख कम लगती है तथा रात्रि-अन्धता व प्रजनन क्रिया प्रभावित होती है। अतः मरूस्थलीय पशुओं को ऐसी लवण-बट्टिका की आवश्यकता होती है जिसमें सभी लवणो के साथ-साथ विटामीन ए, डी एवम् ई का भी समावेश हो।

प्रकृति में पाये जाने वाले अनेक लवणों में से 16 लवणीय तत्वों को पशुओं के स्वास्थ्य एवं उचित उत्पादन के लिए आवश्यक माना गया है। जिसमें 7 मुख्य (सोडियम, पोटेशियम, क्लोराइड, कैल्शियम) जो कि 0.04 से 1.5 प्रतिशत तथा 9 सूक्ष्म-लवणों (लौह, ताम्र, जस्ता, मैंगनीज, आयोडीन, कोबाल्ट, मोलिबडिनम, सैलिनियम एवम् क्रोमियम) जो मुख्यतः 0.08-0.50 मि. ग्रा. प्रतिशत (केवल लौह तथा जस्ता 10-80 मि. ग्रा. प्रतिशत) मात्रा में पशुओं में पाये जाते है। सोडियम, पोटैशियम तथा क्लोरीन द्रवीय-दाब तथा अम्लीय-क्षारीयता संतुलिन में विशेष उपयोगी है। कैलशियम तथा फास्फोरस हड्डियों एवं दाँतो के निर्माण तथा गंधक, संरचनीय प्रोटीन निर्माण के लिए विशेष आवश्यक है। मैग्निशियम शारीरिक विद्युत-रासायनिक क्रियाओं तथा जैव-रसायनिक क्रियाओं में उत्प्रेरक के साथ-साथ जैव-संरचना का मुख्य अवयव है। लौह तत्व, रक्त में पाये जाने वाले हीमोग्लोबिन का मुख्य घटक है जो कि शरीर में आक्सीजन का वहन करता है। कोबाल्ट विटामिन

बी-12 का मुख्य घटक है, जो कि रक्त कणिकाओं के सुदृढ़ संगठन के लिए अति आवश्यक है तो आयोडिन थाइरोक्सिन नामक हार्मोन का मुख्य घटक है, जिसकी कमी से पशुओ में ''गोइटर'' नामक व्याधि तथा प्रजनन क्रिया प्रभावित होती है।

हालॉकि उपरोक्त वर्णित लवण पशु को भोजन द्वारा उचित मात्रा में उपलब्ध होने चाहिए वरना वह पशु व्याधि-ग्रसित हो जाता है तथा उत्पादन घट जाता है पर इन लवणो की भोजन में प्रचुरता भी पशुओं के लिए लाभ की बजाय हानि पहुचाँ सकती है। जैसे कैल्शियम एवं मोलिबडीनम् की प्रचुरता दूसरे तत्वों के शोषण एवं उपयोग को प्रभावित करती है। इसी प्रकार कैल्शियम एवं फास्फोरस का अनुपात 2:1 से अधिक नहीं होना चाहिये। ताम्र की भोजन में अधिक मात्रा होने पर यह पशु के शरीर मे संचय हो जाता है जिससे पशु ''ताम्र व्याधि'' से ग्रसित हो जाता है। इसी प्रकार सैलिनियम, मॉलिबडिनम, क्रोमियम तथा क्लोरीन की ज्यादा मात्रा भी पशुओं में हानि पहुँचा सकती है।

अतः पशुओं में उनके स्वास्थ्य एवं सुचारू उत्पादन के लिए उपरोक्त वर्णित लवणों को पशु-आहार द्वारा आवश्यक मात्रा तथा उचित अनुपात में देना आवश्यक हैं। दो प्रकार की पशु-लवण बट्टिकाएं बनाने की तकनीक विकसित है। इस प्रकार की बट्टिकाएं मरू-पशुओं के लिए विशेष लाभकारी हो रही है। इनमें आवश्यक लवणों के साथ-साथ विटामिनों का भी उचित मात्रा में समावेश किया गया है। बटिका बनाने की विधि बहुत सरल है। बेरोजगार एवं ग्रामीण-जनों के लिए इनका उत्पादन रोजगार का साधन बन सकता है। इस प्रकार की लवण-बट्टिकाएं ठाण तथा चारागाहों पर निर्भर, दोनो प्रकार के पशुओं के लिए उपयोगी हैं।

दो-प्रकार की लवण-बट्टिकाएं बनाने की विधि विकसीत है। प्रथम प्रकार की बट्टिकाएं बनाने के लिए ''हस्त-दाब'' व दूसरे प्रकार की बटिका, विद्युत अथवा डीजल-इंजन चलित दाब मशीन का उपयोग कर बनाई जा सकती है।

1-सर्व-प्रथम 1.0 किलो पीसा हुआ साधारण नमक (इसके लिए आयोडीन युक्त नमक की आवश्यकता नहीं है, क्योकि आयोडीन, निम्न वर्णित लवण-मिश्रण में विद्यमान रहता है) में 0.5 किलो विटामिन युक्त लवण मिश्रण (यदि लवण-बट्टिका हरे चारे उत्पादित क्षेत्रों के लिए बनानी हो तो विटामिन (ए, डी, ई) युक्त लवण मिश्रण की आवश्यकता नहीं है, पर जिन क्षेत्रों में पशुओं को हरा चारा उपलब्ध नहीं है, उनके लिए इन विटामिनों युक्त लवण-मिश्रण उपयोग में लें। लवण मिश्रण जितना महीन हो उतना उत्तम समझा जाता है तथा इसमें 0.5 किलो मक्की के आटे को अच्छी तरह से मिलाये तथा इन सबको बाद मे लगभग 650 ग्राम गन्ने के सीरे (मौलासेज) के साथ मिलाएं। इस पर 25 ग्राम ग्वार-गोंद उद्योग का निष्क्रिय पाउडर अच्छी तरह से मिलाये, अन्त में हस्त-चालित दाब मशीन द्वारा अच्छी तरह से दबा दें। इसको तेज धूप अथवा सौर-उष्मूक में सूखा दें। इस प्रकार बनाई गई बट्टिका का शुष्क भार लगभग 2.50 किलो होता है। इसको पत्थर अथवा सीमेंट के बने सॉचों में रख कर पशुओं को चटाने के लिए रखा जा सकता है।

2- किलो साधारण नमक, 1 किलो विटामिन युक्त लवण-मिश्रण तथा 1 किलो डोलोमाइट-चूना पाउडर को अच्छी तरह से मिला ले। अलग से 1.0 किलो सीरे में 50 ग्राम यूरीया का 50 मि.ली. जल में बना घोल अच्छी तरह से मिलाएं। इस युरिया-सीरे के घोल में नमक-लवण-डोलोमाइट का मिश्रण अच्छी तरह से

मिलाएं तथा इसी मिश्रण में बाद में 25 ग्राम ग्वार-गोंद उद्योग का उप-उत्पाद को मिलायें। उपरोक्त सब वस्तुओं को अच्छी तरह मिलाने के बाद डीजल अथवा विद्युत-चलित दाब मशीन द्वारा इसकी बट्टिका बना दें। इस प्रकार बनाई गई बट्टिका का शुष्क-भार लगभग 5.0 किलो तथा 1.0 प्रतिशत यूरिया की मात्रा का समावेश होता है जो कि सीरे की कीण्वीय शर्करा की उपस्थिति में पशुओं के रूमन (ओदरी) में विद्यमान लाभकारी सूक्ष्म जीवो द्वारा सूक्ष्म-जीव-प्रोटीन में बदल दिया जाता है जो अन्ततः पशुओं के पाचन नाल मे अवशोषित हो जाता है। लवण-मिश्रण, लवण बट्टिकाओं का मुख्य एवं महत्वपूर्ण घटक है। भारतीय मानक संस्थान ने राष्ट्र व्यापी शोध कर दो प्रकार के लवण-मिश्रण का संघटन सुझाए हैं जो कि तालिका सं. 1 में वर्णित हैं पर मरू क्षेत्र के पशुओं के लिए लवण बट्टिकाएं बनाने के लिए 6,25,000 अन्तराष्ट्रीय इकाई (अ. ई.) विटामिन ए, 6250 अ. ई. विटामिन डी-3, 250 अ. ई. विटामिन ई तथा 1 ग्राम नियासीनेमाइड प्रति किलो ग्राम के हिसाब से लवण मिश्रण में समावेश करना विशेष लाभकारी रहता है।

तालिका संख्या 1. भारतीय मानक संस्थान द्वारा सुझाये गये लवण-मिश्रणों के घटको की मात्रा

क्र. संख्या	घटक	प्रथम प्रकार (%) (साधारण नमक युक्त)	द्वितीय प्रकार (%) (साधारण नमक)
1.	आद्रता	5.0	5.0
2.	साधारण नमक, बिना आयोडीन	22.0	-
3.	कैल्शियम	18.0	23.0
4.	फास्फोरस	9.0	12.0
5.	मैग्नीशियम	5.0	6.5
6.	लौह	0.4	0.5
7.	आयोडिन	0.02	0.026
8.	ताम्र	0.06	0.077
8.	मैंगनीज	0.1	0.12
9.	कोबाल्ट	0.009	0.012
10.	क्लोरिन	0.05	0.07
11.	जस्त	0.3	0.38
12.	गंधक	0.4	0.5
13.	अम्ल-अघुलनीय राख	3.0	2.5

2 किलो लवण-मिश्रण में 1 किलो साधारण नमक मिलाकर, 100 किलो पशु-दानें में मिलाया जा सकता है।

इस प्रकार बनाई गई बट्टिका किसी भी प्रकार के पशु, दुधारू एवं ग्याभिन, विशेषकर गर्भावस्था के अन्तिम महिनों में, पशु के लिए अति लाभकारी होती है। इन लवण-बट्टिकाओं में उपरोक्त वर्णित लवणों एवं विटामिनों का उचित अनुपात मे समावेश किया गया है। अतः इनका उपयोग मरू-पशुओं मे आवश्यक लवणों के साथ-साथ विटामिनों की आपूर्ति करने के लिए उपयोग में लेकर पशुओं में लवणों की कमी एवं इनकी असंतुलता को दूर किया जा सकता है जिससे इनके स्वास्थ्य में सुधार एवं उत्पादन में वृद्धि की जा सकती है।

ऊँटनी के दूध का महत्त्व एवं उपयोग

गोरखमल[1], राघवेन्द्र सिंह[1], देवेन्द्र कुमार[2], चम्पक भकत[1] एवं एन. वी. पाटिल[3]

[1]वरिष्ठ वैज्ञानिक, [2]वैज्ञानिक, [3]निदेशक

राष्ट्रीय उष्ट्र अनुसंधान केन्द्र, बीकानेर

ऊँट साधारणतया शुष्क एवं अर्द्ध शुष्क क्षेत्रों में पाए जाते हैं। अन्य पशुओं की तुलना में ऊँटनी से 14-16 माह तक दूध प्राप्त किया जा सकता है। ऊँटनी से एक दुग्धकाल में करीब 1500 से 2000 लीटर तक दूध प्राप्त किया जा सकता है। ऊँटनी का दूध केवल पोषण की दृष्टि से ही महत्वपूर्ण नहीं है बल्कि उपलब्ध आँकड़ों के अनुसार भारत व अन्य देशों में इसका उपयोग कई बीमारियों में बहुत लाभप्रद पाया गया है। ऊँटनी का दूध पीलिया, यकृत, पेट का अलसर और बवासीर इत्यादि बीमारियों में उपयोगी बताया जाता है। दूध में इन्सुलिन अथवा इन्सुलिन की भाँति की प्रोटीन पाई जाती है जो कि मधुमेह रोगियों के लिए बहुत ही लाभदायक है। ऊँटनी के दूध को विभिन्न प्रकार के क्षय रोगियों में भी उपयोगी पाया गया है। ऊँटनी के दूध का सामान्य तापक्रम पर जीवन आठ घण्टे तक होता है।

ऊँटनी के दूध का रंग सफेद, स्वाद चरका एवं हल्का नमकीन होता है। ऊँटनी के दूध का नस्ल के अनुसार रासायनिक संघटन तालिका 1 में दिया गया है। कच्छी नस्ल की ऊँटनियों में औसतन 4.22 प्रतिशत, बीकानेरी ऊँटनियों में 3.61 प्रतिशत एवं जैसलमेरी ऊँटनियों में 3.37 प्रतिशत प्रोटीन पाई जाती है। औसत वसा की मात्रा सबसे ज्यादा जैसलमेरी में 2.99 प्रतिशत, उसके बाद बीकानेरी में 2.47 प्रतिशत एवं सबसे कम कच्छी ऊँटनियों में 1.95 प्रतिशत होती है। दूध का पी.एच. मान ऊँटनियों में 6.34 से 6.39 तक पाया गया है। दूध में भस्म की मात्रा ऊपर वर्णित नस्लों में लगभग एक समान पाई जाती है। ऊँटनियों में औसतन कुल ठोस पदार्थ एवं वसा रहित ठोस पदार्थ की मात्रा बीकानेर, जैसलमेरी एवं कच्छी में क्रमश : 9.61, 7.14 प्रतिशत, 10.93, 7.94 प्रतिशत एवं 8.92, 6.97 प्रतिशत तक आँकी गई है। इस अध्ययन से यह जानकारी प्राप्त होती है कि ऊँटनी के दूध का संघटन विभिन्न नस्लों में अलग-अलग पाया जाता है।

ऊँटनी के दूध का संघटन ब्यांत की अवस्था पर निर्भर करता है एवं शुरू से लेकर दूध देने की अवधि समाप्त होने तक परिवर्तनशील रहता है। यह परिवर्तन मुख्य रूप से ब्याने के कुछ दिन बाद तक तथा दूध बन्द करने के दौरान अधिक पाए जाते हैं। ब्यांत की अवस्था का दुग्ध वसा, खनिज लवणों, कुल ठोस पदार्थों की मात्रा पर विशेष प्रभाव देखा गया है (तालिका 2)। ऊँटनी में ब्यांत के बाद 12-13 महीनों के दूध में भस्म, वसा एवं कुल ठोस पदार्थ की मात्रा ब्यांत के शुरुआती 2-3 महीनों की अपेक्षा अधिक होती है। विटामिन 'सी' की मात्रा ब्यांत के शुरुआती 2-3 महीनों में अधिक पाई जाती है। ऊँटनी के

दूध में कैल्शियम, फास्फोरस एवं मैग्निशियम की मात्रा क्रमशः 94.06-97.32 मि.ग्रा. प्रतिशत, 41.68-47.14 मि.ग्रा. प्रतिशत व 11.82-13.58 मि.ग्रा. प्रतिशत तक पाई जाती है। दूध में उपस्थित खनिज तत्व ऊर्जा प्रदान नहीं करते हैं परन्तु अन्य कार्यों में यह तत्व परम आवश्यक होते हैं। खनिज तत्व आंतों, अस्थियों, दांतों तथा रक्त के निर्माण एवं अनेक दैहिक कार्यों को चलाने तथा उन्हें नियमित करने के लिए आवश्यक होते हैं। ऊँटनी और गाय के दूध के संघटन का तुलनात्मक अन्तर तालिका 3 में दिया गया है। ऊँटनी के दूध में जल एवं प्रोटीन की मात्रा अधिक एवं वसा एवं कुल ठोस की मात्रा कम होती है।

तालिका 1. **ऊँटनी की विभिन्न नस्लों के दूध का रासायनिक संघटन**

संघटक	नस्लें		
	बीकानेरी	जैसलमेरी	कच्छी
प्रोटीन (%)	3.61	3.37	4.22
केसीन (%)	2.80	2.62	3.29
वसा (%)	2.47	2.99	1.95
पी.एच.	6.36	6.34	6.39
भस्म (%)	0.83	0.81	0.82
कुल ठोस (%)	9.61	10.93	8.92
वसा रहित ठोस (%)	7.14	7.94	6.97

तालिका 2. **दुग्ध संघटन पर ब्यांत की अवस्था का प्रभाव**

संघटक (12-13 महीने)	शुरुआती ब्यांत (2-3 महीने)	समाप्ति ब्यांत (लेट लैक्टेसन)
प्रोटीन (%)	3.73	3.89
केसीन (%)	2.90	3.02
भस्म (%)	0.82	0.85
वसा (%)	2.60	3.20
कुल ठोस (%)	9.85	11.45
सोडियम (मिलीमोल/लीटर)	29.70	35.49
पोटेशियम (मिलीमोल/लीटर)	50.74	71.86
कैल्शियम (मि.ग्रा. %)	94.06	97.32
फास्फोरस (मि.ग्रा. %)	41.68	47.14
मैग्निशियम (मि.ग्रा. %)	11.82	13.58
पी.एच.	6.36	6.58
विटामिन-सी (मि.ग्रा. %)	5.26	4.84

ऊँटनी के दूध में इन्सुलिन की मात्रा लगभग 3 गुणा अधिक होती है। ऊँटनी के दूध में विभिन्न वसीय अम्ल जैसे ब्यूटिरिक, कैप्रोइक, कैप्रिलिक, कैप्रिक, लौरिक, मॉयरिसिटक, मॉयरिसटोलिक, पामिटिक, पामिटौलिक, स्टियरिक, आलिक, लिनोलिइक एवं अरैचीडोनिक अम्ल पाये जाते हैं। जिनकी मात्रा क्रमशः 0. 31-0.75, 0.2-0.6, 0.2-0.3, 0.2-0.4, 1-1.8, 15.9-25.2, 1.7-4.5, 25-29.5, 6.1-19.1, 1.9-11.7, 6. 8-24.9, 0.9-2.0 एव 06-3.4 प्रतिशत भार तक पाई जाती है। ऊँटनी के दूध में लघु श्रंखला वसीय अम्ल (सी 4-सी 12) तुलनात्मक रूप से कम एवं असंतृप्त अम्ल (सी 14-सी 18) अधिक मात्रा में पाए जाते है। इसके दूध में जस्ता, लोहा एवं तांबा की मात्रा 2.0, 1.0 एवं 0.44 मिलीग्राम प्रतिशत तक होती है जो कि गाय के दूध की तुलना में काफी अधिक है। ऊँटनी के दूध में कई प्रकार के रक्षात्मक प्रोटीन लाइसोजाईम, लैक्टोफेरिन, लैक्टोपरऑक्सीडेज एवं पैप्टीडोग्लाइकान पहचान प्रोटीन पाए जाते हैं। रक्षात्मक प्रोटीन दूध की गुणवत्ता को लम्बे समय तक बनाए रखने में सहायक होती है। लाइसोजाईम, लैक्टोफेरिन, लैक्टोपरऑक्सीडेज एवं पैप्टीडोग्लाइकान पहचान प्रोटीन की मात्रा क्रमशः 0.65 मि.ग्रा. प्रतिशत, 2.5 मि.ग्रा. प्रति मिलीलीटर, 2.23 यूनिट प्रति मिलिलीटर एवं 10.7 मि.ग्रा. प्रतिशत पाई गई है। पैप्टीडोग्लाइकान पहचान प्रोटीन गाय के दूध में नहीं पाई जाती है एवं यह प्रोटीन कैंसर मेटास्टेासिस को रोकने में कारगर पाई गई है। ऊँटनी के दूध में मस्तु प्रोटीन्स की मात्रा गाय के दूध से लगभग दुगुनी होती है। दूध में मस्तु प्रोटीन्स की प्रचुरता कैंसर अवरोधी मानी जाती है।

तालिका : 3. **ऊँटनी एवं गाय के दूध का तुलनात्मक संघटन**

संघटक	ऊँटनी	गाय
नमी (%)	90.5	87.5
कुल ठोस (%)	9.5	12.5
वसा (%)	2.5	4.1
लैक्टोज (%)	4.0	4.5
प्रोटीन (%)	3.6	3.2
इन्सुलिन (माइक्रो यूनिट/मि.ली.)	40.5	16.3
लैक्टोफेरिन (मि.ग्रा./मि. ली.)	2.5	0.5
विटामिन-सी (मि.ग्रा. %)	5.3	1.0
लम्बी श्रंखला असंतृप्त वसीय अम्ल	11.6	2.3
जस्ता (मि.ग्रा. %)	2.0	0.35
लोहा (मि.ग्रा.%)	1.0	0.05
तांबा (मि.ग्रा. %)	0.44	0.02
बीटा-कैसीन %)	65	39
कापा-कैसीन (%)	5	14
मस्तु प्रोटीन (%)	0.9	0.4
बीटा लैक्टएलब्युमिन (मि.ग्रा/मि.ली)	3.5	1.2
सामान्य ताप पर जीवन (घण्टे)	8	3

ऊँटनी के दूध में विटामिन 'ए', 'बी' एवं विटामिन 'ई' की मात्रा क्रमशः 10.1-30.0 माइक्रोग्राम प्रतिशत, 13.2-26.0 माइक्रोग्राम प्रतिशत व 19.9-45.5 माइक्रोग्राम प्रतिशत तक पाई जाती है। विटामिन 'सी' की मात्रा 4.84-5.26 मि.ग्रा. प्रतिशत तक होती है। ऊँटनी के दूध में विटामिन 'सी' की अधिक मात्रा दूध को लम्बे समय तक रखने में सहायक है। विटामिन्स की उपस्थिति से दूध के पोषक मान में काफी वृद्धि होती है। इनसे शरीर को न तो ऊर्जा मिलती है और न ही शरीर की रचनात्मक इकाइयों में इनका उपयोग होता है। परन्तु शरीर की सामान्य वृद्धि, उत्तम स्वास्थ्य तथा प्रजनन क्षमता को सुचारू रूप से चलते रहने के लिए इनकी विशेष आवश्यकता होती है।

संक्षेप में कहा जा सकता है कि ऊँटनी के दूध में अति महत्वपूर्ण पोषक तत्वों की उपस्थिति होने के कारण इसका उपयोग करके स्वास्थ्य लाभ प्राप्त किया जा सकता है।

❑❑❑

ऊँटनी के दूध से निर्मित पारम्परिक उत्पाद

गोरखमल[1], देवेन्द्र कुमार[2], चम्पक भकत[1], राघवेन्द्र सिंह[1] एवं एन. वी. पाटिल[3]

[1]वरिष्ठ वैज्ञानिक, [2]वैज्ञानिक, [3]निदेशक

राष्ट्रीय उष्ट्र अनुसंधान केन्द्र, बीकानेर

ऊँटनी के दूध का मूल्य संवर्धन करके इसकी उपयोगिता को बढ़ाया जा सकता है एवं मूल्य संवर्धन से तैयार उत्पादों को लम्बे समय तक रखाव एवं परिवहन करने में आसानी होती है। राजस्थान, गुजरात एवं हरियाणा में ऊँटनी के दूध को कच्चा, उबालकर या चाय बनाने में उपयोग में लिया जाता है एवं यह राजस्थान की रायका प्रजाति में काफी प्रचलित है। राष्ट्रीय उष्ट्र अनुसंधान केन्द्र, बीकानेर ने ऊँटनी के दूध से कई प्रकार के उत्पाद तैयार किए है जिनमें विभिन्न स्वादयुक्त कुल्फी, सुगन्धित दूध, किण्वित दूध, पनीर, बर्फी, गुलाब जामुन, चाय एवं कॉफी शामिल है। ऊँटनी के दूध से चेहरे पर लगाने के लिए क्रीम भी बनाई है। जहां एक तरफ ऊँटनी के दूध की उपयोगिता सर्वविदित है वहीं राष्ट्रीय उष्ट्र अनुसंधान केन्द्र ने ऊँटनी के दूध को एक आय के स्रोत के रूप में लाने के लिए कदम उठाया है।

ऊँटनी के दुग्ध पदार्थ

ऊँटनी के दूध की चाय एवं कॉफी

ऊँटनी के दूध एवं पानी को अलग-अलग अनुपात में मिलाने के बाद चाय एवं कॉफी को विभिन्न लोगों को पिलाया गया। तुलनात्मक अध्ययन करने के बाद पाया गया कि 1:2 अनुपात में मिश्रित चाय और 1:1 के अनुपात में काफी के लिए ऊँटनी के दूध को उपयोग में लाया जा सकता है।

ऊँटनी के दूध से निर्मित किण्वित दूध (दही), मक्खन एवं घी

ऊँटनी के ताजे दूध को छानने के बाद 15 मिनट तक उबाला एवं फिर ठण्डा करके दूध का तापक्रम 40 डिग्री सेन्टीग्रेड रखा गया। इसमें 3 प्रतिशत जामन प्रयोग किया गया। उपचारित दूध को 30 डिग्री सेन्टीग्रेड पर रखा गया। इस विधि द्वारा 28-30 घण्टों में दही बन जाती है। इस प्रकार से बने दही में जल 90-92 प्रतिशत, प्रोटीन 3.0-4.0 प्रतिशत, वसा 2.97-3.33 प्रतिशत एवं अम्लता 0.6-1.10 प्रतिशत तक पायी गई। इस प्रकार से बने दही को मथने पर मक्खन प्राप्त हुआ। ऊँटनी के एक लीटर दूध से 22-25 ग्राम तक घी प्राप्त किया जा सकता है। ऊँटनी के दूध से बने घी में स्वतन्त्र वसीय अम्ल की मात्रा 2.20-2.30 प्रतिशत एवं नमी 0.5-0.6 प्रतिशत तक पाई गई।

ऊँटनी के दूध का सुगन्धित दूध

ऊँटनी के दूध को छानने के बाद 45 डिग्री सेन्टीग्रेड तक गर्म कर उसमें 0.1 प्रतिशत स्टेबीलाईजर, 6 प्रतिशत चीनी एवं खाद्य रंग डालकर अच्छी तरह घोल लेते हैं। उसके बाद दूध को उबालकर ठण्डा कर लेते है। दूध के ठण्डा होने पर वांछित सुगन्ध (0.6 मिलीलीटर/लीटर) मिलाने के बाद सुगन्धित दूध को 4-6 डिग्री सेन्टीग्रेड पर भण्डारित कर देते है। सुगन्धित दूध में नमी एवं वसा की मात्रा क्रमशः 82-83 प्रतिशत एवं 2-3 प्रतिशत तक होती है।

ऊँटनी के दूध का पनीर

ऊँटनी के दूध को छानने एवं 82-85 डिग्री सेन्टीग्रेड तक 5 मिनट गर्म करने के उपरान्त 70 डिग्री सेन्टीग्रेड तक ठण्डा करते हैं। इसके बाद 0.5-1.0 प्रतिशत सिट्रिक एसिड एवं 0.1-0.2 प्रतिशत तक कैल्शियम क्लोराइड स्कंदन करने के लिए मिलाते हैं। इस प्रकार से एक लीटर दूध से 90-100 ग्राम तक पनीर प्राप्त किया जा सकता है। पनीर में नमी 51.24 प्रतिशत एवं वसा 18.52 प्रतिशत तक पाई गई।

ऊँटनी के दूध से निर्मित कुल्फी

ऊँटनी के दूध में कुल ठोस की मात्रा कम होने के कारण ऊँटनी के दूध को उबालकर लगभग आधा करने के बाद 9-10 प्रतिशत चीनी, 2 प्रतिशत कस्टर्ड पाउडर अच्छी तरह मिलाते हैं एवं उसके बाद 0.025 प्रतिशत केसर, 1-3 प्रतिशत सूखे मेवे एवं 1-2 बूंद वांछित सुगन्ध मिलाते हैं। सभी चीजों को अच्छी तरह मिलाने के बाद कुल्फी कोन में भरकर जमा लेते हैं। इस प्रकार से बनी कुल्फी में नमी 48-50 प्रतिशत एवं वसा 8-9 प्रतिशत तक पाई गई। ऊँटनी के दूध से चॉकलेट कुल्फी बनाने के लिए 5-6 प्रतिशत चॉकलेट एवं शुगर फ्री (चीनी रहित) कुल्फी में चीनी के स्थान पर 1.5 प्रतिशत शुगर फ्री पाउडर डालते हैं।

ऊँटनी के दूध से निर्मित दुग्ध चुर्ण

ऊँटनी के कच्चे, पास्तुरिकृत एवं उबले हुए दूध से दुग्ध चूर्ण बनाया गया। ऊँटनी के दूध से निर्मित दुग्ध चूर्ण सफेद रंग का एवं स्वाद हल्का नमकीन होता है। विभिन्न प्रकार के दुग्ध चूर्ण में जल, प्रोटीन, वसा, भस्म एवं अम्लता क्रमशः 5.60-7.03, 23.22-23.96, 23.12-23.43, 7.28-7.75 एवं 1.87-1.97 तक पाई गई। पास्तुरिकृत एवं उबले हुए दूध का विभिन्न लोगों द्वारा 9 अंकीय हेडोनिक स्केल (अंक 9-अत्यधिक उपयुक्त, 5-सामान्य, 1-अत्यधिक अनुपयुक्त) द्वारा ज्ञानेन्द्रिय परीक्षण किया गया। इसके अनुसार सुवास, रंग, स्वाद एवं स्वीकार्यता का स्कोर क्रमशः 6.75-6.83, 8.00-8.08, 6.67-6.75 एवं 7.21-7.25 मापा गया।

ऊँटनी के दूध से निर्मित मावा

सबसे पहले ऊँटनी के दूध को पूर्ण सावधानीपूर्वक छानकर एक भगोने में डालकर चूल्हे पर गर्म करने के लिए रख देते हैं। शुरूआत में चूल्हे की आँच को तेज रखते हैं ताकि दूध अच्छी तरह उबलता रहे तथा साथ ही दूध को लगातार हिलाते रहते हैं ताकि न तो दूध उफन कर भगोने से बाहर निकले और न ही पैंदे में चिपके। इस प्रकार जैसे-जैसे दूध उबलकर कम होता जाए वैसे-वैसे दूध को पूर्ण सावधानी से हिलाते रहना चाहिए और आँच को भी लगातार कम करते रहना चाहिए जिससे दूध का मावा बनते समय रंग ज्यादा गहरा लाल न हो। अन्तिम समय में जब मावा बनकर तैयार होने वाला हो यानी दूध गाढ़ा हो जाए तब पूर्ण सावधानी रखते हुए दूध को कम आँच पर लगातार हिलाते रहना चाहिए ताकि गाढ़ा दूध भगोने से न चिपके और न ही दूध का स्वाद कड़वा हो। इसके बाद जब दूध पूर्णतः गाढ़ा हो जाए यानी कड़छी कठिनाई से हिलने लग जाए उस समय दूध का मावा बनकर तैयार हो जाता है। इस प्रकार बने मावा को ठण्डा करके फ्रीज में रख देते हैं जिससे ये पूर्णतः सुरक्षित रहे। ऊँटनी के दूध से बने मावे का स्वाद नमकीन होता है। मावा कम चिकनाहट युक्त एवं हल्के भूरे रंग का होता है। एक लीटर ऊँटनी के दूध से 150-200 ग्राम तक मावा बनता है। ऊँटनी के दूध से निर्मित मावे में ठोस की कुल मात्रा 70-75 प्रतिशत, पानी की मात्रा 25-30 प्रतिशत एवं वसा की मात्रा 15-20 प्रतिशत तक होती है।

ऊँटनी के दूध से निर्मित गुलाब जामुन

ऊँटनी के दूध से बने मावे को अच्छी तरह से मुलायम कर देते हैं। मुलायम करने के बाद एक किलो मावे में 100 ग्राम मैदा व 10 ग्राम बड़ी इलाइची दाने मिलाते हैं जिससे गूंथते समय ये सब मिश्रित हो जाएं। साथ ही थोडा-सा देशी घी भी मिलाते हैं जिससे गुलाब जामुन की गोलियाँ बनाते समय मावा हाथ से न चिपके। सम्पूर्ण सामग्री गूंथे हुए आटे के समान हो जाने के बाद इच्छानुसार समान आकार की गोलियाँ बना लेनी चाहिए। तलते समय इस बात का खास ध्यान रखते हैं कि घी ज्यादा उबलता हुआ न हो। सामान्य गर्म होने के बाद घी की कड़ाई को चूल्हे से नीचे उतारकर उसमे मावे की बनाई हुई गोलियां डालनी चाहिए। इसके बाद कड़ाई को पुनः चूल्हे पर रखकर अच्छी तरह पकाते रहना चाहिए साथ ही पकाने की प्रक्रिया के दौरान ध्यान रखना चाहिए कि गुलाब जामुन की गोलियों का रंग सुनहरा रहना चाहिए। इस प्रकार तलने

के पश्चात इन गोलियों को कम गर्म चासनी में सावधानीपूर्वक डाल देते हैं। गुलाब जामुन की गोलियों को तब तक रखना चाहिए जब तक की चासनी से गुलाब जामुन की गोलियां मीठी न हो जाएं। इस प्रकार गुलाब जामुन बनकर तैयार हो जाते हैं। ऊँटनी के दूध से निर्मित गुलाब जामुनों का विभिन्न लोगों द्वारा ज्ञानेन्द्रिय परीक्षण किया गया। इसके अनुसार सुवास, रंग, स्वाद एवं स्वीकार्यता का औसत स्कोर क्रमशः 7.61, 8.28, 7.93 एवं 8.18 मापा गया।

ऊँटनी के दूध से निर्मित बर्फी

बर्फी को ऊँटनी के दूध से प्राप्त मावे से बनाया गया। मावा बर्फी को सामान्य तापक्रम पर 3-4 सप्ताह तक एवं रेफ्रिजरेटर में 3 महीने तक सुरक्षित रखा जा सकता है। बर्फी में जल, प्रोटीन, वसा, भस्म एवं अम्लता क्रमशः 6.01-6.63, 13.70-14.12, 9.22-10.34, 3.88-4.14 एवं 0.52-0.58 प्रतिशत पाई गई। चॉकलेट बर्फी में 10-15 प्रतिशत तक चॉकलेट पाउडर का इस्तेमाल किया जा सकता है। ऊँटनी के दूध से निर्मित बर्फी का ज्ञानेन्द्रिय परीक्षण किया गया। इसके अनुसार सुवास, रंग, स्वाद एवं स्वीकार्यता का औसत स्कोर क्रमशः 7.15, 7.23, 6.85 एवं 7.04 मापा गया।

ऊँटनी के दूध से निर्मित पेड़ा

ऊँटनी के दूध से निर्मित मावा में चीनी पाउडर 3:1 के अनुपात में मिलाया जाता है। इसके उपरान्त इस मिश्रण के अलग-अलग आकार के पेड़े बनाये जाते हैं। ऊँटनी के दूध से निर्मित पेड़ों में जल एवं वसा की मात्रा क्रमशः 6-7 प्रतिशत एवं 10-11 प्रतिशत तक पाई गई।

ऊँटनी के दूध से निर्मित रसगुल्ला

ऊँटनी के ताजे दूध को छानने के पश्चात 5 मिनट तक उबाला एवं फिर 76-80^0 सेल्सियस तक ठण्डा किया। इसमें 70-74^0 सेल्सियस तक गर्म किया 1 प्रतिशत सिट्रिक अम्ल का घोल मिलाया गया। इस प्रकार फटे हुए दूध से मस्तु को अलग कर छैना प्राप्त करते हैं। छैना में 1-2 प्रतिशत मैदा मिलाया जाता है जिससे छैने की गोलियाँ टूटती नहीं है। छैने की गोलियों को 25 प्रतिशत चासनी में 20-25 मिनट तक उबालते हैं। इसके पश्चात रसगुल्लों की गोलियों को 50 प्रतिशत चासनी में डालकर भण्डारित कर लेते हैं। ऊँटनी एवं गाय का दूध 1:1 अनुपात में, ऊँटनी एवं भैंस का दूध 1.5:1, 1:1 अनुपात में उपयोग करने पर अच्छी गुणवता के रसगुल्ले बनाये जा सकते हैं। इस प्रकार से बने रसगुल्लों का ज्ञानेन्द्रिय परीक्षण में सुवास, स्वाद एवं स्वीकार्यता का स्कोर क्रमशः 6.85-7.30, 5.65-7.00 एवं 6.63-7.51 मापा गया। इस प्रकार से निर्मित रसगुल्लों में जल एवं वसा की मात्रा क्रमशः 34.92 एवं 4.90 प्रतिशत तक पाई गई।

उष्ट्र दुग्ध निर्मित उत्पादों की स्वीकार्यता से प्रतीत होता है कि इन्हें गाय व भैंस के दूध से बने उत्पादों की तरह ही उपयोग में लाया जा सकता है। संक्षेप में ऊँटनी के दूध से विभिन्न प्रकार के दुग्ध उत्पाद बनाए जा सकते हैं एवं इनका व्यवसायीकरण करने के बाद ऊँट पालकों को आर्थिक रूप से सुदृढ़ होने में मदद मिलेगी। ❑❑❑

कैसे करें स्वच्छ दूध का उत्पादन ?

चम्पक भकत[1], राघवेन्द्र सिंह[1], गोरखमल[1], समर कुमार घोरूई[2] एवं एन.वी.पाटिल[3]

[1]वरिष्ठ वैज्ञानिक, [2]प्रधान वैज्ञानिक, [3]निदेशक

राष्ट्रीय उष्ट्र अनुसंधान केन्द्र, बीकानेर

पशुघन एक ग्रामीण परिवार का आधार है। प्रत्येक ग्रामीण परिवार में पशुधन पाया जाता है, विशेषकर दुधारू पशु जैसे गाय, भैंस, बकरी आदि। ग्रामीण इलाकों में पशुओं की देखभाल की जिम्मेदारी अधिकतर महिलाओं पर होती हैं। इसलिए यह आवश्यक हैं कि ग्रामीण महिलाओं को स्वच्छ दूध के उत्पादन के विभिन्न पहलुओं की पूरी जानकारी होनी चाहिए। दूध से बने पदार्थ परिवार के स्वास्थ्य के लिए उत्तम हैं। लेकिन दूध स्वच्छ होना चाहिए। स्वच्छ दूध के अन्तर्गत वह दूध आता है जो स्वस्थ पशु से प्राप्त किया गया हो, अच्छे स्वाद का हो और जिसमें कोई गंदगी न हो। इसके अतिरिक्त उसमें बहुत थोड़े ऐसे जीवाणु हों जो कि हानिप्रद न हों।

स्वच्छ दूध के उत्पादन का उद्देश्य

अस्वच्छ दूध शीघ्र ही खराब हो जाता हैं और ऐसे दूध से जो मूल्य प्राप्त होता है वह सामान्यतः उस मूल्य से कम होता है जो अच्छी किस्म के दूध से प्राप्त होता है।

अस्वच्छ दूध के इस्तेमाल से स्वास्थ्य पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ता है। इसलिए दूध जितना स्वच्छ होगा, उतनी ही देर तक वह ताजगी और पौष्टिक अवस्था में रखा जा सकता हैं।

पशु भवन और दोहनशाला की सफाई एवम् स्वच्छता

पशुओं को स्वच्छ रखने में पशु भवन और दोहनशाला का स्वच्छ होना बहुत सहायक होता है। पशु भवन और दोहनशाला की सफाई एवम् स्वच्छता निम्नलिखित प्रकार से की जानी चाहिए:-

1 पशु भवन और दोहनशाला का फर्श पक्का और जलरोधी होना चाहिए, जो सरलता से साफ किया जा सके और जीवाणुरहित किया जा सके।

2 पशु भवन और दोहनशाला में रोशनी तथा हवा के आने-जाने की पर्याप्त व्यवस्था होनी चाहिए।

3 मक्खियों से बचाव के लिए दीवारों पर समय-समय पर सफेदी कराएं। छत की सफाई करना भी न भूलें ।

4 दूध दुहने की वास्तविक क्रिया प्रारम्भ करने से पहले कम से कम एक घण्टे तक पशु को चारा न खिलाएं ।

स्वच्छता एवम स्वस्थ पशुओं के रखरखाव

स्वच्छ दूध के उत्पादन के लिए जो महत्वपूर्ण कदम उठाए जाने चाहिए उनमें से एक हैं। ऐसे स्वस्थ पशुओं को चुनकर रखना चाहिए जो मनुष्य को संचारित करने वाले रोगों से मुक्त हों। तपेदिक और अन्य कई बीमारियॉ हैं जो पशु से दूध के जरिये मनुष्य में पहुॅच सकती हैं। दूध दुहने से पहले सभी गायों की सफाई करें । कोख, थन और पूंछ के चारों ओर के लम्बे बाल कतर के रखें । सफाई के कार्य का सबसे महत्वपूर्ण अंग हैं दुहने से पहले थनों को धो-पोंछकर सुखा लेवें। ग्रामीण लोग दुध की चाय, खीर एवम् अन्य पदार्थ बनाते हैं। कच्चा दूध या दूध को उबाल कर उपयोग में लाते हैं। दूध में वे सभी कारक पाये जाते हैं जो शारीरिक विकास में आवश्यक हैं। दूध उत्पादन पशु की नस्ल, पोपण और दुग्ध कालीन अवस्था पर निर्भर करता हैं। जैसाकि सभी को ज्ञात है कि गाय व भैंस के दूध से क्रीम, मक्खन, घी व दही बनाते हैं।

दूध दुहने वाले किसान की स्वच्छता

दूध दुहने वाले किसान की स्वच्छता निम्नलिखित बिन्दुओं द्वारा की जानी चाहिएः-

1. दूध दुहने वाले किसान के नाखून कटे हुए व साफ हों ।

2. दूध दुहने से पहले हाथों को अच्छी तरह सें धोएं व साफ धुले हुए कपड़े पहने ।

3. कुछ मानव-रोग जो दूध के जरिये फैलते हैं उसे सावधान रहना चाहिए।

सही विधि द्वारा दूध दुहने की क्रिया कैसे करें

सही विधि द्वारा दूध दुहने की क्रिया निम्नलिखित बिन्दुओं द्वारा की जानी चाहिएः-

1. दूध दुहने की सही विधि है पूरे हाथ से और शुष्क हाथ से दुहना ।

2. सभी उंगलियां और हथेली दुहते समय प्रयोग में लाई जानी चाहिए ।

3. अंगूठे को भीतर की ओर मोड़ कर नहीं रखना चाहिए , ऐसा करने से पशुओं के थनों में चोट पहुॅच सकती ।

दूध का भण्डारण कैसे करें ?

दूध का भण्डारण की क्रिया निम्नलिखित बिन्दुओं द्वारा की जानी चाहिएः-

1. एल्यूमिनियम या स्टील के बर्तन दूध के भण्डारण के लिए उचित रहते हैं ।

2. धूल और मक्खियों से बचाव के लिए दूध को ढककर कर रखें ।

3. दूध के बर्तनो को धूप में न रखें ।

4. पुराने दूध को ताजा दूध में न मिलाएं ।

5. जितना संम्भव हो, उपयोग से पहले दूध भरे बर्तन को ठण्डा रखें ।

6. दूध के खाली बर्तनों को साथ-साथ साफ कर देवें ।

7. दूध को काम में लेने से पहले साफ कपड़े से अच्छी तरह छान लें।

दूध की खाद्य महत्ता का अधिकतम उपयोग उस समय होता हैं जब इससे दुग्ध पदार्थ बन सकें। स्वच्छ दूध उत्पादन ग्रामीण किसानों के परिवारों के साथ-साथ प्रत्येक ऐसे परिवार को जो दूध का उपयोग करता है, विभिन्न बीमारियों से बचायेगा और स्वच्छ दूध उत्पादन ग्रामीण परिवारों को आर्थिक पहलू ये भी मजबूत करेगा ।

❑❑❑

अश्व रख-रखाव

राम अवतार लेघा एवं यशपाल

वरिष्ठ वैज्ञानिक

अश्व उत्पादन परिसर, राष्ट्रीय अश्व अनुसंधान केन्द्र, बीकानेर

घोड़ा एक कीमती, चुस्त, ताकतवर एवं होशियार पशु है। इसका उचित रख रखाव इसके व्यवसाय में अधिक फायदा होने के लिए अति आवश्यक है। इसलिए अश्व पालकों को इसके रखरखाव के सम्बंध में निम्नलिखित बिन्दुओं पर ध्यान देना चाहिए।

घोड़े की आदतें एवं स्वभाव

अश्व पालको को अपने अश्वों की आदतों एवं स्वभाव के बारे में समुचित जानकारी होनी चाहिए। इससे इनके रख रखाव के बारे में समुचित जानकारी होनी चाहिए। अगर अश्व पालक अपने अश्वों के स्वभाव एवं आदतों से वाकिफ है तो वह अपने, घोड़ो को आसानी से काबू कर सकता है और विभिन्न कार्य आसानी से करवा सकता है। इससे अश्वों को समुह में रखने एवं खिलाने-पिलाने में भी मदद मिलती है।

अस्तबल की साफ-सफाई

सुबह उठते ही अस्तबल की नियमित सफाई अश्वों को स्वस्थ रखने के लिए अति आवश्यक है। अस्तबल में सुबह और शाम दो बार लीद उठानी चाहिए एवं झाड़ू से सफाई करनी चाहिए। अस्तबल के पक्के फर्श को पानी से अच्छी तरह धोना चाहिए। चारे की खुरलियों से पहले का चारा निकालकर रोजाना सफाई करनी चाहिए ताकि चारे के साथ मिट्टी का मिश्रण ना होने पाए और अश्वों का पेट दर्द होने से काफी हद तक बचाया जा सके। इसी प्रकार पानी की खुरलियों को भी प्रतिदिन साफ करना चाहिए और हर 15 दिन बाद पानी की खुरलियों में चूने की पुताई करनी चाहिए जिससे अश्वों को पानी द्वारा होने वाले संक्रमण से बचाया जा सके।

अश्व आवासों में साफ-सफाई

पक्के फर्श वाले अश्व आवासों में अगर बिछावन का प्रयोग किया जाता है तो सुबह के समय सबसे पहले मूत्र से भीगी बिछावन को फोर्क की सहायता से इकट्ठा करके उसको अश्व आवास से काफी दूर ले जाकर डालें ताकि उसको लीद एवं मूत्र के साथ मिलाकर कम्पोस्ट खाद तैयार करने में काम लिया जा सके । अगर फॉर्म पर किसी प्रकार की फैलने वाली बीमारी का संक्रमण की आशंका हो रही हो तो प्रयोग

में लाई गई बिछावन को दूर स्थल पर जला देनी चाहिए ताकि किसी प्रकार की बीमारी को फैलने से रोका जा सके ।

इसी तरह आवास में पड़ी लीद, बचा हुआ चारा/हे/घास इत्यादि को बेलचे से एकत्रित करके, टब, गाड़ी इत्यादि से परिवहन करके लीद इत्यादि को अश्वशाला से काफी दूर ले जाकर कम्पोस्ट खाद बनाने के लिये काम में ले सकते हैं। लेकिन अगर किसी तरह की फैलने वाली बीमारी का संक्रमण हो तो लीद को दूर ले जाकर जला देनी चाहिए ।पक्के फर्श पर लीद-मूत्र एक बिधावन आदि उठाने के बाद तेज प्रेशर वाले पानी के पाइप से अच्छी तरह से धोना चाहिए और नियमित रूप से फर्श को अप्रभावी करना चाहिए और अश्व को फर्श सूखने तक अन्दर ना लावे । अश्व आवास में सूर्य की धूप सीधी पड़नी चाहिए ताकि आवास सूखा रहे तथा प्राकृतिक रूप से अप्रभावी हो जावे । खुले बाड़ों जहां पर सामान्यतया फर्श कच्ची मिट्टी का बना होता हैं वहां पर लीद एवं चारे इत्यादि को बेलचे से इकट्ठा करके उसको भी अश्व आवास से दूर स्थित जगह पर परिवहन कर देना चाहिये ।लीद इत्यादि उठाने के बाद खुले बाड़ों में झाड़ू से गंदगी को साफ करना चाहिए। समय-समय पर कच्चे फर्श में पड़ने वाले गड्ढों को समतल कर देना चाहिए । कच्चे फर्श वाले आवासों में परजीवी कीड़े एवं बीमारी फैलाने वाले जीवाणुओं आदि को नियोजित करना मुश्किल हो जाता है । इसलिए कच्चे फर्श वाली मिट्टी को करीबन 2 फीट गहराई तक हटाकर नई मिट्टी से साल में भर्ती 1-2 बार करवानी चाहिए ।

फार्म पर किसी तरह के संक्रमण होने पर फर्श पर चूने का छिड़काव किया जा सकता है और साल में 1-2 बार मिट्टी पर गैस फायरिंग की जा सकती है ताकि मिट्टी में उपस्थित बीमारी फैलाने वाले जीवाणुओं को काबू किया जा सके ।

पानी एवं चारे-दाने की खेलियों की सफाई

अश्व आवासों में प्रयोग में आने वाले चारे-दाने एवं पानी की खेलियां/टब इत्यादि की सफाई नियमित रूप से प्रतिदिन बहुत जरूरी है। इससे होने वाली बीमारियों से काफी हद तक बचने में मदद मिलती है।प्रतिदिन सुबह बचे चारे एवं दानों तथा मिट्टी को चारे की खेलियों से निकाल कर साफ करना चाहिए । इसी प्रकार पानी की खेलियों की भी प्रतिदिन सफाई आवश्यक है। पानी की खेलियों में हर एक से दो सप्ताह में चूने की पुताई करनी चाहिए ताकि पानी की खेली में किसी तरह के बीमारी पैदा करने वाले जीवाणु उत्पन्न ना हो ।

अश्व आवासों की साफ-सफाई में ध्यान देने योग्य बातें

- ❑ अश्व आवासों की सफाई नियमित रूप से करें ।
- ❑ लीद, मूत्र, बिछावन तथा बच्चे चारे इत्यादि का परिवहन अश्व आवास से काफी दूर एवं सामान्य रूप से चलने वाली हवाओं के विपरीत दिशा में करे ।

- लीद एवं बचे चारों, विछावन को कपोस्ट/वर्मी कम्पोस्ट बनाने के काम में लिया जा सकता है । लेकिन ध्यान रहे अगर फार्म पर किसी संक्रमण से फैलने वाली बीमारी की संभावना हो तो इसको जलाना ज्यादा उचित रहता है ताकि इसमें उपस्थित जीवाणुओं की वजह से बीमारी फैलने का खतरा ना रहे ।
- अश्व आवास की सफाई शुरू करने से पहले इसमें रहने वाले अश्वों को किसी दूसरे बाड़े या इसके बाहर वाले हिस्से में स्थानान्तरित कर देवे ताकि सफाई करने वाले श्रमिक को अश्व चोट ना पहुंचावे और अश्व की सफाई के समय उठने वाली धूल, मिट्टी इत्यादि से बच सके ।
- पक्के फर्श का ढलान तथा पानी का निकास उचित होना चाहिए ताकि फर्श को ठीक से धोया जा सके ।
- पानी एवं चारे की खेलियों की सफाई नियमित रूप से करे ।
- पानी की खेलियों में समय-समय पर चूने से पुताई करे ।
- जहां तक हो सके सफाई में काम में आने वाले यंत्र, गाड़ी टब इत्यादि अलग अलग बाड़ों के हिसाब से अलग हो तो एक बाड़े से दूसरे बाड़े में किसी तरह का संक्रमण होने की संभावना कम होती है ।
- अश्व आवासों के अन्दर सफाई के बाद आस-पास के रास्तों, सड़क पर बिखरी गंदगी को भी झाड़ू से ठीक तरह साफ करना चाहिए ।
- अंत में सफाई में काम आने वाले सामान, गाड़ी, टब इत्यादि को ठीक से साफ करके निश्चित जगह पर रखना चाहिए और सफाई करने वाले श्रमिकों को भी अपने हाथ-पैर इत्यादि की सफाई ठीक से साबुन लगाकर करनी चाहिए ।

व्यायाम

अश्वों को स्वस्थ बनाये रखने के लिये नियमित रूप से व्यायाम जरूरी है। इससे उनके पैर भी मजबूत होते है और वे स्वस्थ रहते है। तेज दौड़ से पहले थोड़ा चलाकर या घुमा फिरा कर घोड़े को गर्म कर लें। व्यायाम के तुरन्त बाद घोड़े का पसीना सुखाएं, खरहरा करें तथा कुछ आराम के बाद ही पानी व दाना थोड़ी थोड़ी मात्रा में दें। अश्व रख-रखाव के लिए व्यायाम एक अति आवश्यक पहलू है। अश्वों की नियमित व्यायाम का उद्धेश्य उनको स्वस्थ एवं चुस्त दूरस्थ रखना होता है। नियमित व्यायाम कराने से अश्वों की मांसपेशियां मजबूत बनती है और उनकी कार्यक्षमता में वृद्धि करती है। नियमित व्यायाम कराने से आपके और अपने अश्व में अच्छे संबंध बनते है। व्यायाम कराने से अश्व शांत एवं खुश रहता है । अगर अश्व को व्यायाम नियमित रूप से नहीं कराया जाता है तो वह बीमार या नियंत्रण से बाहर (बेकाबू) हो सकता है। इसलिए अपने अश्वों को स्वस्थ एवं चुस्त दुरूस्त रखना हो तो उनको नियमित व्यायाम देना

अति आवश्यक है ।

कितने समय तक व्यायाम देवे ?

आपके अश्व को कितने व्यायाम की जरूरत है यह कई बातों पर निर्भर करती है जैसे उम्र, नस्ल रखने का प्रयोजन इत्यादि। घुड़ दौड़ एथलेटिक्स खेलकूद में काम आने वाले घोड़ों को व्यायाम और समय अलग-अलग होता है। आम तौर पर सभी घोड़ों को 30 मिनट से एक घण्टे का व्यायाम करवाना चाहिए और सप्ताह में कम से कम 3-4 दिन व्यायाम अवश्य देवे ।

घुड़दौड़ एवं खेलकूद वाले घोड़ों का व्यायाम

मनुष्य की भांति अश्व भी सीधे घुड़दौड या खेलकूद की गतिविधि में भाग नहीं ले सकते । उससे पहले अश्व की मांसपेशियों का ठीक से खिंचाव होना अति आवश्यक है नहीं तो उसकी मांसपेशियों का नुकसान हो सकता है । किसी भी व्यायाम से पहले अश्व को भी गर्म किया जाना चाहिए। खेलकूद वाले घोड़ों के लिए ले जाने से पहले उसका खरहरा करना चाहिए और उसके खुरों की जांच ठीक से करनी चाहिए फिर उसकी पीठ पर सवारी वाली काठी (साज) ठीक से बांधना चाहिए फिर उसकी पीठ पर बैठकर धीरे-धीरे चलाना चाहिए और उसको बीच बीच में दाएं एवं बांए मोड़ते रहना चाहिए ताकि उसकी मांसपेशियो का ठीक से खिंचाव हो सके।घोड़े को 10-15 मिनट की सैर के बाद उसको 20-25 मिनट तक धीरे-धीरे दौड़ाना चाहिए । उसके बाद घोड़े को 10-15 मिनट तक तेज दौड़ाना चाहिए ताकि उसकी क्षमता बन सके। उसके बाद में घोड़े को शो जम्पिंग इत्यादि में डाल सकते है। खेलकूद की ट्रेनिंग खत्म होने पर घोड़े को ठण्डा करने के लिए उसको धीरे-धीरे सैर करावे । जब उसकी नाड़ी गति एवं श्वसन गति सामान्य हो जावे तो उसे उसके आवास में खरहरा करके और खुरों की सफाई करके छोड़े ।

जब अश्वों को सिर्फ प्रजनन के लिए रखा जाता है तो उनका व्यायाम कसरत गोला में लोगिंग कसरत 30 मिनट तक दी जा सकती है। व्यायाम चक्र में भी अश्व को एक बार बाएं से घुमाए तथा दुबारा दाएं से घुमाएं ।

नर अश्वों एवं खाली घोड़ियों की सवारी करके भी व्यायाम दिया जा सकता है। अगर आपके पास सवारी करने वाला व्यक्ति या कसरत गोला भी नहीं है तो अश्वों का बाड़ा कम से कम इतना बड़ा होना चाहिए ताकि इसमें रहने वाले अश्व आसानी से इधर-उधर दौड़ सके और व्यायाम हो सके । अश्वों को खुले चरागाहों में चराई कराने से भी व्यायाम हो जाता है ।

अश्वों की व्यायाम संबंधित जरूरी जानकारियां

- ❑ अश्वों को व्यायाम शाला में ले जाने से पहले खरहरा, मालिश तथा खुरों की सफाई अवश्य करें ।
- ❑ व्यायाम शुरू करने से कम से कम एक घण्टा पहले दाना खिला देना चाहिए ।

- ❑ अपने अश्व को पैरो पर बचाव के जुते किसी भी चोट से बचाने के लिए अवश्य बांधे ।
- ❑ घुड़ दौड, खेलकूद से अपने घोड़े को उतारने से पहले सैर कराकर, हल्का दौड़ाकर ठीक से गर्म करे ताकि उसकी मांसपेशियाँ ठीक से खुल जाएं ।
- ❑ अपने अश्व की सैंण्डिल को ठीक से कसकर बांधें ।
- ❑ व्यायाम खत्म होने के बाद अपने अश्व को ठण्डा करने के लिए उसको सैण्डल के साथ या सैण्डल उतार कर सैर कराएं। पूरी तरह से सामान्य होने के बाद अश्व को उसके आवास में छोड़े ।
- ❑ व्यायाम के तुरन्त बाद ठण्डा पानी ना पिलाएं ।
- ❑ व्यायाम के तुरन्त बाद हरा चारा एवं दाना ना खिलाएं, हे एवं सूखी घास खिलाएं ।

व्यायाम व अश्व स्वास्थ्य

1. **मायोग्लोबिनूरिया**-अश्वों को ज्यादा आराम कराने पर जब भी कभी उनको थोड़ा सा भी काम लिया जाता है तो उनकी मांसपेशियों में तेजी से लेक्टिक अम्ल बनता है जो कि मांसपेशियों को नष्ट करने लगता है । इससे अश्व एकदम जाम हो जाता है व मांसपेशियों में दर्द होने लगता है । ज्यादा मांसपेशियों का नुकसान होने पर अश्व गहरे भूरे रंग का पेशाब करने लगता है व अश्व की मृत्यु भी हो जाती है ।

2. **लेमीनाइटिस**- व्यायाम करने से अश्व के खुरों की सतह की लेमिना से रक्त परिसंचरण अच्छा रहता है। अन्यथा लेमिनाइटिस रोग होने की संभावना बढ जाती है

3. **कॉलिक**-व्यायाम करवाने से पेट की मांसपेशियां भी सक्रिय व मजबूत रहती है । व्यायाम में ऊर्जा की खपत होने से अश्व खाये हुए भोजन का अच्छी तरह उपयोग कर पाता है। इससे आहार नाल की भी सक्रियता बनी रहती है ।

4. **रोग निरोधक शक्ति**- व्यायाम करने से अश्व में रक्त परिसंचरण बढ़ जाता है व इस रक्त में रूधिराणुओं की संख्या भी बढ़ जाती है जो कि अश्व के रक्त में प्रवेशित बीमारी के विषाणु या जीवाणु को मारने में सहायक है। व्यायाम के बाद अश्व के शरीर का बढ़ा हुआ तापमान भी बीमारी के जीवाणुओं व विषाणुओं को मारने में मदद करता है। फेफड़े में बढ़ा हुआ रक्त परिसंचरण श्वसनतन्त्र में प्रवेशित बीमारी के जीवाणुओं व विषाणुओं को नियन्त्रित व कम करता है ।

खरहरा

खुरहरा करने का मतलब अश्वों में स्वच्छतापूर्वक देखभाल से लिया जाता है या अश्वों को अश्व प्रदर्शनी और प्रतियोगिता में उसकी सुन्दरता बढ़ाने से लिया जाता है । खुरहरा करने का मुख्य उद्धेश्य अश्वों को साफ सुथरा, स्वस्थ और तंदुरूस्त रखना होता है । खुरहरा करना अश्व प्रबंधन के लिए एक जरूरी

गतिविधि होती है । अश्व पशुओं में नियमित रूप से खरहरा करना आवश्यक व लाभदायक है। इससे शरीर की मालिश होती है, रक्त संचार बढ़ता है तथा बाल भी साफ रहते हैं। फलस्वरूप परजीवियों व त्वचा रोगों से बचाव होता है। इसके अतिरिक्त खरहरा करने से पशु के स्वस्थ होने तथा किसी प्रकार की चोट आदि लगने का भी पता लग जाता है। खरहरा सारे शरीर पर करना चाहिए । अयाल, पूंछ के बाल, टागों, खुरों, नथूनों को भी साफ करना चाहिए।

घुड़साल में रखे घोड़ों को कम से कम दिन में एक बार खरहरा अवश्य करना चाहिये तथा प्रत्येक बार व्यायाम या काम पर ले जाने से पहले व तुरन्त बाद खरहरा करना अति आवश्यक है।

खुरहरा करने से अश्व पालक को अश्व के शरीर पर किसी तरह की चोट/घाव का पता लगाने का मौका मिलता है और उसका इलाज तुरन्त शुरू हो जाता है। इससे अश्व के शरीर में रक्त संचार बढ़ता हैं और अश्व व उसकी देखभाल करने वाले व्यक्ति के बीच अच्छे संबंध स्थापित हो जाते हैं ।

ज्यादात्तर अश्वपालक इस बात से सहमत होते हैं कि अश्वों में खुरहरा करना अश्व प्रबन्धन के लिए एक महत्वपूर्ण गतिविधि है और सही तरीके से खुरहरा करना अश्वों को किसी प्रदर्शनी या प्रतियोगिता में भाग लेने के लिए अति आवश्यक है । ज्यादातर लोग अश्वों में प्रतिदिन खुरहरा करने की सलाह देते हैं लेकिन यह प्रतिदिन कई बार संभव नहीं होता । हालांकि नियमित रूप से खुरहरा करना अश्वों को स्वस्थ एवं आरामदायक रखने के लिए जरूरी है । कम से कम अश्वों को किसी कार्य में लेने से पहले एवं कार्यसमाप्ति पर अश्वों की सफाई एवं खुरहरा अवश्य करना चाहिए ।

अश्वों को खुरहरा करने के कारण -

- ❑ इससे अश्वों की त्वचा एवं बालों के स्वास्थ्य में बढ़ोतरी होती है ।
- ❑ इससे विभिन्न प्रकार की स्वास्थ्य संबंधी परेशानियां कम होती है जैसे थ्रश, स्क्रेच और त्वचा संबंधी बीमारियां ।
- ❑ अश्व साफ सुथरे दिखाई देते है और बालों के नीचे किसी तरह की गंदगी जमा नहीं होती ।
- ❑ अश्व के नजदीक से खुरहरा करने की वजह से अश्वों में किसी प्रकार की बीमारी, चोट, सूजन, लंगड़ापन या व्यवहार में परिवर्तन का शुरूआती अवस्था में पता लग जाता है और उसका सही समय पर उपचार होने से समस्या का निदान हो जाता है ।
- ❑ इससे अश्व एवं उसकी देख रेख करने वाले व्यक्ति के बीच सम्बन्ध स्थापित हो जाते हैं जिसका उपयोग वह अश्व को सवारी या किसी अन्य प्रायोजन के लिए पकड़ने में कर सकता है ।

खुरहरा करने में काम आने वाले मुख्य चीजें

- ❑ बॉडी ब्रुश

- ❑ करी काम्ब
- ❑ हैण्डी / स्टीफ ब्रुश
- ❑ हुफ सिक
- ❑ मैन कॉम्ब
- ❑ तोलिए
- ❑ काबू करने के लिए रस्सी

खुरहरा कैसे करे

खुरहरा करने के लिए सबसे पहले अपने अश्व को अस्तबल से बाहर खुरहरा करने वाले स्थान पर लाएं। यह एक अलग से स्टॉल जगह या अश्व आवास में निश्चित किया गया स्थान हो सकता है । अश्व को खुरहरा करने से पहले बांध देना चाहिए ताकि वह इधर-उधर ना भागे ।

अश्व शरीर की देखरेख

सबसे पहले बड़ी ब्रुश की सहायता से अश्व की दोनो आंखों के बीच एवं जबाड़े पर हल्के हाथ से घुमाते हुए खुरहरा चालू करें तथा उसके बाद गर्दन, बंधे तथा पूरे शरीर पर ब्रुश करे और आखिर में टांगों के आंतरिक एवं बाह्य भागों पर भी ब्रुश घुमाएं ।

उसके बाद बड़ी ब्रुश या कड़क ब्रुश को पहले की तरह पूरे शरीर पर काम में लेवे । जिससे टूटे बाल एवं मिट्टी झड़ जाएगी। अश्व के बालों को भी ब्रुश व कंघा अवश्य करें।

इसके बाद आपका अश्व कुछ सम्मानजनक स्थिति में दिखाई देने लग जाता है अगर आपके पास समय उपलब्ध हो तो स्टिफ ब्रुश से चमकाने वाली पोलिस बालों पर कर सकते हैं और उसके बाद एक कम गीले खुरदरे कपड़े से शरीर को नीचे की तरफ रगड़े ताकि अश्व त्वचा या बालों पर जमी किसी तरह की मिट्टी साफ हो जावे ।

चेहरे एवं मुह की देखभाल

मुलायम ब्रुश की सहायता से अश्व चेहरे को ब्रुश करे इसके बाद साफ कम गीले, कपड़े तौलिए से चेहरे को साफ करें । आंखों के आसपास भी साफ कपड़े से सफाई करें । अश्वों में दांत हमेशा बढ़ते रहते हैं। इसलिए इनकी नियमित जांच करते रहना चाहिए तथा आवश्यकता अनुसार पशु चिकित्सक या अनुभवी व्यक्ति से घिसवाई करवानी चाहिए ।

मेन एवं पूंछ की देखभाल -

खुरहरा करते समय अपने अश्व की मेन और पूंछ को अवश्य धोना व साफ करना चाहिए ।

इनको धोते समय बाल आपस में बुरी तरह उलझ जाते है । इसलिए इनको मोटे कंघे या हाथ की अंगुलियों से अच्छी तरह सुलझाना चाहिए । इनको धोने के लिए विभिन्न तरह के शैम्पू व कंडीशनर का उपयोग लिया जा सकता है । अगर संभव हो तो सप्ताह में एक बार पूंछ एवं मेन धोना व कंघी करनी चाहिए ।

खुरों की देखभाल

खुरहरा करते समय अश्वों के खुरों की सफाई हुवा पिक की मदद से नियमित रूप से करनी चाहिए । अगर खुरों में नमी की कमी हो तो खुरों पर तेल की मालिश करनी चाहिए ।

पैर व खुर की देखभाल

अश्वों के खुरो की सफाई उन्हें कई प्रकार की बीमारियों व संक्रमण रोगों से बचाती है। मलमूत्र में खड़े रहने वाले अश्वों में थ्रस हो जाता है जो लंगड़ेपन का एक कारण है। इसलिये खुरों की उचित देखरेख के लिये घुड़साल का स्वच्छ होना अति आवश्यक है। अश्वों में समय समय पर कम से कम भार की नाल लगवानी चाहिये। नाल लगें घोड़े में हर छः से आठ सप्ताह के बाद खुरों की कटाई की जानी चाहिये। गर्मीयों में खुरों को अधिक सूखने से भी बचाना आवश्यक है। पानी पीने की नाद के आस पास की जगह को गीला रखकर खुरों को सूखने से बचाया जा सकता है।

खुर का स्वस्थ होना खुर के तलुवा की अवस्था पर निर्भर करता है। अगर फरॉक सख्त व सूखा होगा तो उसका भूमि के साथ उचित सम्पर्क नहीं रहेगा, जिससे पावं में रक्त संचार कम होगा। जिसके कारण खुर और अधिक सूखा हो जाता है। खुर की छटाई व नाल इस तरह से लगाई जाये कि जब पांव मैदान पर पड़े तो फरॉग पर उचित दबाव बना रहे क्योंकि फरॉग पांव में रक्त संचार को उत्तेजित करता है।

बालो की कटाई

अश्वों में साल में एक दो बार बालो की कटाई भी करानी चाहिए जिससे इसमें फसी गंदगी एवं इसमें पल रहे परजीवियों से पशुओं को बचाया जा सकें। घोड़ों में इनकी पूंछ एवं गर्दन के बालों की कुछ कटाई की जाती है। बाकी शरीर के बाल काटने की उस परिस्थितियों में नही होती जब घोड़े की रोजाना मालिस एवं खुरहरा होती हो क्योंकि इस दौरान बाल अपने आप टूटकर झड़ जाते है।

मादा अश्वों की टीजिंग करना

मादा अश्वों में मदकाल की पहचान करने के लिए रोजाना टीजर के सामने लाकर टीजिंग करवाना अति आवश्यक है। यदि मादा अश्व गर्मी में है तो वह टीजर में रूचि दिखाती है और बार-बार पेशाब करती है। इससे सही समय पर मदकाल की पहचान हो जाती है और सही समय पर मादाओं में प्राकृत्रिक/कृत्रिम गर्भाधान कराकर प्रजनन क्षमता को बढ़ाया जा सकता है।

अश्व प्रजनन

सामान्यतया अश्व पशु 3-3.5 वर्ष की उम्र में प्रजनन योग्य हो जाता है। घोड़ियों में जब शरीर

भार 300 कि.ग्रा. के आस पास हो तो वह प्रजनन योग्य हो जाती है। अश्वों में मदकाल सामान्यतया 5-10 दिन का होता है और इनका मदचक्र 21 + 3 दिन का होता है। इसलिये मादा अश्वों में गर्भाधान 5वें एवं 7वें दिन करना चाहिए। क्योंकि इसी दौरान अण्ड़ोत्सर्जन होने की संम्भावना होती है। अगर अल्ट्रासाउण्ड की सुविधा हो तो, के सही समय का अण्डों की साइज के हिसाब से अन्दाजा लगाकर गर्भाधान करना चाहिए। गर्भाधान जहां तक हो सके ओव्यूलेशन के नजदिकी समय में होना चाहिये, जिससे गर्भाधारण करने की सम्भावना बढ़ जावे। गर्भाधान कराने के बाद गर्भ जांच करानी चाहिए। यह जाँच अल्ट्रासाउण्ड से गर्भाधान के 15 दिन बाद की जा सकती है। अगर मादा अश्व ग्याभिन नही हुई हो तो 21 दिन बाद दुबारा मदकाल में आ जाती है और अगर ग्याभिन हो गई है तो दुबारा मदकाल में नहीं आती है। कुछ गर्भवती घोड़ियां भी ताप के लक्षण दिखाती है। इसलिए दुबारा गर्भधारण कराने से पहले गर्भ जांच अवश्य करा लेनी चाहिए, जिससे गर्भपात से बचा जा सके।

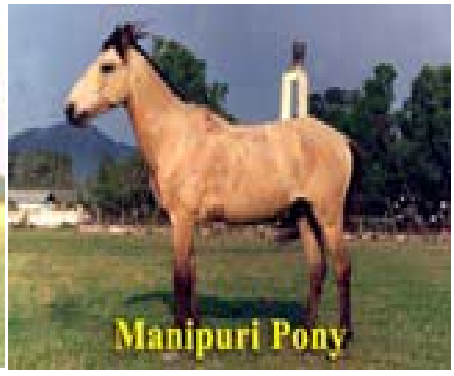

ब्याने के नजदीक ग्याभिन घोड़ियों को भी विशेष ध्यान देने की जरूरत होता है। ब्याने वाली घोड़ियों को बड़े समूह में नहीं रखना चाहिए क्योंकि बड़े समुह में घोड़ियां आपस में लड़कर चोट पहुँचा सकती है। और इससे गर्भपात होने का खतरा बना रहता है। ब्याने से करीब 15 दिन पहले घोड़ियों को यदि सुविधा उपलब्ध हो तो साफ-सुथरे कक्ष में स्थानान्तरित कर देना चाहिए। ब्याने के लक्षणों को ध्यान में रखते हुए घोड़ी की नीगरानी रखनी चाहिए। घोड़ियां ज्यादातर रात को ब्याती है इसलिए रात के समय एक व्यक्ति की ड्यूटी ब्याने वाली घोड़ियों के लिए होनी चाहिए जिससे घोड़ियों के ब्याते समय किसी प्रकार की कठिनाई हो तो उसका समाधान किया जा सके और ब्याने वाली घोड़ी एवं बच्चे को सुरक्षित/जीवित रखा जा सके। नवजात अश्व शिशु के बाहर आते ही उसकी नाक से झिल्ली को हटाकर साफ कपड़े से पौछना चाहिए। बच्चे के नाभि नाड़े को 2-3 इंच लम्बाई पर नई ब्लेड से काटकर साफ धागे से बांधकर टिंक्चर ऑफ आयोडीन लगाना चाहिए।

इसी प्रकार नवजात अश्व शिशु को जितना जल्दी हो सके मां का 'खीस' पिलाना चाहिए जिससे

नवजात अश्व शिशु में बीमारियों से लड़ने के लिए रोग प्रतिरोधक क्षमता आ सके।

अश्व पोषण

अश्व शुद्ध शाकाहारी एवं सरल उदर वाला प्राणी है इसलिए इस प्रजाति के पशुओं को थोड़ा-थोड़ा चारा तथा दाना दिन में कई बार बांटकर खिलाना उचित है।

अश्व आहार के सन्दर्भ में आवश्यक बातें निम्न प्रकार हैः–

- ❑ कभी भी राशन में अचानक परिर्वतन ना लाया जाये, इससे उदर शूल हो सकता है। हमेशा राशन में बदलाव धीरे-धीरे 5-7 दिनों में लायें।
- ❑ पशुओं को हरा चारा पर्याप्त मात्रा में देने से विटामिन की जरूरत पूरी हो जाती है।
- ❑ शारीरिक वृद्धि, उत्पादन, कार्य मात्रा, गर्भ अवस्था के अनुसार राशन की मात्रा बढ़ाते/घटाते रहना अति आवश्यक है।
- ❑ खच्चर और गर्दभ कभी भी अपनी आवश्यकता से अधिक नही खाते हैं जबकि घोड़ों में खुराख नियंत्रण बहुत आवश्यक है क्योंकि वे अकसर आवश्यकता से अधिक खा लेते हैं और कॉलिक, लंगड़ापन व मोटापे का शिकार हो जाते है।
- ❑ हरे चारे, हे व दाने का अनुपात पशु के कार्यभार व जरूरत अनुसार होना चाहिये। अधिक हे से पशु तोंदिला व अधिक दाने से पेट में दर्द का शिकार हो सकता है। अधिक मात्रा में दाना खाने से घोड़ों में लगंड़ापन हो सकता है। राशन हमेशा नियत समय पर दें।
- ❑ गर्भ धारण किये हुए पशुओं को अधिक बरसीम नहीं खिलानी चाहिये क्योंकि इसमें इस्ट्रोजन नामक पर्दाथ ज्यादा मात्रा में होता है जिससे गर्भपात का खतरा रहता है।
- ❑ कभी भी गंदा, गीला, गला-सड़ा व बासी राशन घोड़ों को न खिलाएं।
- ❑ खाने की खुरली व पानी की नाद फर्श से लगभग तीन फुट की ऊंचाई पर होनी चाहिये। घुड़साल में हर समय स्वच्छ पानी उपलब्ध होना चाहिये।
- ❑ तेज दौड़ या सख्त कार्य के बाद थके हुये घोड़े को एकदम न तो दाना खिलाएं और न ही पूरी मात्रा में पीने के लिये पानी दें, लेकिन सूखा चारा हे खिलाने से कोई नुकसान नहीं है।
- ❑ घोड़े को हाथ से खिलाने की आदत न डालें। इससे घोड़े की काटने की आदत को प्रोत्साहन मिलता है। लीद का बदबूदार होना दर्शाता है कि अश्व पाचन समस्या से ग्रस्त है।
- ❑ कई बार पशु लीद खाते हुये पाये जाते है जो कि आवश्यक तत्वों की कमी के कारण होता है। राशन में तत्वों व विटामिनों की उचित मात्रा होनी चाहिये।

अश्वों को सर्दी एवं गर्मी से बचाव

अश्वों को अत्यधिक सर्दी एवं गर्मी दोनो से ही बचाना अति आवश्यक है। नहीं तो, अश्व इन दोनो को सहन नही कर पाएगें एवं बीमार पड़ जाएंगें। जब अधिक सर्दी पड़नी शुरू हो जावे तो अश्वों को रात के समय अस्तबल के अन्दर करके दरवाजे बन्द कर देने चाहिये एवं खिडकियों एवं दरवाजों पर अगर किंवाड़ नहीं हो तो उन पर बोरियां इत्यादि लगानी चाहिए जिससे अस्तबल में सीधी हवा प्रवेश ना करें। इसी तरह रात को पशुओं के शरीर पर झूल बांधकर रखनी चाहिए। अस्तबल के अन्दर फर्श पर बिछावन की परत बिछानी चाहिए जिससे पशु का ठण्ड़े फर्श से सीधा सम्पर्क ना बने।

अत्यधिक गर्मी से पशुओं को बचाने के लिए अस्तबल में पंखे, कूलर या टाट का प्रयोग करना चाहिए। बाड़ों में छायादार वृक्ष होने चाहिए। अस्तबल के आस पास भी पेड़ पौधे लगाने चाहिए जिससे वहाँ का वातावरण ठीक रहे। गर्मी के मौसम में अगर चरने के लिये भेजना हो तो सुबह एवं शाम के समय भेजना चाहिए ताकि पशुओं को गर्मी से बचाया जा सके। गर्मी में ठण्डे पानी की उपलब्धता अस्तबल में हमेशा रहनी चाहिए। गर्मी के समय में चारा रात के समय भी उपलब्ध रहना चाहिए।

घुड़साल सम्बन्धी

- ❑ घुड़साल गर्मी, सर्दी, वर्षा से बचाव करने में सक्षम व सुरक्षित स्थान पर होना चाहिये।
- ❑ घुड़साल में हवा व रोशनी पर्याप्त होनी चाहिये।
- ❑ बल्ब व रोशनी के साधन घुड़साल में उचित उचाई पर होने चाहिये जोकि अश्वों की पहुंच से बाहर हो।
- ❑ अगर फर्श पक्का हो तो यह रपटने वाला न होकर खुरद्रा होना चाहिये। फर्श की ढलान इस प्रकार की हो कि पानी न रूके और सफाई सुचारू रूप से हो सके।
- ❑ अगर फर्श कच्चा हो तो उपर की मिट्टी को साल में एक दो बार बदल देना चाहिये।
- ❑ धूल रहित सूखी घास व पुआल को बिछौना के रूप में प्रयोग करें। इससे घोड़ें को आराम मिलता है, यह पेशाब सोख लेता है व लीद हटाना भी आसान हो जाता है।
- ❑ गीले एवं गंदे बिछौने को तुरन्त बदलना व घुड़साल की सफाई की पूर्ण व्यवस्था अति आवश्यक है।
- ❑ स्वच्छ पानी व चारा/दाना खिलाने की समुचित व्यवस्था हो।
- ❑ पानी, चारा/दाने की नादों की सफाई निश्चित समय पर होती रहनी चाहिये।घुड़साल अकेले में न हो और न ही इसमें कोई खूंटी, कील या नुकिली वस्तु तथा कोने आदि गोलाई में हो।

स्वस्थ एवं अस्वस्थ अश्वों की पहचान

अश्व पालकों को स्वस्थ एवं अस्वस्थ घोड़ों की पहचान होनी चाहिए। जिससे वह बीमार अश्वों का तुरन्त ईलाज करवा सके और स्वस्थ घोड़ों से उनको अलग कर सके ताकि किसी तरह की संक्रमण स्वस्थ घोड़ों में ना हो पाए। बीमार घोड़ों को हमेशा स्वस्थ घोड़ों से अलग करके उनका उपचार करवाना चाहिए।

टीकाकरण

अश्व पशुओं को समय-2 पर विभिन्न बीमारीयों के खिलाफ प्रतिरोधक टीके लगवाने चाहिए जिससे पशुओं को होने वाली बीमारियों से बचाया जा सकें।

अनाथ शिशु की देखरेख

जब शिशु 3-4 महिने के हो जाए तो अनके हैड कालर, मोहर आदि डालना शुरू कर देना चाहिए जिससे उनको इसकी आदत हो जाए और बाद में उनको काबू करने में किसी किस्म की दिक्कत ना आएं।

बच्चे का दूध बंद करना

अश्व शिशुओं को दूध पिलाना 4-6 महीने की उम्र में बंद कर देना चाहिए, जिससे घोड़ी का स्वास्थ्य ठीक रहें और वह अपने आप को अगले बच्चे के लिये तैयार कर सके। दूध बन्द करने के बाद बच्चों को दाने की मात्रा बढ़ा देनी चाहिए जिससे बच्चे के स्वास्थ्य पर कुप्रभाव न पड़े।

❑❑❑

अश्वों को लंगड़ापन के खतरे से कैसे बचाएं

राम अवतार लेघा[1], यशपाल[1] एवं आर.के. देदड़[2]
[1]वरिष्ठ वैज्ञानिक, [2]वैज्ञानिक
अश्व उत्पादन परिसर, राष्ट्रीय अश्व अनुसंधान केन्द्र, बीकानेर

अश्वों में लंगड़ापन एक गम्भीर एवं दर्दनाक बीमारी है । यह गधे घोड़े एवं खच्चरों में किसी भी उस लिंग व साल के किसी भी समय में हो सकती है । लंगड़ापन होने के तुरन्त बाद (कम समय में) अगर सही उपचार या होने के कारण से बचाव नहीं किया जाता है और अगर अश्व बार-बार इस बीमारी से ग्रस्त होता है तो उस अश्व की उपयोगिता नहीं रहती है क्योंकि इसमें अश्व लंगड़ा हो जाता है और चलने-फिरने व काम करने में दिक्कत होती है । गम्भीर स्थिति में कभी-कभी इस बीमारी से दर्द निवारण के लिए अश्वों को खत्म भी करना पड़ता है । इस बीमारी के होते ही इसका बचाव एवं चिकित्सा करवाना अति आवश्यक है और इसके उपचार में काफी लम्बा समय एवं अत्यधिक धन खर्च करना पड़ता है तथा उस अश्व का काफी लम्बे समय तक कार्यवाहक को ध्यान रखना पड़ता है ।

लंगड़ापन खुरों की दीवार एवं कोफिन हड्डी (Paddle Bone) के बीच में उपस्थिति व दोनों को आपस में ऊतकों (Laminae) के सूजन की स्थिति को कहते हैं ।

लंगड़ापन होने पर क्या करें -

- ❑ शीघ्रातिशीघ्र पशु चिकित्सक को बुलाकर उपचार चालू करावें ।
- ❑ शुरूआती चिकित्सा अत्यधिक महत्वपूर्ण होती है जो लंगड़ापन को फोन्डर की स्थिति में ले जाने से रोक सकती हैं।
- ❑ लंगड़ापन से प्रभावित अश्व का व्यायाम बन्द कर देवे और अगर अश्व चारागाह में हो तो उसको वहां से हटाकर गहरे विधावन वाली जगह पर रखे ।
- ❑ अच्छी तरह जांचने के बाद आवश्यकतानुसार दर्द निवारक दवाएं पेरीफेरल वासोडाईलेटर एवं सेडेटीव द्वारा दी जा सकती है ताकि अश्व लेट जावे तथा खुर के फ्रोग को सही सहारा लगाया जा सके तथा अन्य किसी तरह का सही चिकित्सा दी जा सके ।
- ❑ प्रभावित अश्वों को लम्बे समय तक भूखा ना रखे इससे हाईपर पिपेमी की स्थिति उत्पन्न हो सकती है ।

- ❑ इनको आहार ऐसा दे जिसमें कम मात्रा में चारा, जिसमें ज्यादा फाइबर और कम स्टार्च की मात्रा हो । आहार में तरल पदार्थ की मात्रा पर्याप्त होने चाहिए ।

मुख्य कारण -

- ❑ अत्यधिक मात्रा में हरी घास खिलाने, जिनमें घुलनशील कार्बोहाइड्रेट्स की मात्रा अधिक होती है ।
- ❑ अधिक मात्रा में दाना खाने से या एक समय में आहार की अधिक मात्रा खाने से।
- ❑ सामान्य से अधिक मोटे अश्व लंगड़ापन के लिए अति संवेदनशील होते हैं ।
- ❑ अश्वों में टॉक्सीमिया की वजह से भी लंगड़ापन हो सकता है और टॉक्सीमिया अश्वों में दस्ता पेरिटोनिटिस या गर्भाशय शोध की वजह से हो सकता है ।
- ❑ अश्वों में ट्रोमा या चारों पैरों पर समान वजन नहीं होने । एक पैर में किसी चोट की वजह से उसका गति नहीं होने तथा उस पैर पर वजन सहन ना कर पाने की वजह से भी उस जानवर में लंगड़ापन हो सकता है ।
- ❑ कुछ दवाएं विशेषकर कोर्टीकोस्टीरोईड की वजह से पैर की धमनियों के संकुचन से रक्त का संचार कम होने से लंगड़ापन हो सकता है ।
- ❑ अश्वों में तनाव होने की वजह से भी लंगड़ापन होने की संभावना बढ़ जाती है जैसे अश्वों में लम्बी यात्रा के तनाव की वजह से अधिक मात्रा में कोर्टीकोस्टीरोईड उत्पन्न होते हैं और वे उसी तरह प्रभाव डालते है जैसे बाहर से दिए हुए कोर्टीकोस्टीरोईड।

अश्वों में लंगड़ापन के खतरे को कम कैसे करे -

- ❑ अश्वों में लंगड़ापन पैदा करने वाले कारणों से बचाव करें ।
- ❑ अपने अश्वों को ज्यादा मोटा होने से बचाएं ।
- ❑ अपने अश्वों के खुरों की कटाई नियमित रूप से करावें ।
- ❑ जब चारागाहों में कच्ची हरी घास होतो चराई को कम समय के लिए प्रतिबंधित करें ।
- ❑ अधिक मात्रा में कटी हुई ऐसे घास/चारे ना खिलाएं जिनमें घुलनशील कार्बोहाइड्रेट्स की मात्रा अधिक हो ।
- ❑ अश्वों को सूखी 'हे' अथवा घास खिलावे जिनमें फाइबर की मात्रा ज्यादा हो ।
- ❑ विभिन्न तरह के चारों के मिश्रण को रिजका घास के साथ खिलावे। रिजके में जरूरी खनिज लवण एवं प्रोटीन की मात्रा होती है जो अश्वों के खुरों की गुणवत्ता सुधारने में काम आती है ।

- अकेले दानों का छिलका लम्बे समय तक ना खिलावे क्योंकि इसमें फास्फोरस की मात्रा अधिक होती है और लम्बे समय तक खिलाने से कैल्सियम की मात्रा कम हो जाती है लेकिन खुरों के स्वास्थ्य के लिए कैल्शियम एक महत्वपूर्ण खनिज लवण है ।
- दानों के मिश्रण में किसी एक तरह के दाने को शामिल करने की बजाए 3-4 तरह के दानों को सम्मिलित करें ।
- अच्छी गुणवत्ता वाला खनिज लवण मिश्रण अश्वों को खिलावे ।
- अश्वों के आहार को अचानक ना बदले उसे धीरे-धीरे बदले । अश्वों को कम मात्रा में कई बार खिलावे ।
- अश्वों में कोलिक और झड़ न गिरने की स्थिति की नियमित निगरानी करनी चाहिए क्योंकि इनकी वजह से लंगड़ापन हो सकता है ।
- नियमित रूप से रेतीली जगह पर अश्वों का व्यायाम अवश्य करावे ।
- खुरों की सफाई एवं जांच नियमित रूप से करें ।
- अश्वों से पक्की जगह पर भारी कार्य लेने से बचे।
- अश्वों को कार्य अनुसार आहार खिलावे ।
- अश्वों को किसी तरह तनाव होने से बचावे ताकि इसकी वजह से उत्पन्न होने वाले कोर्टीकोस्टीरोईड हार्मोन्स भी कम से कम श्रावित हों ।

❑❑❑

खच्चर उत्पादन : एक लाभकारी व्यवसाय

यशपाल एवम् राम अवतार लेघा
वरिष्ठ वैज्ञानिक
अश्व उत्पादन परिसर, राष्ट्रीय अश्व अनुसंधान केन्द्र, बीकानेर

वर्ष 2007 की पशुगणना के अनुसार भारत में 12 लाख अश्व प्रजाति के पशु हैं जिनमें घोड़े 6. 1 लाख खच्चर 1.4 लाख एवं गदर्भ 4.4 लाख हैं। अश्वों की संख्या के हिसाब से राजस्थान, उत्तर प्रदेश के बाद द्वितीय स्थान पर आता है। अश्वों की संख्या पिछले कई दशकों से मशीनीकरण के कारण लगातार घट रही है जो एक चिंता का विषय है। यहां यह कहना उल्लेखनीय है कि देश की अश्व प्रजाति की कुल संख्या का लगभग 98 प्रतिशत आर्थिक एवं सामाजिक रूप से पिछड़े लोगों के पास हैं।

खच्चर एक बहुत ही मजबूत प्राणी है और यह मुख्यतः पहाड़ी एवं दुर्गम स्थानों पर पीठ पर बोझा ढोने के काम में आता है। भारतीय सेना इनका प्रयोग दुर्गम चौकियों पर खाद्य-सामग्री, गोलाबारूद, हथियार आदि परिहवन के काम में लेती हैं । इसी प्रकार अन्य अश्व पालक इनको विभिन्न प्रकार का सामान घर, बाजार, खेत एवं मण्डी तक पहुंचाने के काम में लेते हैं । मैदानी इलाकों में खच्चर को मुख्यतः पीठ पर बोझा ढोने के लिए ईंट भट्टों पर कच्ची मिट्टी एवं कच्ची ईंटों के परिवहन के लिए काम में लिया जाता है । इसी प्रकार मैदानी इलाकों में खच्चर को गाड़ी में जोतकर इससे विभिन्न प्रकार के सामान गांव व खेत से शहर, शहर से गांव व खेत एवं शहर में एक स्थान से दूसरे स्थान पर सामान परिवहन करने के काम में लेते हैं । खच्चर गाड़ी का उपयोग ईंट भट्ठों पर भी ईंटों एवं मिटटी के परिवहन के लिए बहुतायत में होता हैं । सेना खच्चर उत्पादन का कार्य अपने स्तर पर करती है। जबकि जनसाधारण के लिये खच्चर उत्पादन के लिये कोई संगठित संस्था नही है। अतः कुछ मुस्लिम परिवार इस काम में लगे हुये है जो अपनी घोडियों से खच्चर लेना ही पसंद करते है। क्योंकि एक 4 से 6 माह के खच्चर को बेचकर वे 15,000 से 25,000 रूपये कमा लेते हैं। जबकि एक प्रौढ खच्चर की कीमत आमतौर पर 40,000 से 75,000 रू. तक पाई जाती है। इस तरह से खच्चर उत्पादन ही उनकी आजीविका का साधन है।

गरीब परिवार जो खच्चर से कार्य लेकर ही अपनी आजीविका कमाते हैं वे घोड़ों के बजाए खच्चरों को रखना इसलिये पसंद करते है क्योंकि खच्चरों में अपने जन्तदाताओं के गुण शक्ति तथा कठोरता का सम्मिश्रण होता है। प्रायः शक्ति तथा अन्य गुणों के आधार पर खच्चर गधों के मुकाबले फुर्तिले, शक्तिशाली एवं ज्यादा क्षमता वाले होते हैं तथा इन्हें घोडों की तरह अधिक देखभाल की जरूरत नही होती है। इसके अतिरिक्त समाज में गधे को हेय दृष्टि से देखा जाता है। अतः गरीब लोग भी गधों के मुकाबले खच्चर रखना अधिक पसंद करते हैं।

खच्चर उत्पादन हेतु हम किसी भी नस्ल की घोड़ी का प्रयोग कर सकते हैं। मगर देखने में आया है कि कई खच्चर उत्पादक खच्चर उत्पादन हेतु उत्तम किस्म की घोड़ियों का प्रयोग नहीं करते हैं। अतः निम्न किस्म की घोड़ियों से प्राप्त खच्चर अश्व पालकों को उचित मूल्य दिलाने में असमर्थ रहते हैं। अश्व पालकों को अपनी आमदनी बढ़ाने के लिये उत्तम नस्ल के नर एवं मादा का प्रयोग करना चाहिए। क्योंकि खच्चर का कद काठी घोडी एवं नर गर्दभ के कद काठी पर निर्भर करता है। अतः उत्तम किस्म के खच्चर हेतु घोडी एव नर गर्दभ दोनों हष्ट पुष्ट एवं तन्दरूस्त होने चाहिएं। भारत मूल के नर गर्दभ बहुत छोटे आकार के होते हैं अतः उन से पैदा होने वाले खच्चर अच्छी किस्म के नहीं होते । इन खच्चरों की मांग कम है और इनकी कीमत उत्तम प्रकार के खच्चरों से काफी कम पाई जाती है। अतः खच्चर उत्पादन हेतु उत्तम किस्म के नर गर्दभ की उपलब्धता भी खच्चर उत्पादकों के लिये एक समस्या है। जिन खच्चर उत्पादकों के पास उत्तम नस्ल के नर गर्दभ हैं वे उनका प्रजनन हेतु प्रयोग आवश्यकता से अधिक करते है जिसके कारण नर गर्दभों में कामेच्छा की कमी पाई जाती है। प्रजनन काल के दौरान कई बार तो अश्व पालक अपने नर गर्दभों का प्रयोग एक ही दिन में 5-6 बार तक कर लेते हैं जो कामेच्छा की कमी का मुख्य कारण है । जबकि एक दिन में एक या दो बार से अधिक प्रयोग करना सही नही है।

गर्भाधान के सही समय की जानकारी न होने के कारण भी अश्व पालक मद में आई मादा का गर्दभ से कई बार समागम करा देते हैं जिसको कम किया जा सकता है। नर शुक्राणु मादा के प्रजनन मार्ग में 36 से 48 घण्टे तक जीवित रह सकते हैं अतः अश्व पालकों को चाहिए कि वे अपनी घोड़ी के मद काल की पूर्ण जानकारी रखें और मद शुरू होने के बाद चौथे दिन से हर एक दिन छोड़कर अपनी घोड़ी का मिलान नर गर्दभ से करवा सकते हैं।

खच्चर उत्पादन में सबसे बडी समस्या है घोडी का नर गर्दभ से मिलान। क्योंकि यह एक दो भिन्न जातियों का समागम हैं। जबकि प्राकृतिक तौर पर भिन्न जातियां आपस में समागम नहीं करती हैं। अतः खच्चर उत्पादन इतना आसान नहीं है। इस क्रिया के दौरान उत्तम किस्म के नर गर्दभ को मद में आई घोड़ी से मिलान करने के लिये प्रेरित किया जाता हैं। अगर इस मिलान के दौरान घोड़ी को अच्छी तरह से काबू में ना किया जाये तो वह गर्दभ सांड को मैथुन करने में बाधा डाल सकती हैं एवं लात मार कर हानि भी पंहुचा सकती हैं। आमतौर पर गर्दभ सांड गर्मी में आई घोड़ी से भी मैथुन करने से बचते हैं अतः उन्हें पहले मद में आई मादा गर्दभ को दिखा कर तैयार किया जाता है और तैयार होने पर उस नर गर्दभ को घोड़ी पर छोड़ दिया जाता हैं। बार-बार के अभ्यास के बाद कई गर्दभ सांड तो घोड़ी से मैथुन करने के आदि हो जाते हैं पर सामान्यतः घोड़ी इसके लिये तैयार नही होती। अतः इस समस्या से छुटकारा पाने का सरल सा साधन है कृत्रिम गर्भाधान। कृत्रिम गर्भाधान ताजा एकत्रित वीर्य या फिर हिमिकृत वीर्य से भी किया जा सकता है। एक बार एकत्रित ताजा वीर्य 8 - 10 घोड़ियों में डाला जा सकता हैं।

राष्ट्रीय अश्व अनुसंधान केन्द्र बीकानेर ने इस समस्या के समाधान के लिये उत्तम किस्म के गर्दभ सांडो का वीर्य हिमिकृत कर अश्व पालकों को निःशुल्क देने में पहल की है। समय समय पर संस्थान के वैज्ञानिक अश्वों के प्रजनन काल के दौरान देश के उन भागों में जाकर हिमिकृत वीर्य से घोड़ियों का

गर्भाधान करते हैं जहाँ खच्चर उत्पादन पर जोर है। खच्चर उत्पादन के लिये अश्व पालक भाई अपनी घोड़ियों को संस्थान में ले जाकर भी हिमिकृत वीर्य से गर्भाधारण करवा सकते हैं।

खच्चर उत्पादन में लगे अधिकतर लोग भूमिहीन एवं घुमन्तु किस्म के हैं। अतः वे अपने पशुओं को उचित पोषण, रख रखाव एवं चिकित्सीय सुविधाएं देने में असमर्थ हैं जिस कारण उनके पशुओं में कई तरह की बीमारियां जैसे कि परजीवी संक्रामण, लवणों एवं विटामिनों की कमी से उत्पन्न रोग, निम्न किस्म का चारा खाने के कारण उत्पन्न रोग, गर्भपात, बार बार फिरना आदि देखे जाते हैं। अतः इस तरह के पशुओं से उचित उत्पादन की उम्मीद बहुत कम होती है। अधिकतर खच्चर उत्पादक अपने पशुओं को कोई दाना या खनिज मिश्रण नहीं देते। उनके पशु चारे के लिये चरागाह पर ही निर्भर रहते हैं। उचित मात्रा में चारा व दाना देकर न केवल अश्व पालक अपने अश्व पशुओं को स्वस्थ रख सकते हैं बल्कि उनसे स्वस्थ और अधिक खच्चर भी ले सकते हैं।

खच्चर उत्पादन कैसे हो सकता है लाभ का सौदा

- यह व्यवसाय शुरू करते वक्त घोड़ियों एवं नर गर्दभ सांड का चुनाव अच्छी तरह से करें। खच्चर उत्पादन हेतु सबसे पहले अच्छी कद काठी वाली घोड़ियों की आवश्यकता होती है चाहे वे किसी भी नस्ल की क्यों न हों। उनकी प्रजनन क्षमता अच्छी होनी चाहिए यानि हम एक घोड़ी से एक वर्ष में एक खच्चर प्राप्त कर सकें। अतः जब हम घोड़ियों को मेले आदि से खरीदने जाएं तो गाभिन घोड़ी ही खरीदें क्योंकि मेले आदि में बार-बार फिरने वाली या गर्भपात की समस्या या गर्भ न ठहरने वाली घोड़ी मिलने का खतरा रहता है। या फिर उसका पिछला पूरा रिकार्ड देखकर ही पशु खरीदना चाहिए कि उसने इससे पहले कब बच्चा दिया है और किसी अच्छे पशु चिकित्सक से पशु के स्वास्थ्य एवं जननांग सम्बन्धी जाँच करा लेनी चाहिए।

- खच्चर उत्पादन का कार्य कम से कम 20-30 घोड़ियों से शुरू करना चाहिए और सभी घोड़ियां स्वस्थ एवं प्रजनन लायक हों। उन्हें घर पर बांध कर दानाचारा खिलाते हुए खच्चर उत्पादन बहुत मंहगा पड़ता है। अतः खच्चर उत्पादन का कार्य ऐसे इलाके में शुरू करना चाहिए जैसे कि नदी नालों या पहाड़ी इलाकों के पास, जहाँ घोड़ियों को चरने के लिए पर्याप्त स्थान एवं चारा मिल जाए और उनका व्यायाम भी हो जाएगा। इस तरह से खाद्यान्न पर होने वाला खर्च काफी हद तक कम किया जा सकता है। जब चरागाह में घास और चारे की उपलब्धता कम हो तो ग्याभिन घोड़ियों को घर पर कुछ मात्रा में घास व दाना अवश्य देना चाहिए जिससे वे स्वस्थ बच्चे को जन्म दे सकें एवं गर्भपात आदि का खतरा कम रहे।

- घोड़ियों को आसपास के इलाके में शादी विवाह के मौके पर भेजकर भी अपनी कमाई बढाई जा सकती है। आजकल अच्छे स्कूलों में विद्यार्थियों के चहुमुखी विकास के लिए घुड़सवारी आदि भी सिखाई जाती है। अतः किसी ऐसे स्कूल से अनुबंध करके आप अपनी घोड़ियों से खच्चर के साथ साथ अतिरिक्त धन कमा सकते हैं। गर्भकाल के 6-7 महीने तक घोड़ियों को तांगा गाड़ी में लगाकर

सामान एवं सवारियों को एक स्थान से दूसरे स्थान पर ले जाकर भी आय की जा सकती है।

- समय-समय पर घोड़ियों की चिकित्सकीय जाँच करवानी चाहिए और जो मादा प्रजनन सम्बन्धी रोगों से पीड़ित हैं उन्हें खच्चर उत्पादन की अपनी परियोजना से निकाल दें क्योंकि इस तरह की घोड़ियां अनावश्यक खर्च बढ़ाती है।

- नर गर्दभ सांड़ का खच्चर उत्पादन में अहम योगदान होता है अतः हमें चाहिए कि हम अच्छी कद काठी, स्वास्थ्य, सही चाल, और गहरे रंग वाले नर गर्दभ ही खच्चर उत्पादन हेतु प्रयोग करें। नर गर्दभ के पांव सही हो और चलते हुए आपस में नही मिलते हों। खच्चर का प्रयोग करने वाले आमतौर पर सफेद बादामी या हल्के रंग के खच्चर को कम पसंद करते हैं जबकि गहरे रंग का खच्चर उत्पादक को अधिक लाभ दिला सकता है क्योंकि इसकी बाजार में कीमत ज्यादा मिलती है।

- नर गर्दभ सांड़ खरीदते वक्त ध्यान रहे कि गर्दभ सांड़ स्वस्थ, अच्छी कद काठी एवं किसी भी तरह के जनन रोग से पीड़ित न हो, मैथुन क्रिया में उसकी रूचि अच्छी हों और सुस्त न हो। इसके साथ साथ वह घोड़ियों से मैथुन करने का अभ्यस्त भी हो। अगर अच्छा नर गर्दभ उपलब्ध न हो तो इसके स्थान पर अच्छे नर गर्दभ के वीर्य से कृत्रिम गर्भाधान कराना चाहिए जिसकी सुविधा राष्ट्रीय अश्व अनुसंधान केन्द्र में निःशुल्क उपलब्ध है। इससे नर गर्दभ खरीदने एवं उसके रखरखाव का खर्चा भी नही होता।

- नर गर्दभ सांड़ जब आप अपनी घोड़ियों के लिए प्रयोग नही कर रहे हो तो अन्य खच्चर उत्पादन में लगे अश्व पालकों को नर गर्दभ की सेवाएं खच्चर उत्पादन हेतु देकर अतिरिक्त आय ले सकते हैं। इसमें दाम प्रति घोड़ी की कवरिंग के हिसाब से ले सकते हैं या फिर गर्दभ के मैथुन कराने से पैदा हुए बच्चों में गर्दभ के मालिक का हिस्सा तय कर सकते हैं।

- कई बार अश्व पालकों के पास पाए जाने वाले नर गर्दभों में काम इच्छा की कमी देखी गई है क्योंकि अश्व पालक कई बार अपने नर गर्दभ का उपयोग आवश्यकता से अधिक करते हैं जो ठीक नही है। अज्ञानतावश अश्व पालक एक ही दिन में एक ही घोड़ी से दो बार गर्दभ का मैथुन करवा देते हैं जो गलत है। मैथुन एक दिन छोड़कर ही करवाना चाहिए क्योंकि मादा जनन मार्ग में शुक्राणु 36-48 घण्टे तक जीवित रह सकते हैं। इसलिए एक बार मैथुन के बाद कम से कम 24 घण्टे तक दुबारा मैथुन नहीं कराना चाहिए। इससे आप नर गर्दभ से ज्यादा घोड़ियां कवर करा पायेगें एवं उसकी कामेच्छा में कभी भी कमी नही आएगी।

नर गर्दभ सांड

चार से छः माह का खच्चर अच्छी कीमत दे देता है। अतः खच्चर जब 4-6 माह का हो जाये तभी उसे बेच देना चाहिए ताकि उस पर रख-रखाव का और अधिक खर्च ना आवे। इस आयु का अच्छी

किस्म के खच्चर का बच्चा 20,000 से 30,000 रूपये के आसपास बिक जाता है। अगर आपके पास पशुओं को चराने के लिए काफी जगह है और चारा घास भरपूर मात्रा में उपलब्ध है और घोड़ियों की देखरेख के लिए व्यक्ति आपके घर में उपलब्ध है तो आप खच्चर को 2-3 साल की उम्र तक कम खर्च में पालकर 60,000-70,000 रूपये की कीमत पर बेचकर लाभ कमा सकते है।

खच्चर उत्पादन में प्रयोग होने वाली घोड़ियों एवं नर गर्दभ की उचित देखभाल, पालन पोषण, व्यायाम, समय-समय पर परजीवियों से बचाव के लिए दवाइयों का प्रयोग, टीकाकरण, विभिन्न बीमारियों के इलाज एवं स्वास्थ्य सम्बन्धी जाँच करवानी चाहिए ताकि अच्छी आमदनी देने वाले खच्चर पैदा किए जा सकें।

भारत में खच्चरों की संख्या पिछले कई दशकों से बढ रही है इससे साफ जाहिर है कि आधुनिक युग में मोटर चालित वाहनों की उपलब्धता के बावजूद खच्चर का उपयोग एवं उत्पादन दोनों प्रासांगिक हैं। खच्चर का उपयोग पहाड़ी एवं संकरे इलाकों में जहां पीठ पर भार/सवारी ढोने के लिए किया जाता है वहीं समतल रास्तों पर यह खच्चर गाड़ी खींचने के काम आता है। खच्चर उत्पादन में लगे लोग सामान्यतः निम्न आय वर्ग के होते हैं और किसी एक समुदाय विशेष के लोग ही यह कार्य करते हैं। खच्चर उत्पादन ही इन लोगो की आजीविका का साधन हैं। इस लेख में हम उन बातों का वर्णन कर रहे हैं जिन पर ध्यान देकर खच्चर उत्पादन में लगे लोग न केवल अपनी आय बढा सकते हैं बल्कि इसे एक व्यवसाय के रूप में विकसित कर सकते हैं।

इस व्यवसाय में लगे लोग अनपढ़ होने के कारण वैज्ञानिक तरीकों के जानकार नही हैं। वे अपने पशुओं का बीमा भी नहीं कराते हैं अतः किसी बीमारी के कारण अगर अश्व पशु की मृत्यु हो जाती है तो गरीब अश्व पालक के लिये यह क्षति असहनीय हो जाती है। अश्व पालकों को चाहिए कि वे अश्व पशुओं का पालन वैज्ञानिक तरीके से करें एवं खच्चर उत्पादन में आ रही परेशानियों के निवारण, पालन पोषण, रख रखाव, प्रजनन एवं चिकित्सा संबन्धी प्राथमिक ज्ञान के लिए राष्ट्रीय अश्व अनुसंधान केन्द्र की सेवाएं लेनी चाहिए।

❑❑❑

दक्षिणी राजस्थान के जनजातीय क्षेत्र आधारित बागवानी

दिलीप कुमार समादिया
वरिष्ठ वैज्ञानिक
केन्द्रीय शुष्क बागवानी संस्थान, बीकानेर

राजस्थान क्षेत्रफल की दृष्टि से देश का सबसे बड़ा राज्य है एवं मरूप्रदेश की संज्ञा होने के बावजूद राज्य के दक्षिणी भू-भाग में बागवानी विकास की व्यापक सम्भावनाएं हैं। राजस्थान का अधिकांश क्षेत्र शुष्क व अर्द्धशुष्क जलवायु के अर्न्तगत आने से यहाँ के प्रतिकूल कारकों के कारण बागवानी की सीमित संभावनाएं हैं जबकि राज्य के दक्षिणी पूर्वी क्षेत्र की जलवायु बागवानी के लिए अत्यधिक अनुकूल है। राजस्थान के दक्षिणी भू-भाग में मुख्यतः बाँसवाड़ा, डूँगरपुर, प्रतापगढ़, उदयपुर, चितौड़गढ़ व सिरोही जिले एवं इन जिलों की सीमाओं से लगते अन्य जिलों के कुछ भाग तथा राज्यों के क्षेत्र आदिवासी बाहुल्य होने से जनजातीय क्षेत्र की श्रेणी में आते हैं। इस जनजातीय क्षेत्र की भौगोलिक स्थितियाँ एवं यहाँ अनुकूल जलवायु होने से उद्यानिकी में लगभग 100 तरह की फसलों का व्यावसायिक स्तर पर उत्पादन होने की सम्भावनाएं हैं।

इस क्षेत्र में जून से सितम्बर माह में वर्षा बहुत अच्छी होती है एवं वर्षा दिनों का अन्तराल ठीक रहने से खरीफ की फसलें प्रायः वर्षा आधारित होती हैं। सामान्यतः इस क्षेत्र में 500-750 मिलीमीटर वर्षा होती है एवं सर्दियों में एक-दो मावठ की वर्षा भी हो जाती है। यहाँ का भू-भाग अधिकांश पहाड़ियों व छोटी-छोटी डूँगरियों के रूप में छोटे-छोटे जलग्रहण क्षेत्र के रुप में हैं। यहाँ नदी, नाले, तालाब इत्यादि अधिक होने से भूमिगत जलस्तर अच्छा है जिससे सिंचाई जल की अच्छी संभावनाऐं हैं। पहाड़ी व डूँगरियों वाली जमीन होने के कारण कृषि योग्य भूमि कम व जोत छोटी होती है, इसके बावजूद भी कृषि योग्य व अयोग्य भूमि को बागवानी विकास के लिए काम में लिया जा सकता है। इस आदिवासी बाहुल्य क्षेत्र में लोगों का जीवन पूर्णतया कृषि, पशुपालन एवं वानिकी व इससे संबंधित कार्यों से जुड़ा हुआ है तथा इनकी आर्थिक, सामाजिक व शिक्षा अभी भी देश के अन्य प्रदेशों की तुलना में काफी पिछड़ा हुआ है। कृषि आधारित परम्परागत खेती व व्यवसाय से आय निश्चित व अच्छी नहीं होने से इनका आर्थिक पक्ष काफी कमजोर है एवं ग्रामीण लोग रोजगार की तलाश में अन्य राज्यों में पलायन कर जाते हैं जिससे इनकी मूलभूत आवश्यकताओं की पूर्ति हो सके।

राजस्थान के जनजातीय क्षेत्र के लोगों की आर्थिक स्थिति सुधारने एवं स्थायी रोजगार के उपाय हेतु स्थानीय स्तर पर ऐसी योजनाओं की आवश्यकता है जो कि भौगोलिक स्थिति व जलवायु की अनूकुलता का प्रभावी उपयोग कर कृषि में स्थिरता ला सके तथा जनजातीय बाहुल्य लोगों को बागवानी, वानिकी, पशुपालन एवं इनसे संबंधित उद्यमिता से जोड़ सकें। जिसके लिए क्षेत्रीय स्तर पर एक ऐसी योजना की

आवश्यकता है जो कि वर्तमान परिदृश्य में बागवानी आधारित कृषि प्रणाली के लिए फायदेमंद साबित हो।

बागवानी आधारित फसल उत्पादन व्यवस्था विकसित करें !

इस जनजातीय क्षेत्र की जलवायु बागवानी आधारित फसल उत्पादन व्यवस्था को विकसित करने के लिए सर्वोत्तम है। देश में बागवानी फसलों का वृहद स्तर पर विकास हुआ है परन्तु यहाँ के लोगों को इसका आवश्यक लाभ नहीं मिल पाया, जिसका आमुख कारण क्षेत्र के अनुरुप उचित व एकीकृत बागवानी फसल उत्पादन योजनाओं का अभाव रहा है। प्रायः किसान परम्परागत फसलों के साथ-साथ मिश्रित फसलों के रुप में बागवानी अपनाते हैं। बागवानी में यहाँ की परम्परागत फसलें जैसे आम, अमरूद, नींबू, पपीता व अल्पप्रचलित बागवानी उपयोगी बीजू पेड़-पौधे उगाते हैं या इनके स्वतः ही उगे पौधों को खेती का भाग मानते हैं। इसी तरह सब्जियों व औषधीय पौधों की खेती भी मुख्यतः परम्परागत तकनीकों पर आधारित है। क्षेत्र की परम्परागत अनाज व दलहनी फसलों के साथ-साथ बागवानी फसलें भी आजीविका का साधन हैं।

सीमित खेती उपयोगी जमीन, सिंचाई जल की उपलब्धता, व्यावसायिक जागरूकता तथा बाजार में फल, सब्जी व नगदी फसलों की माँग बढ़ने एवं उचित भाव मिलने से इस क्षेत्र के कुछ किसान परम्परागत व गैर-परम्परागत फसलों की खेती पर ध्यान देने लगे हैं। परम्परागत ढ़ंग से वर्षा आधारित (बारानी) या सीमित सिंचाई तरीकों से खेती द्वारा किसान इन फसलों से पूरा लाभ नहीं ले पा रहे हैं, जिसका प्रमुख कारण क्षेत्रीय जलवायु के अनुरूप फसलों का चुनाव, उन्नत किस्मों एवं उनके बीजों/पौधों का अभाव तथा खेती में वैज्ञानिकता का समावेश नहीं करना प्रमुख है। मेरे द्वारा विगत 25 वर्षों से प्रदेश में बागवानी के विकास हेतु क्षेत्रीय जलवायु को आधार बनाकर बागवानी फसलों की व्यावसायिकता तलाशने के लिए वैज्ञानिक ढ़ंग से फसलों की गुणवत्ता युक्त उत्पादन क्षमता, संसाधनों का भरपूर उपयोग एवं कृषि बागवानी की रूकावटों तथा संभावनाओं जैसे महत्वपूर्ण घटकों का विस्तृत विश्लेषण किया गया है। अध्ययनों के निष्कर्ष के आधार पर बागवानी आधारित खेती के लिए योजनागत क्षेत्रीय प्रारूप तैयार किये हैं जिसमें फल व वानिकी वृक्षों के साथ फसल उत्पादन प्रणालियों का समावेश किया गया है ताकि सुनिश्चित पैदावार के साथ आर्थिक लाभ भी अधिक प्राप्त हो सके।

जनजातीय क्षेत्र के किसान बागवानी आधारित फसल उत्पादन प्रणालियों में परम्परागत व गैर-परम्परागत फसलों का समावेश कर व्यवस्थित व योजनाबद्ध खेती कर कम खेती योग्य जमीन, सीमित वर्षा व सिंचाई जल एवं विषम परिस्थितियों में भी एक सुनिश्चित उत्पादन के साथ अधिक आय भी प्राप्त कर सकते हैं। इस व्यवस्था में किसान को आारम्भ के 2 - 3 वर्षों तक कड़ी मेहनत करनी होती है जिसका प्रतिफल निरन्तर सुनिश्चित आय होता है। बागवानी आधारित प्रक्षेत्र विकास एवं फसल उत्पादन प्रबंधन मुख्यतः वर्णित बिन्दुओं पर केन्द्रित रहेगा :-

1. जिन किसानों के पास 2 - 10 बीघा समतल या उबड़-खाबड़ डूँगरियों वाला एकल जोत है, चाहे वह खेती योग्य या अयोग्य बंजर भूमि है तो वह इसे बागवानी आधारित फसल उत्पादन योजना के रुप में विकसित कर सकता है। इसमें सर्वप्रथम चयनित भू-भाग की बाड़ बंदी, कच्चे पत्थरों की दीवार या तार बंदी करना बहुत ही आवश्यक है जो कि इस योजना का पहला सैद्धांतिक आधार भी है। बाड़ बंदी से ही खेत में फसल उत्पादन के लिए एक उचित वातावरण तैयार करने वाले पेड़-पौधों को लगाया जा सकता है। वर्षा ऋतु के आारम्भ होने के 2-3 महीने पहले खेत के चारों ओर एवं बाड़ बंदी के अन्दर एक मीटर चौड़ी व इतनी ही गहरी खाई बनायी जाती है। वर्षा ऋतु के आारम्भ होते ही बाड़ी बंदी के अन्दर वाली खाई में देशी प्रजातियाँ जैसे आम, इमली, महुआ, करंज, तेंदू, सागवान, बाँस, ताड़, खजूर, रतनजोत, सन्देड़ा इत्यादि के बीजू पेड़ लगावें या फिर इनके बीजों की बुवाई करें ताकि पहले वर्ष में बाड़ बंदी के अन्दर देशी पौधे उग सकें। इन पौधों की लगातार सार सम्भाल करना भी आवश्यक है। यह पेड़-पौधे बड़े होने पर समय अन्तराल आजीविका का सहारा भी बनते हैं।

2. प्रक्षेत्र चुनाव के पश्चात् उसे भूमि की स्थिति एवं श्रेणी के अनुरुप छोटे-छोटे खेतों में तैयार करना होता है। समतल व अच्छी जमीन वाले भू-भाग को अनाज व सब्जियों की खेती के लिए चयनित करना चाहिए तथा इस तरह के खेतों में बागवानी आधारित फसल उत्पादन व्यवस्था विकसित करनी चाहिए। जबकि उबड़-खाबड़, ढलवा, कंकरीली पथरीली बंजर जमीन को परम्परागत व अल्पप्रचलित बागवानी फसलों की खेती करने के लिए विकसित करना चाहिए। अत्यधिक उबड़-खाबड़ डूँगरियों व पहाड़ी भूमि का उचित सर्वेक्षण कर जगह-जगह 2-4 वर्गमीटर भू-भाग को 1-3 मीटर गहरी खुदाई कर उसमें खेती योग्य मिट्टी भर कर मजबूत मेड़ बंदी कर देनी चाहिए व इस तरह तैयार स्थानों पर देशी प्रजातियों के फलवृक्षों जैसे आम, इमली, महुआ, तेंदू इत्यादि की एकल पौध खेती की जा सके।

3. समतल व अच्छी भूमि वाले खेतों में बागवानी फलवृक्षों के पौधे जैसे आम, अमरूद, आँवला, बेल, जामुन, इमली इत्यादि पौधों को कतारों में व्यवस्थित लगाना है जिससे प्रक्षेत्र का स्वरूप बगीचेनुमा बन सके। वर्षा ऋतु के आारम्भ होते ही खेत को जुताई कर तैयार करें। प्रक्षेत्र में बागवानी आधारित फसल उत्पादन प्रणालियाँ दो तरीकों से विकसित की जा सकती है जिसमें पहली सघन व एकल फलवृक्ष की बागवानी के लिए तथा दूसरी फलवृक्ष आधारित फसल उत्पादन व्यवस्थाएं

विकसित करने के लिए जहाँ इनकी एक निश्चित दूरी पर खेत में पट्टिकाएं विकसित करनी होती है। दोनों ही तरीकों में वर्षा आधारित या सिंचित फसल उत्पादन तकनीकियों से प्रक्षेत्र का प्रबंधन करना होता है।

4. फलवृक्षों की एकल व सघन बागवानी के लिए 4 X 4, 6 X 6, 8 X 8 या 8 X 4 मीटर की दूरी पर प्रजातिओं के अनुरुप पौधे लगाकर बगीचा विकसित किया जाता है जहाँ प्रारम्भ के 4-6 वर्षों तक अन्तर-शस्य के रूप में फसल उत्पादन किया जा सकता है। इस प्रणाली में अन्तर-शस्य फसलें मुख्यतः वर्षा व शीतकालीन ऋतु में ही उपयुक्त रहेंगी जिसके लिए सब्जियाँ, दलहनी, तिलहनी व अनाज की फसलें उपयुक्त हैं।

5. जनजातीय क्षेत्र में बागवानी आधारित (आम, इमली, जामुन, आँवला) फसल उत्पादन प्रणालियाँ विकसित करने के लिए प्रक्षेत्र में एक निश्चित परन्तु अधिक चौड़ाई की दूरी पर एकल या दोहरी फलवृक्षों की पट्टिकाएं विकसित करनी होती है। खेत में फलवृक्षों की एकल या दोहरी पट्टिकाऐं 24 या 48 मीटर की दूरी के अन्तराल पर विकसित करनी चाहिए जिससे पट्टिकाओं के बीच की भूमि में फसल उत्पादन प्रणालियाँ अपनाकर लगातार खेती की जा सके। खेत में रेखांकन कर 24 या 48 मीटर की दूरी पर हल्की गहरी नालियाँ एकल या छः मीटर के जोड़े में बनावें तथा इन नालियों में 6 - 6 मीटर की दूरी पर 90 x 90 x 90 सेन्टीमीटर आकार के गड्ढे बनाकर तैयार रखें। बरसात के दिनों में इन गड्ढों में कलमी पौधे लगावें या बीजू पौधे लगाकर उन पर एक वर्ष बाद स्वस्थानिक कलमी बनावें। उत्पादन प्रणालियों में फसलों का चुनाव वर्षा की मात्रा, सिंचाई जल संसाधन की उपलब्धता एवं बाजार मांग के अनुरूप कर संसाधनों का पूरा उपयोग किया जा सकता है।

6. कलिकायन किये पौधों की प्रारम्भ के 3-5 वर्षों तक कटाई-छँगाई कर उचित आकृति भी प्रदान करें। इस तरह व्यवस्थित रूप से विकसित बगीचा 3-4 वर्षों में स्थाई आय के रूप में फलन में आना प्रारम्भ हो जायेगा। इससे खेत में अनुकूल वातावरण भी बनेगा जो पट्टिकाओं के बीच उगाई गई फसलों के लिए लाभदायक होगा।

7. जून में मानसून की बरसात आने की सूचना के साथ ही फलवृक्षों की पट्टिकाओं के मध्य की भूमि को अच्छी तरह से खेत के रूप में तैयार कर लेवें। जून के अंतिम सप्ताह में इन पट्टिकाओं की एक बार गहरी जुताई कर उसमें गोबर की खाद मिलाकर पुनः जुताई के पश्चात् पाटा लगाकर खेत को बुवाई के लिए तैयार रखें। जून के अंतिम सप्ताह से लेकर जुलाई के अंत तक जब भी अच्छी वर्षा हो उसी समय वर्षा आधारित अनाज, दलहनी, तिलहनी व सब्जी फसलों की उन्नत तकनीकियाँ अपनाकर बुवाई करें। बुवाई हेतु कम अवधि में पकने वाली उन्नत किस्मों के बीजों का चयन करें। सिंचाई जल की व्यवस्था होने की स्थिति में उचित सिंचाई तरीकों (बूँद-बूँद व फव्वारा पद्धति) को अपनाकर वर्षा व शीतकालीन फसलों की खेती करना उपयुक्त रहेगा। इसी तरह फलवृक्षों

की चौड़ी पट्टिकाओं वाली भूमि को उत्पादन प्रणालियों के लिए अपरम्परागत फसलें जैसे करोंदा, सीताफल, पपीता, सहजन, व औषधीय तथा फूलों वाले पौधों अथवा चारे की खेती करना भी लाभदायक रहेगा।

8. प्रक्षेत्र आबंधन के अर्न्तगत बुवाई से पूर्व व पश्चात् खेत एवं प्रक्षेत्र की तैयारी तथा वर्षा जल संग्रहण एवं नमी संरक्षण क्रियाओं को अपनावें। वर्षा आधारित फसल उत्पादन के लिए मानसून सूचना का उपयोग एवं सुनिश्चित फसल उत्पादन के लिए जीवनदायी सिंचाई की समय-सारणी तैयार करें। फसलों के साथ-साथ उन्नत किस्मों के बीज का चयन, उपचार तथा समय पर विधिवत बुवाई करना, पौध संख्या निर्धारण, निराई-गुड़ाई, अन्तर-शस्य क्रियाएँ तथा पलवार बिछाना आदि फसल प्रबन्धन कार्य प्राथमिकता से करें। फसल में अच्छी वृद्धि के लिए समुचित खाद व उर्वरक तथा नियामक तत्वों का उपयोग करें एवं फसल सुरक्षा हेतु कीड़े व बीमारियों का समेकित नियंत्रण करें। फलन के समय खेत की गहन रखवाली करें जिससे फसल उत्पाद में प्रथम श्रेणी के फल-फलियों की तुड़ाई व विपणन का ध्यान रखा जा सके। जंगली जानवरों व पशु-पक्षियों से फसल को नुकसान से बचाना भी एक प्रमुख प्रबंधन कार्य है।

जनजातीय क्षेत्र बागवानी व अल्पप्रचलित फसलों की जैवविविधता से भरा हुआ है एवं इसके संरक्षण व संर्वधन की भी पहली प्राथमिक आवश्यकता है चूँकि विगत कुछ वर्षों में प्रोसोपिस जूलिफोरा, लेन्टेना केमेरा, आइपोमिया एवं पारथिनियम प्रजातियाँ वृहद स्तर पर फैल रही हैं जिससे इन पौधों के आस-पास स्थानीय पेड़-पौधे समूल रूप से नष्ट हो रहे हैं। अतः इन विदेशी प्रजातियों के पौधों को रोकना अत्यन्त जरूरी है जिससे स्थानीय पेड़-पौधों को बचाया जा सके।

सारणी 1 : जनजातीय क्षेत्र में बागवानी विकास के लिए फलव क्ष

फलव क्ष	**उन्नत किस्में**
आम	दशहरी, केसर, चौसा, लंगड़ा, स्थानीय प्रजातियाँ कच्ची केरी, अचार व आमचूर के लिए
अमरूद	लखनऊ-49, इलाहाबादी सफेदा, ललित
आँवला	एन.ए.-7, गोमा ऐश्वर्य
बेल	गोमा यशी, एन.बी.-5
इमली	गोमा प्रतीक, प्रतिष्ठान
जामुन	गोमा प्रियंका
बेर	गोला, गोमा कीर्ति
अनार	जालौर सीडलेस, भगवा, अरक्ता, मृदुला
नींबू	बारामासी
सीताफल	स्थानीय प्रजातियाँ
पपीता	स्थानीय व संकर प्रजातियाँ

सारणी 2: जनजातीय क्षेत्र में बागवानी विकास के लिए उपयुक्त सब्जियाँ।

वर्ग	फसलें
कुष्माण्ड कुल	लोकी, नसदार तुरई, चिकनी तुरई, करेला, ककोड़ा, कुन्दरु, कददू, खीरा, तरबूज, खरबूजा, फूट ककड़ी, काचरी, टिण्डा,
फलदार सब्जियाँ	टमाटर, बैंगन, मिर्च, भिण्डी
गोभी वर्गीय सब्जियाँ	फूल गोभी, पत्ता गोभी, गाँठ गोभी
फलीदार सब्जियाँ	ग्वारफली, सेमफली, कुम्बाफली, चवलाँफली
पत्ती वाली सब्जियाँ	मेथी, पालक, धनिया, सुवा, चौलाई, बथुआ, पुदीना
जड़ वाली सब्जियाँ	गाजर, मूली, रतालू, जमीकंद, अरबी
अल्पआचलित सब्जियाँ	सहजन, अरीटा

❑❑❑

फल उत्पादन बढ़ाने की आधुनिक तकनीकें

बीरबल[1], वी.एस. राठौड़[1], एम.एल. सोनी[1], एन.एस. नाथावत[1],
सीमा भारद्वाज[2] एवं एन. डी. यादव[3]
[1]वरिष्ठ वैज्ञानिक, [2]वैज्ञानिक, [3]प्रधान वैज्ञानिक
केन्द्रीय शुष्क क्षेत्र अनुसंधान संस्थान, प्रादेशिक अनुसंधान स्थात्र, बीकानेर

प्रदेश के बहुत बड़े भू-भाग के किसान प्रतिकूल परिस्थतियों में रहकर फल उत्पादन कर रहे हैं। परन्तु कृषक के पूर्ण रूप से परिश्रम के साथ भी उत्साह-वर्धक परिणाम नहीं मिल रहे हैं। तापक्रम की अधिकता-निम्नता, मृदा की कम उत्पादकता, कम मात्रा में पानी उपलब्धता तथा वैज्ञानिक कृषण क्रियाओं की पूर्ण जानकारी न होने के कारण जितना कृषक को फल उत्पादन प्रति इकाई मिलना चाहिये। वह नहीं मिल पा रहा हैं। यदि हम वैज्ञानिक विधियों या आधुनिक विधियों को अपना कर फल उत्पादन करते हैं तो प्रति इकाई उत्पादन बढ़ेगा ही साथ ही साथ प्रदेश व देश के फल उत्पादन में भी किसान भाई अपना योगदान दे सकेगें।

भूमि का चुनाव-बाग लगाने के लिए गहरी, जल निकास वाली दुमट व उपजाऊ जमीन चुनें। भूमि में दो मीटर की गहराई तक किसी प्रकार की सख्त कंकर की परत नहीं होनी चाहिए। बाग लगाने से पूर्व मिट्टी का परीक्षण अवश्य करवा लेना चाहिए। मिट्टी परीक्षण की रिपोर्ट के आधार पर पौधों का चुनाव करना चाहिए। मृदा की जांच के लिये दो मीटर की गहराई तक नमूना लेना चाहिए। पहले नमूने ऊपरी सतह से 15 से.मी. की गहराई तक लेते हैं तथा दूसरा नमूना 15 से 30 से.मी. की गहराई तक लेते हैं। उसके बाद हर 30 से.मी. की दूरी पर 2 मीटर की गहराई तक नमूने लेते हैं तथा लिये गये मिट्टी के नमूनों को परीक्षण हेतु प्रयोगशाला में भेज कर वैज्ञानिकों से रिपोर्ट लेनी चाहिये।

भूमि की उत्पादकता बढ़ाने की आधुनिक तकनीक

किसान भाइयों, मृदा उत्पादकता को बढ़ाने के लिए हमें आधुनिक तकनीकों को उपयोग करना चाहिए। इनमें मुख्य तकनीकें हैं -प्रथम तकनीक में समन्वित पादप पोषक तत्व व्यवस्था है। इसमें पौधों के सभी आवश्यक पोषक तत्वों की पूर्ति रासायनिक उर्वरकों, कार्बनिक खादों, पेड़-पौधों की सूखी पत्तियों, टहनियों आदि तथा जैविक खादों में जैसे-एजोटाबेक्टर व एजोस्पाइरीलम से उपचारित बीज इत्यादि के प्रयोग से सम्भव कर सकते है। परन्तु इनके प्रयोग करने से पूर्व मिट्टी की जांच अवश्य करवा लेनी चाहिए। इन कार्बनिक एवं जैविक खादों के प्रयोग से हम मिट्टी में उपस्थित पोषक तत्वों की एक उचित मात्रा बनाए रखने में सक्षम हो पाते हैं। इन सब उपायों एवं तकनीकों से मृदा की उत्पादकता बनाई रखी जा सकती है।

दूसरी तकनीक में रासायनिक उर्वरकों को सन्तुलित उपयोग आता है। प्रायः सभी किसान भाई रासायनिक उर्वरकों के नाम पर वर्षो से मुख्यतः यूरिया, डी.ए.पी एवं पोटाश का प्रयोग करते आए है। जिनके कारण मिट्टी में सूक्ष्म मात्रा में उपस्थित पोषक तत्व को पौधें द्वारा अवशोषित करने से मिट्टी की उत्पादकता पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ता है। अतः हमें यूरिया, डीएपी एवं पोटेशिक उर्वरकों के अतिरिक्त सूक्ष्म पोषक तत्वों जैसे- जस्ता, मैंगनीज, लौह तत्व, बोरान, तांबा आदि के उपलब्ध रासायनिकों के घोलों का भी उचित मात्रा में प्रयोग करना चाहिए। इसमें यदि पश्चिमी राजस्थान की बलुई मृदा का उदाहरण लें तो पाएंगें कि इस मृदा में कार्बनिक कार्बन, नाइट्रोजन एवं जस्ता तत्वों की बहुत कमी है। अतः यूरिया के साथ-साथ जस्ता युक्त उर्वरकों का भी प्रयोग करना आवश्यक है।

इसके अतिरिक्त तीसरी तकनीक में कार्बनिक प्रयोग विधि को लिया जा सकता है। हमारी भूमि में नाइट्रोजन तत्वों की बहुत कमी है इसलिए दलहन फसलों को फसल-चक्र में अपनाकर इस कमी को पूरा किया जा सकता है क्योंकि दलहन फसलों में वायुमण्डलीय नाइट्रोजन को जड़ों में समाहित करने की विशेष क्षमता होती है। इन फसलों को उगाने से भूमि में नाइट्रोजन तत्वों की मात्रा जमा हो जाती है जो अगली अन्य फसल के लिए उपयोगी होती है। दलहनी फसलों को बगीचे के बीच में पौधो से दूर रखना चाहिए।

इनके अतिरिक्त सूक्ष्मजैविक प्रयोग तकनीक भी है जिसको हम मृदा की उत्पादकता को बढ़ाने में प्रयोग कर सकते हैं। पश्चिमी राजस्थान की मृदा में एजोस्पारटीलम एवं एजोटोबेब्टर नाम सूक्ष्म जीवणु के प्रयोग से भूमि की नाइट्रोजन तत्वों की कमी की पूर्ति की जा सकती है। किसान भाइयों इन जीवों से बने खादों की जानकारी अपने पास के कृषि विज्ञान केन्द्रों उद्यानिकी संस्थानों तथा कृषि अनुसंधान केन्द्रों से लेकर इनका प्रयोग करें ताकि मृदा की उत्पादकता को बढ़ाया जा सके।

उन्नत किस्मों का विकास

शुष्क तथा अर्द्ध शुष्क क्षेत्रों में फलों एवं सब्जियों का उत्पादन बढ़ाने के लिए निम्नलिखित उन्नत किस्मों का विकास किया गया है।

फसल	उन्नत किस्में
बेर	थार सेविका, थार भुभराज, गोभा कीर्ति, गोला, सेव
आंवला	एन.ए.-7,एन.-6, कृष्णा, कंचन, गोमर, ऐश्वर्य
अनार	गणेश, जालौर सीडलेस
बेलपत्र	एन.बी.-5, एन. बी.-9
खजूर	हलावी, जहेदी, खुनेजी, खलास, बरही
खेजड़ी	थार शोभा
लौकी	थार समृद्धि
फूट	ए.एच.एस.-10, ए.एच.एस.-82
तरबूज	थार मानक
काचरी	ए.एच.के.-119, ए.एच.के.-200

गड्ढे खोदना- गड्ढे खोदने का कार्य मई-माह में करना चाहिए तथा फिर खुदे हुए गड्ढे एक माह के लिए खुला छोड़ देना चाहिए। गड्ढा खोदते समय गड्ढे की ऊपरी आधी मिट्टी एक तरफ तथा नीचे की आधी मिट्टी दूसरी तरफ रखनी चाहिए। जून माह में मध्य इस खुदी हुई मिट्टी में 25 किलोग्राम गोबर की खाद, 1 किलोग्राम सुपरफास्फेट तथा 100 ग्राम इण्डोसल्फान 4 प्रतिशत या क्यूनॉलफॉस 1.5 प्रतिशत चूर्ण प्रति गड्ढे के हिसाब से डालें। गड्ढ़ा भरते समय मिट्टी को अच्छी तरह दबाकर भरते हैं तथा गड्ढ़ा धरातल से 15-20 सेमी उठा हुआ रखते हैं। गड्ढ़ा भरने के बाद एक सिंचाई करनी चाहिए अथवा वर्षा ऋतु तक इसी प्रकार छोड़ देना चाहिए। एक दो वर्षा हो जाए और गड्ढों की मिट्टी बैठ जाए, उस समय रोपण का कार्य करते हैं। यदि गड्ढ़े की मिट्टी ज्यादा बैठ गई हो तो अलग से मिट्टी डालकर गड्ढ़े को धरातल भर देते हैं।

फल व क्षों में सघन रोपण

भारत एक कृषि प्रधान देश है। रोजगार-धन्धों के बढ़ते हुए अवसरों के बावजूद आज भी कृषि देश की समस्त आबादी की 70 प्रतिशत भाग की आजीविका का आधार है। पर जोतों के बेहद विखण्डन ने कृषि की भार साधिता को चरमरा दिया है। प्रति इकाई क्षेत्रफल अधिकाधिक उत्पादन प्राप्ति कृषि का एक प्रमुख लक्ष्य के रुप में चिन्हित है। फल वृक्षों में सघन रोपण इस दिशा में एक प्रमुख विधि के रुप में देखा जाता है।

सघन-रोपण-आवश्यक पहलू

- ❑ मूलवृन्त का चुनाव-बौने रहने वाले मूलवृन्त सघन बागवानी के लिये उपयुक्त समझे जाते हैं। इस तरह के मूलवृन्त पर किये गये कलिकायन/कलम बंधन से तैयार पौधे छोटे रहते हैं जो सघन रोपण के लिये वांछित होता है। नींबू वर्गीय फलों (संतरा समेत) के लिये ट्राइफोलिएट ऑरेन्ज, सॉवर ऑरेन्ज, कैरीजो आदि बौने मूलवृन्त है।

- ❑ सांकुर शाख का चुनाव-सांकुर शाख पौधों के उपरी भाग (तना, टहनियाँ आदि) का निर्माण करते हैं। यदि ये कम बढ़ने वाले हो तो पौधे का आकार छोटा रहता है। जो कि लाभान्वित होता है।

- ❑ कटाई-छंटाई-सघन रोपण में काट-छांट कर पौधे को बौना रखा जाता है। शुष्क/अर्द्ध शुष्क क्षेत्रों में अमरुद, अनार, बेर में यह तकनीक कारगर पाया गया है। अमरुद में नयी प्ररोह की 10 से.मी. शीर्ष हटाना फलत के लिये लाभकर है। बेर में प्रत्येक वर्ष पिछले वर्ष की बढ़वार का एक चौथाई भाग छोड़कर शेष तीन-चौथाई भाग हटा दिया जाता है। इसी तरह बेर में काट-छाट की जानी चाहिये।

- ❑ रोपण दूरी-पौधे को कम दूरी पर रोपण करना सघन रोपण की पहली आवश्यकता है। अमरुद, अनार, बेर आदि में यह दूरी 2x 2 मी., 2 x 2 मी., 5 x 5 मी. क्रमशः रखी जा सकती है।

- ❑ वृद्धि अवरोधकों का प्रयोग- CCC 3000 पी पी एम व B-9 5000 पी पी एम घोल का छिड़काव

फल वृक्षों को बौना रखने में उपयोगी है।

वायुव त्ति लगाना तथा उसके लिये उपयुक्त पौधे

वायुवृत्ति लम्बे पौधों की पंक्तियां होती है, जिनकी सघन अवस्था में वायु की दिशा के सम्मुख फल उद्यान के चारों तरफ या उद्यान में कुछ अन्तराल पर इस उद्देश्य से लगाया जाता है कि वे फल-वृक्षों तथा उनकी फसल को गर्म/ठण्डी व तेज हवाओं की क्षति से बचाया जा सके। वायु वृत्ति को ऐसे क्षेत्र में लगाना आवश्यक समझा जाता है, जहां पर गर्म व तेज हवायें अधिक चलती है। ये पौधे अपनी ऊँचाई से चार गुना दूरी तक इन हवाओं से पौधों की रक्षा करने में समर्थ होते हैं। जैसे इनकी ऊँचाई 30 मीटर है तो आगे 120 मीटर तक या 20 पंक्तियों के पौधों की रक्षा इसके द्वारा हो सकती है। अगर फल वृक्ष लगाने का अन्तर 6 x 6 मीटर रखा गया है। अतः वायु वृत्ति को उद्यान में कुछ अन्तर से लगाना चाहिए। वायु वृत्ति में लम्बे पौधों को दो पंक्तियों में एक-दूसरे के बाद लगाना अच्छा समझा जाता है ।

फल व क्षों में जल प्रबन्धन

कृषि में प्रयुक्त होने वाले समस्त आदानों में जल अति महत्वपूर्ण है। यदि राजस्थान के सन्दर्भ में देखें तो क्षेत्रफल की दृष्टि से सबसे बड़े राज्य में कुल जल संसाधन का मात्र 1 प्रतिशत अंश ही उपलब्ध है। राज्य की औसतन वर्षा मात्र 536 मिमी है, जिसमें प्रायः अनावृष्टि तथा यदा-कदा अतिवृष्टि की प्रवृत्ति देखी जाती है। जितना जल कुंओं/नलकूपों से सिंचाई के लिये निकाला जाता है उसकी सम्यक भरपाई नहीं हो रही है। अति दोहन व अपर्याप्त वर्षा के कारण राज्य में 237 विकास खण्डों में से 198 विकासखण्ड मृतप्रायः (डाईजोन) घोषित किये जा चुके हैं, झुंझुनूं, सीकर, नागौर, जयपुर, जालौर, दौसा, पाली से पानी की दोहन दर 200 प्रतिशत से भी अधिक होने से भू-जल भण्डार समाप्ति की ओर है। दूसरी तरफ देश में कुल उपलब्ध जल का 83 प्रतिशत भाग खेती में ही उपयोग किया जाता है। अतः जल को बहुत ही सोच-समझकर कुशल रुप से प्रयोग करने की आवश्यकता है। पौधों का 85-90 प्रतिशत भाग जल से बना हुआ होता है। अतः जल पौधे का अभिन्न अंग है। पौधे की सभी जैविक गतिविधियों को सुचारु रुप से चलाने के लिए जल की अति आवश्यकता है। फसल में पानी की पूर्ति मुख्यतया या तो वर्षा जल से होती है या कृत्रिम जल संसाधनों जैस कुँएं, नहर, व संरक्षित वर्षा जल से होती है। वर्षा जल को भी किसान मुख्यतया दो प्रकार से सिंचाई के लिए संरक्षित कर सकते हैं। एक तो खेत में बांध या मेड़ बनाकर वर्षा जल को खेत में इकट्ठा कर लें तथा ध्यान रखें कि खेत का पानी खेत में ही जमा हो। दूसरे वर्षा जल को बहाव के अनुरुप किसी स्थान पर जमा कर लें, जिससे अधिक से अधिक वर्षा जल खेत के पास जमा हो तथा बाद में फसल की आवश्यकतानुसार उसका सिंचाई के लिए प्रयोग में ले सके।

सिंचाई विधि-अपवाही विधि, क्यारी विधि, कूंड विधि, थाला विधि, छल्ला विधि, कीप विधि, मटका विधि, बूंद-बूंद सिंचाई विधि आदि बगीचे में सिंचाई के लिये प्रयोग की जाती है। कूंड विधि, कीप विधि, मटका विधि आदि छोटी अवस्था में (अधिकतम एक वर्ष तक) फल वृक्षों में पानी की कम जरुरत वाली विधियों में प्रमुख है। तथापि जब वृक्ष पूर्ण बढ़वार ले लेता है, इन विधियों से पौधे की जलमांग पूरी नहीं

होती। अतः व्यावसायिक खेती हेतु आवश्यक है कि फल वृक्षों को कम से कम जल आवश्यकता वाली विधि बूंद-बूंद सिंचाई से सिंचित किया जाये। दिन-प्रतिदिन जल की घटते जा रहे उपलब्धता के मद्देनजर यह वांछित है।

ड्रिप सिंचाई विधि-आज देश में इस विधि द्वारा 65000 हेक्टेयर से ज्यादा भूमि की सिंचाई की जा रही है एवं अंगूर, केला, आम, अमरुद नींबू वर्गीय फल, बेर, आंवला, अनार, चीकू तथा खजूर, आदि फसलों में उच्च पैदावार प्राप्त की जा रही है।

इस विधि में पहले खेत में 50 से 73 से.मी. साईज के पाइप को भूमि में नीचे फैलाते हैं। उस पाइप से 12 से 16 मि.मी. के साइज के लेटरल्स को जोड़ते है तथा उन्हें पौधों की कतार में फैलाते है तथा प्रत्येक पौधे की आवश्यकतानुसार 2 से 8 या 16 लीटर प्रति घण्टा का ड्रिपर लगाया जाता है। इन ड्रिपर से सिंचाई नियत स्थान पर हो जाती है। ड्रिपर की संख्या पौधे के आकार पर निर्भर करती है। इस विधि में अनेक तकनीक बदलाव करके फसल के अनुरुप सिंचाई संभव है। इसमें दो किलोग्राम प्रति सैकेण्ड के दबाव पर पानी बहाया जाता है। इस विधि में तकनीकी जानकारी की आवश्यकता होती है। शुरु में इस पर लागत भी अधिक आती है, लेकिन इस विधि से पानी की काफी बचत (50 से 70 प्रतिशत) होती है तथा ढालू जमीनों पर भी सिंचाई की जा सकती है। पानी आवश्यकतानुसार फसल को दिया जा सकता है। इस विधि को शुष्क क्षेत्र में अनेक फसलों में लाभप्रद पाया गया है

ड्रिप सिंचाई तन्त्र के प्रमुख भाग

1. जल स्त्रोत 2. मोटर तथा पम्प 3. बलुई धत्नक 4. जाली घत्नक 5. दाबमापी 6. दाब नियन्त्रक बाल्व 7. मुख्य पाइप 8. लैटरल 9. एण्ड कैप 10. बाईपास एसेम्बली (अतिरिक्त जल निकास युक्ति)

ड्रिप सिंचाई के लाभ

1. फसल के अनुसार पैदावार में 30-80 प्रतिशत की वृद्धि
2. पानी की बचत (30 से 70 प्रतिशत)
3. उर्वरकों का दक्ष उपयोग
4. कम खरपतवार
5. खारे जल का उपयोग सम्भव
6. उबड़-खाबड़ या ढालू भूमिपर भी सिंचाई के लिए अनुकूलतम

इन विधियों के अलावा भी आवश्यकतानुसार सिंचाई विधियां हैं, जैसे सूक्ष्म फव्वारा विधि, डबल रिंग पद्धति व भूमिगत सिंचाई। डबल रिंग में पौधे से एक मीटर दूरी पर खाई बनाकर उससे सिंचाई की जाती है। सूक्ष्म फव्वारा विधि में छोटे फव्वारों को लेटरल्स पर लगा कर सिंचाई करते हैं।

सिंचाई अवस्था-बेहतर जल प्रबन्धन हेतु यह आवश्यक है कि पौधे को तब-तब पानी आवश्यक उपलब्ध कराया

जाये, जब-जब उसकी क्रान्तिक अवस्था हो। सामान्य तौर पर पौधे से सर्दी में, बरसात में व फूल आने के समय सिंचाई की विशेषकर बसन्त काल व वर्षा काल व शीत ऋतु के मध्य नियमित अन्तराल पर सिंचाई करते रहना चाहिए। फलनशील अवस्था के पौधों में फल आने के एक-दो माह पूर्व की कलिका विभेदन की अवस्था, फल की बढ़वार की अवस्था आदि पर सिंचाई को नियमित उपलब्धता सुनिश्चित की जानी चाहिए।

सिंचाई जल मात्रा-जल के बेहतर प्रबन्धन के लिये यह आवश्यक है कि पौधे को उसके आवश्यकता के अनुरुप सिंचाई दिया जाये। पौधे की जलमांग उसका फैलाव व भूमि और पौधे से संयुक्त रुप से जल की वाष्प उत्सर्जन से हुई हानि पर निर्भर करती है।

जल की गुणवत्ता-सिंचाई हेतु प्रयुक्त जल में लवण के सान्द्रण की जांच कर लेनी चाहिए। यदि जल में लवण का सान्द्रण 2000 पी पी एम या उससे अधिक हो तो ऐसा जल सिंचाई हेतु अनुपयुक्त होता है। जल में कैल्शियम, मैग्नीशियम, सोडियम के लवण क्लोराइड, सल्फेट कार्बोनेट व बाइकार्बोनेट के रुप में पाये जाते हैं। क्लोराईड लवण सल्फेट लवण से अधिक हानिकर होता है। पर कार्बोनेट लवण समस्त लवणों में सर्वाधिक हानिकर होता है। यदि जल में सोडियम लवण की सान्द्रता कैल्शियम व मैग्नीशियम लवणों से अधिक हो तो ऐसे जल को मृदु जल कहते हैं तथा मृदु जल की अपेक्षा सिंचाई के लिये अधिक उपयुक्त होता है।

वर्षा जल संरक्षण एवं संग्रहण- मरुक्षेत्र में जल का अभाव कृषि एवं पशुपालन दोनों को प्रभावित करता है अतः वर्षा जल को टांकों, तालाब, नाडी आदि में एकत्र कर पशुओं को पीने एवं पौधारोपण में प्रयोग किया जा सकता हैं। खेत में सुधारित जुताई विधियों को अपनाकर भी खेत में ही वर्षा जल को संरक्षित किया जा सकता है ।बारानी क्षेत्रों में बहुवर्षी, पेड़ों को घास व फसलों के साथ उगाकर कृषि वानिकी, आदि पद्धतियों को अपनाकर अकाल की स्थिति में भी चारा, लकड़ी एवं अन्न प्राप्त किया जा सकता है। विषम परिस्थितियों में एक उत्पाद के नष्ट होने के बावजूद दूसरे उत्पादन की उत्पादकता बनी रहती है।

पलवार का उपयोग- बाग में नमी संरक्षण के लिए पलवार का उपयोग किया जा सकता है जिससे भूमि का ऊपजाउपन बनाये रखने, मृदा नमी, संरक्षण, मृदा ताप तथा खरपतवार की रोकथाम की जा सकती है। पलवार के लिए काली पॉलीथीन या सूखी घास, भूसा इत्यादि का प्रयोग कर सकते है। काली पॉलीथीन का पलवार बिछाने से खजूर में फल की गुणवत्ता में सुधार देखा गया है। पलवार करने से मृदा जल का वाष्पीकरण कम होता है तथा फसल की पैदावार में वृद्धि होती है।

लाभ-

1. मृदा की नमी बनाए रखते हुए 25 प्रतिशत तक पानी की बचत
2. खरपतवार वृद्धि की रोकथाम
3. पैदावार में लगभग 25 प्रतिशत की वृद्धि
4. जड़ का बेहतर विकास

5. शुष्क भूमि की खेती में प्रभावशाली

6. उत्पाद गुणवत्ता में सुधार

7. फसल में मृदा से होने वाली बीमारियों की रोकथाम के लिये।

खाद-उर्वरक की मात्रा- राजस्थान की बलुई मिट्टी में सामान्यतः पोषक तत्वों की कमी पायी जाती हैं, अतः बेर के अच्छे उत्पादन के लिए पौध रोपण के पश्चात् प्रथम वर्ष में 10 किलोग्राम सड़ी गोबर की खाद तथा 100 ग्राम नाइट्रोजन, 50 ग्राम फास्फोरस एवं 50 ग्राम पोटाश प्रत्येक पौधे को देना चाहिए। इस मात्रा को पांच वर्ष तक दुगुने करके देना चाहिए। पांचवे वर्ष बाद यह मात्रा (50 किलोग्रम, गोबर की खाद, 500 गाम नत्रजन, 250 ग्राम फॉस्फोरस तथा 250 ग्राम पोटाश) स्थिर रखी जाती है। उपरोक्त उर्वरकों को आधी मात्रा एवं गोबर खाद की पूरी मात्रा जुलाई के प्रथम सप्ताह में तथा शेष उर्वरक की बची हुई मात्रा अक्टूबर के महीने में सिंचाई के बाद देना चाहिए। खाद एवं उर्वरक को मुख्य तने से 30 से.मी. की दूरी पर जहाँ तक पौधे का फैलाव हो गोलाई में अच्छी तरह से बिखेर कर मिट्टी में मिला देना चाहिए। क्योंकि फल वृक्षों की अवशोषित जड़ें 30 से 40 से.मी गहराई पर अधिकतम पाई जाती है। ऊपर सुझाए गए खाद एवं उर्वरक की मात्रा दूसरे फल वृक्षों आंवला, बेल, खजूर एवं अनार इत्यादि में भी इसी दर से डाला जाता है। ऊपर वर्णित तथ्यों के अतिरिक्त खाद उपयोग क्षमता को बढ़ाने के लिए तरल रुप में उपस्थित कर उर्वरक को अगर सिंचाई जल के साथ बूंद-बूंद सिंचाई पद्धति द्वारा प्रयोग में लाया जाय तो गहरी जड़ वाले पौधे से भी अच्छा उत्पादन प्राप्त किया जा सकता हे। उच्च घुलनशीलता एवं कम (निम्न) लवण सूची वाले उर्वरकों का चयन करना चाहिए। लवण सूची का महत्व उच्च धनायन विनिमय क्षमता वालो मृदा के सम्बन्ध में बढ़ जाती है। कुछ उर्वरकों को आपस में मिश्रण कर उपयोग करना हानिकारक होता है। जैसे-अमोनिया सल्फेट + पोटेशियम क्लोराईड(पोटाश) X कैल्शियम नाइट्रेट + कोई भी फास्फेट या सल्फेट X मैग्नेशियम सल्फेट + एकल व द्वितीय अमोनियम फास्फेट X फोस्फोरिक एसिड + आयरन, जिंक, तांबा या मैग्नीज के सल्फेट ऊपर वर्णित मिश्रण तैयार करने से मिश्रित उर्वरक की घुलनशीलता कम हो जाती है तथा जो उर्वरक पूर्णरुपेण (100 प्रतिशत पानी में घुलनशील हैं उनका पत्तियों पर छिड़काव करनी चाहिए जिससे शीघ्र व असरकारी प्रभाव देखने को मिलते हैं, एवं छिपी हुई कमी को भी समय पर रोकी एवं पूरी की जा सकती है। पत्तियों पर पर्णीय छिड़काव के लिये जलीय घोल में नत्रजन, फॉस्फोरस एवं पोटेशियम की मात्रा एक से दो प्रतिशत से अधिक नहीं होनी चाहिए। फॉस्फोरस वाले उर्वरक को छिड़काव के रुप में कम ही उपयोग करना चाहिए। क्योंकि ये पत्तियों को नुकसान पहुचाते हैं। पौधे नत्रजन, फॉस्फोरस एवं पोटेशियम को मिट्टी से मुख्यतः 5 : 5 : 1 के अनुपात में अवशोषित करते हैं। सूक्ष्म पोषक तत्वों वाली उर्वरक की मात्रा को सामान्यतः 0.1 से 0.6 प्रतिशत के जलीय घोल बनाकर उपयोग में लाया जाता है। सूक्ष्म पोषक तत्व वाले उर्वरकों की मात्रा को मिट्टी में उपयोग के लिए सामान्यतः 10 से 50 किलोग्राम प्रति हेक्टेयर रखा जाता है। बोरोन उर्वरक का मिट्टी में (मिलाकर) डालना पत्तियों पर छिड़काव से बेहतर माना गया है। मैग्नीज उर्वरक को छिड़काव के रुप में बेहतर माना गया है।

पौध व द्धि नियामकों का छिड़काव :- पौधों में वृद्धि नियामकों की कमी से भी फलों का उचित विकास नहीं होता तथा झड़ जाते है। वृद्धि नियामकों का छिड़काव कर फलों को गिरने से बचाया जा सकता है। नीबूं वर्गीय फलों जैसे किन्नों में 20 पी.पी.एम. प्लानोफिक्स के घोल का छिड़काव कर अपरिपक्व फलों को गिरने से बचा सकते है। फालसा में 60 पी.पी.एम जी.ए. का छिड़काव कर फल उपज बढ़ाया जा सकता है। चीकू में फल गिरने की समस्या अधिक होती है इसमें कुल लगे फलों का 10-12 प्रतिशत तक परिपक्वता तक पहुंचते है शेष फल गिर जाते है पुष्पन के समय तथा उसके 15 दिन बाद एन.ए.ए. या जी.ए.3 (25 पी.पी.एम) घोल का छिड़काव करके फसल प्रतिशत को बढ़ाया जा सकता है। बेर में 10 से 20 पी.पी. एम. एन.ए.ए. का नवम्बर-दिसम्बर माह में दो बार छिड़काव कर फलों को गिरने से बचाया जा सकता है।

प्रशिक्षण की विधि- प्रशिक्षण की अग्रणी विधि में पौधे का मुख्य तना बढने दिया जाता है जिसके चारों तरफ से बहुत सी शाखाऐं निकलकर ऊपर की तरफ फैल जाती हैं इन शाखाओं की लम्बाई नीचे से अधिक व ऊपर से कम होती है। ऐसे फल वाले पौधे सीधे लेकिन उपर से झाडीनुमा हो जाते हैं। इस विधि में पौधे का ढॉचा मजबूत बनकर तैयार होता है जिसमें तेज हवा या आंधी में पौधे टूटते नहीं है। पौधों की लम्बाई अधिक हो जाने से बागवानी के कार्य फलों की तुड़ाई, दवाई का छिड़काव करने में असुविधा होती है। नीचे की शाखाओं को प्रकाश कम मिलता है जिससे उनका विकास कम होने के कारण ये शाखाएं अनुत्पादक हो जाती हैं। फलत पेड़ की ऊपरी शाखाओं पर अधिक होती है जिससे आँधी, तूफान से फलों के गिरने की संभावना बढ़ जाती है।

हमारे प्रदेश के लिये रूपान्तरित विधि अधिक उपयुक्त हैं इस विधि में ऊपर से पौधे को प्रारम्भिक अवस्था में काट दिया जाता है तथा पौधों की लम्बाई कम बढ़ती है। जिससे फल तुड़ाई, छिड़काव तथा काट-छांट में आसानी रहती है। तथा पौधे के सम्पूर्ण भाग में प्रकाश तथा हवा का समावेश होता है जिससे फूल व फलन अधिक मात्रा में होता है।

पौध प्रवर्धन की उन्नत तकनीक -

फलदार पौधों जैसे बेर, आँवला, बेलपत्र, खेजड़ी, शहतूत, लसोड़ा आदि की उन्नत किस्म की पौध तैयार करने के लिए पैच, टी या आई कलिकायन विधियों को अपनाने की सलाह दी जाती है। खजूर में अधोभूस्तारी विधि द्वारा प्रवर्धन किया जाता है।आजकल कई निजी संस्थाऐं खजूर के ऊतक संवर्धन विधि से तैयार पौधें भी उपलब्ध कराये जा रहे हैं।

पौध प्रवर्द्धन में स्वस्थ मूलवृन्त की अहम् भूमिका होती है। ग्रीनहाउस या पॉली हाऊस तकनीक द्वारा मूलवृन्त को कम समय में कीट एवं व्याधि रहित तैयार किया जा सकता है। पौध प्रवर्द्धन में मूलवृन्त पर अच्छी प्रजाति की शांकुर शाख का चश्मा चढ़ा कर या ग्राटिंग द्वारा स्वस्थ पौध तैयार की जाती है।

फलदायी पौधों की नर्सरी तैयार करने में पॉली हाऊस तकनीक काफी उपयोगी है, क्योंकि ग्रीनहाउस या पॉली हाऊस के अन्दर तापमान व आर्द्रता नियन्त्रण के साथ-साथ कार्बन डाई आक्साइड गैस की

सान्द्रता अधिक होने से पौधों की वृद्धि अच्छी होती है। साथ ही पॉली हाऊस में कीट एवं व्याधियों पर भी नियन्त्रण आसानी से पाया जा सकता है। बीज से तैयार किया गया मूलवृन्त जब पेंसिल की मोटाई वाला हो जाता है, तब उस पर चश्मा चढ़ाने का कार्य किया जा सकता है। मूलवृन्त पर सिर्फ एक सीधा तना रखते हैं। बगल से हुए फटाव का समय-समय पर निकालते रहना चाहिए। बडिंग का कार्य मार्च माह में या जुलाई अगस्त-सितम्बर माह में किया जा सकता है। बडिंग या ग्राटिंग करने के एक माह बाद शांकुर शाख का मूलवृन्त से जुड़ाव हो जाता है। 6-8 माह पश्चात् कलिकायन की जगह से हुए फटाव को रखकर मूलवृन्त से आये सभी फुटाव को हटा देना चाहिए। 8-12 माह पश्चात् पॉली हाऊस तकनीक से पौधा बाग में रोपण हेतु तैयार हो जाता है।

ग्रीनहाउस या पॉली हाऊस के अन्दर तैयार मूलवृन्त के ऊपर अच्छी प्रजाति की शांकुर शाख लेकर ग्राटिंग या बडिंग करके पौधे तैयार किये जाते हैं। खुले स्थान पर बडिंग या ग्राटिंग कार्य करने की अपेक्षा ग्रीनहाउस या पॉली हाऊस में पौधे तैयार करने पर सफलता का प्रतिशत बढ़ जाता है। साथ ही पौधों की वृद्धि भी अच्छी होती है।

मूल्य संवर्धन तकनीकों का विकास-शुष्क क्षेत्रीय फलों व सब्जियों से विभिन्न मूल्य संवर्धन तकनीकों का विकास किया गया है जिससे इनके नुकसान को कम किया जा सकता है।

फसल	मूल्य सवंर्धित उत्पाद
आँवला	मुरब्बा, च्यवनप्राश, अचार, पाउडर, ज्यूस, चटनी
खजूर	छुआरा, पिण्ड, खजूर, बिस्कुट, चटनी
बेलपत्र	ज्युस, टॉफी, शेक, शर्बत
अनार	ज्युस, अनारदाना
बेर	सूखे बेर, जैम, स्कवैश
केर	अचार, चटनी, पंचकूटा
खेजड़ी	सूखी सांगरी, अचार, पंचकूटा
काचरी	सूखी काचरी, पाउडर, चटनी, अचार, पंचकूटा
फूट	चटनी, पाउडर, मगज दाने, फोफले
तरबूज	ज्यूस, मगजदाने, भुने दाने
लसोड़ा	अनार
ग्वारपाठा	अचार, लड्डू

इस प्रकार फलों एवं सब्जियों के महत्व व विकास को समझते हुए किसान भाई "बाड़ी से बाजार" तक के सफर में विभिन्न वैज्ञानिक तकनीकों का उपयोग करके इनसे अधिक उत्पादन तथा लाभ अपने सीमित संसाधनों से प्राप्त कर सकते हैं।

कृषि उत्पादकता वृद्धि हेतु जैविक खाद एवं जैव उर्वरक प्रबंधन

एम.एल. सोनी[1], एन.डी. यादव[2], सीमा भारद्वाज[3] व बीरबल[1]

[1]वरिष्ठ वैज्ञानिक, [2]प्रधान वैज्ञानिक, [3]वैज्ञानिक

केन्द्रीय शुष्क क्षेत्र अनुसंधान संस्थान, प्रादेशिक अनुसंधान स्थात्र, बीकानेर

मृदा की उर्वरता व कृषि उत्पादकता को बनाए रखने के लिए आवश्यक है कि पोषक तत्वों के सभी उपलब्ध स्त्रोतों से मृदा में पोषक तत्वों का एक सामन्जस्य बना रहे । साथ ही मृदा की भौतिक, रासायनिक और जैविक गुणवत्ता पर कोई हानिकारक प्रभाव न डाले व मृदा द्वारा उच्च आर्थिक उत्पादन लिया जा सके। सघन खेती के दौर में हर कृषक का यह उद्देश्य है कि वह फसल की अधिक से अधिक उपज लें । किसान उपज बढ़ाने हेतु मृदा में मुख्यतः नाइट्रोजन, फास्फोरस व पोटाश की मात्रा तो डालतें है किन्तु इनके साथ में अन्य पोषक तत्वों को प्रदान नही करतें। इस कारण से मृदा में गौण तथा सूक्ष्म पोषक तत्वो की कमी आती जा रही है, जिनका प्रभाव फसलो की उपज पर भी पड़ रहा है। कृषि में रासायनिक उर्वरकों के अन्ध ाधुन्ध प्रयोग से मिट्टी में कार्बनिक पदार्थों की कमी तथा मृदा स्वास्थ्य पर इसका कुप्रभाव पड़ रहा है। इन रसायनों के दुष्परिणाम यथा पर्यावरणीय प्रदूषण, भूमि संरचना में परिवर्तन, मिट्टी में पाये जाने वाले लाभदायक सूक्ष्म जीवों की संख्या में कमी तथा पैदावार व गुणवत्ता में कमी के रूप में परिलक्षित हो रहे है। परिणामस्वरूप अच्छी किस्मों के बीज को प्रयोग करने के बावजूद भी वांछित उत्पादन नहीं मिल पा रहा है। अतः उच्च उत्पादकता व उच्चतम उत्पादन के लिए पोषक तत्वों का संतुलित प्रयोग आवश्यक होगा। इसके लिए भूमि में पोषक तत्वों की आपूर्ति समन्वित तरीके से यानी जैविक खाद (कम्पोस्ट, गोबर व हरी खाद), जैव उर्वरकों एवं रासायनिक उर्वरकों के संतुलित प्रयोग द्वारा की जाए ताकि वांछित उपज लक्ष्य हासिल हो सके और मृदा की उर्वराशक्ति भी क्षीण न हो ।

कार्बनिक पदार्थो द्वारा लाभ

1. खेती में कार्बनिक पदार्थो का प्रयोग रासायनिक उर्वरकों की अपेक्षा बेहत्तर होता है क्योंकि रासायनिक उर्वरकों के प्रयोग से पोषक तत्वों की लगभग आधी मात्रा ही पौधों को प्राप्त होती है जबकि कार्बनिक पदार्थो द्वारा पौधों को पोषक तत्व धीमी गति से आवश्यकता अनुसार प्राप्त होते है ।
2. रासायनिक उर्वरकों के लगातार प्रयोग से मिट्टी में पोषक तत्वों की कमी हो जाती है, जबकि कार्बनिक पदार्थो के उपयोग से मृदा की उर्वरता बनी रहती है ।
3. कार्बनिक पदार्थो के प्रयोग से वातावरण में प्रदूषण में कमी आती है ।

4. कार्बनिक पदार्थ द्वारा मृदा की भौतिक, रासायनिक व जैविक क्रियाओं में सुधार होता है, जबकि रासायनिक उर्वरकों द्वारा मृदा गुणों का ह्रास होता है ।

5. कार्बनिक पदार्थो द्वारा मृदा स्वास्थ्य के साथ-साथ फसलों की गुणवत्ता बढ़ती है जिससे मानव स्वास्थ्य बेहत्तर रहता है ।

6. फसल उत्पादन में वृद्धि करना।

7. कार्बनिक खाद के प्रयोग से मिट्टी में लाभदायक जीवों जैसे केंचुए, लाभदायक जीवाणुओं की संख्या आदि में वृद्धि होती है जिससे मृदा की उर्वरा शक्ति बढ़ती है ।

8. कार्बनिक पदार्थ के प्रयोग से मिट्टी उपजाऊ तथा दानेदार बनी रहती है जो कि नमी बनाये रखने, वायु संचार बढ़ाने तथा प्रचुर मात्रा में पोषक तत्व बनाये रखने में सहायक होती है ।

9. कार्बनिक पदार्थ के प्रयोग से क्षारीय व अम्लीय मृदा में सुधार हो जाता है जिसके कारण इन मृदाओं का बाजार मूल्य बढ़ जाता है ।

कार्बनिक पदार्थो का प्रयोग अल्पकालीन आर्थिक लाभ के स्थान पर दीर्घकालीन एवं स्थाई पारिस्थितिकी तंत्र के लिए उपयुक्त है ।

कार्बनिक पदार्थो का म दा में संभरण के स्रोत

कृषि भूमि में कार्बनिक पदार्थों की कमी को अनेक विधियों से पूरा किया जा सकता है, जिनमें निम्नलिखित मुख्य है-

1. फार्मयार्ड खाद का उपयोग
2. कम्पोस्ट का उपयोग
3. मिंगनी की खाद
4. गोबर का कर्दम
5. हरी खाद

1. फार्मयार्ड खाद का उपयोग

गांव में जो फार्मयार्ड खाद तैयार की जाती है उसमें गोबर, यार्ड से निकली ऊपरी मृदा, घर का कचरा और खेत के अनेक बेकार पदार्थों इत्यादि का सम्मिश्रण होता है। प्रायः ऐसा देखा गया है कि किसान इस सामग्री का खुले मैदान में ढेर लगा देते हैं और अपघटन की क्रिया के लिए उसे वैसे ही लगभग छः महीने तक खुला छोड़ देते हैं। इस प्रकार से इस सामग्री को रखने पर अनेक घटक अच्छी तरह से अपघटित नहीं हो पाते। शायद ही इस ढेर पर कभी पानी डाला जाता है। वर्षा के समय घुलनशील तत्व पानी के साथ बह जाते हैं। इसलिए यह सामग्री जो कि खाद के रूप में मिलायी हाती है, गुणवत्ता की दृष्टि से

इतनी अच्छी नहीं होती है। इस प्रकार से बनाई गई खाद कार्बन-नत्रजन का अनुपात 30 : 1 से अधिक हो सकता है जो कि फसल की बुआई के समय इस अनुपात से कम (10-15 : 1) होना चाहिए। इस अनुपात में कार्बनिक नत्रजन का खनिजीकरण जल्दी होकर फसल को उपलब्ध हो पाता है।

गोबर की खाद बनाने के लिए आवश्यकता अनुसार उचित आकार का गड्ढा किसी ऊँचे स्थान पर खोद लेना चाहिए जहां पानी नहीं भरता हो। गड्ढे की गहराई 1.25 मीटर से अधिक नहीं रखें क्योंकि विघटन करने वाले जीवाणुओं को अधिक गहराई पर ऑक्सीजन नहीं मिल पाती है और सड़न प्रक्रिया सुचारू रूप से नहीं चलती है। गड्ढे की लम्बाई-चौड़ाई आवश्यकतानुसार 3 x 4 मीटर रखना चाहिए। गड्ढे का फर्श पक्का हो तो अच्छा रहता है, इससे पोषक तत्व रिस कर नीचे नहीं जा पाते। गड्ढा तैयार हो जाने पर उसमें मल-मूत्र, गोबर व बिछावन प्रतिदिन डालते रहना चाहिए। जब गड्ढा भरकर भूमि से आधा मीटर ऊँचा हो जाये तो 15 से.मी. मिट्टी की मोटी तक से ढक देना चाहिए। इस प्रकार 6 महीने में गोबर की खाद बनकर तैयार हो जायेगी। अच्छे गोबर की खाद में नत्रजन, स्फुर व पोटाश क्रमशः 0.5, 0.25 व 0.5 होती है। गोबर की खाद की गुणवत्ता बढ़ाने के लिये खाद में प्रति टन 20 किग्रा. फास्फोरस मिलाना चाहिए इससे खाद में अमोनिया रूप में होने वाली हानि कम होगी तथा फॉस्फोरस की उपलब्धता बढ़ेगी।

खाद डालने का समय : फसल बोने से लगभग दो सप्ताह पहले खाद को डाल देना चाहिए।

खाद की मात्राः गोबर खाद की मात्रा, खाद उपलब्धता, मिट्टी का प्रकार, फसल की किस्म, वर्षा तथा नमी व किसान की खाद खरीदने की क्षमता पर निर्भर करती है, किन्तु साधारणतः दस टन प्रति एकड़ खाद सस्य फसलों के लिए व 20 टन प्रति एकड़ खाद सब्जियों के लिये पर्याप्त होती है। गृहवाटिका में 5-8 कि.ग्रा. गोबर की खाद प्रति वर्ग मीटर की दर से पर्याप्त रहती है।

2. कम्पोस्ट

कम्पोस्टिंग उस प्रक्रिया को कहते हैं जिसमें फार्म के अपशिष्ट पदार्थ जैसे गोबर और पशुओं के मूत्र को पत्थर अथवा ईंटों के बने गड्ढों में इकट्ठा करके भूसा या अन्य कृषि छीजन बिछाकर उसके पोषक तत्वों को सुरक्षित रखा जाता है। कम्पोंस्टिग की कई प्रचलित तकनीकें हैं जैसे कि इन्दौर विधि जिसमें पानी की अधिक जरूरत रहती है। इस विधि में फसल अवशेष को गोबर के साथ ऊँचे स्थानों पर परतों में डालकर सड़ाया जाता है। नमी बनाऐ रखने के लिए निरन्तर पानी का छिड़काव करना चाहिए । लगभग तीन माह में खाद बनकर तैयार हो जाती है। कम्पोस्ट खाद को बैंगलोर विधि से बनाने में छहः से आठ माह का समय लगता है। जिन क्षेत्रों में कम वर्षा होती है वहां यह विधि अधिक प्रचिलित है क्योकि इसमें कम पानी का उपयोग होता है । इसमें फसलों का कचरा आदि परतों में भरा जाता है। भरे हुए गड्डे को जैविक पदार्थ से ढककर सड़ने हेतु छोड़ दिया जाता है।

नैडेप विधि में जमीन के उपर एक संरचना बनाई जाती है जिसका आकार पांच फुट चौड़ा रखा जाता है व उंचाई लगभग बारह फुट रखी जाती है। संरचना में चारों तरफ आयताकार छिद्र रखे जाते हैं । इस संरचना में पहली परत सूखे कचरे की व दूसरी परत मिट्टी की डाली जाती है, जिस पर लगभग

10 किग्रा गोबर एवं गौ मूत्र को 100 लीटर पानी में मिलाकर छिड़क दिया जाता है। यह क्रम तब तक दोहराना चाहिए जब तक सरंचना पूर्ण रूप से भर न जाए। लगभग 11-12 तहों में टंकी भर जाती है और फिर उसे गोबर के उपर 3 इंच की मिट्टी की तह जमा दी जाती है और उसे गोबर के मिश्रण से व्यवस्थित रूप से लीप दिया जाता है इस पर दरारे पड़ने पर पुनः लीप दिया जाता है।

लगभग 15-20 दिन में खाद सामाग्री सिकुड़कर टैंक के ऊपरी स्तर से नीचे दब जाती है। तब फिर से वनस्पतिक पदार्थ, गोबरघोल और घनी मिट्टी की परतो से वापस संरचना को सतह से 1.5 फुट उंचाई तक पहले जैसी ही भरकर 3 इंच की मिट्टी की परत देकर लीपकर सील कर देना चाहिएं ।

अन्य विधिंयां जो भारत में प्रचलित है जैसे रायपुर विधि, फास्को कम्पोसटिंग विधि, चारा गड्डा विधि, ढेर पद्धति, बायोंडंग पद्धति, बायोडंग वर्मीकम्पोस्टिंग विधि आदि ।

कम्पोस्ट को खेत में डालतें समय यह ध्यान रखना चाहिए कि बुवाई करने से पहले कम्पोस्ट की प्रस्तावित मात्रा 15.-20 टन फसलों में तथा 50 टन सब्जियों खेंतों में चारों तरफ से कम्पोस्ट की बराबर मात्रा डाल कर तुरन्त जुताई कर देनी चाहिए अन्यथा जुताई न करने के अभाव मे खाद डालकर छोड़ देने से पोषक तत्व का ह्रास हो जाता है। उपस्थित जीवाणु नष्ट होने लगते है इसलिए खेत में डालने के साथ ही जुताई कर देने से खाद खेत में अच्छी तरह मिल जाता है।

कम्पोस्ट खाद की पोषक क्षमता में वृद्वि करने के लिए यह आवश्यक है कि अगर कचरा अम्लीय है तो उस पर बारीक पिसा हुआ डोलोमाइट, कैल्शियम कार्बेनेट, मैग्नीशियम कार्बोनेट इत्यादि डाल देना चाहिए। वही फास्फोरस की मात्रा बढाने हेतु रॉकफास्फेट मिलाने से फास्फोरस के अलावा केल्शियम व अन्य पोषक तत्व खासकर सूक्ष्म पोषक तत्वों की मात्रा में भी वृद्वि करता है। इसमें फास्फोरस तत्व की मात्रा बढ़ाने हेतु पी एस वी कल्चर मिलाकर तत्व की मात्रा बढ़ाई जा सकती है। वही नाइट्रोजन तत्व की मात्रा बढ़ाने हेतु इसके स्थिरीकरण के लिए जीवाणु खाद जैसे राइजोबियम, एजेटोबवटर व एजेस्पापइरीलम कल्चर मिलाकर नाईट्रोजन की मात्रा बढ़ाई जा सकती है।

अच्छी तरह से अपघटित कम्पोस्ट सामग्री मिलाने से रेतीली मृदा की जलधारण क्षमता बढ़ती है। कम वर्षा वाले क्षेत्रों में सात से बारह गाड़ी खाद का उपयोग होना चाहिए। यदि यह पर्याप्त मात्रा में उपलब्ध न हो तो प्रति वर्ष खेत के तिहाई या चौथाई भाग में क्रमानुसार खाद डालनी चाहिए। इस तरह से तीन या चार वर्ष में खेत के प्रत्येक भाग को खाद उपलब्ध होती रहेगी।

वर्मी कम्पोस्ट (केंचुआ खाद) :

केंचुआ खाद बनाने हेतु कुछ विशिष्ट प्रकार के केंचुए जैसे इसिना फोटीडा, यूड्रिलिस युगेनी व पेरियेानिक्स एक्टकेंवटस इत्यादि, इस्तेमाल किए जाते है। वर्मी कम्पोस्ट बनाने हेतु अपशिष्ट, कार्बनिक पदार्थ जैसे गोबर कचरा सड़ी गली सब्जी, घास-फूस इत्यादि को केंचुओं को खिलाने हेतु प्रयोग की जाती है । हमारे देश में प्रतिवर्ष लगभग 202 करोड़ टन पशु गोबर एवं 32 करोड़ टल फसल अवशेष पैदा होता है। जिसका प्रयोग वर्मी खाद बनाने हेतु किया जा सकता है। लगभग 10 हजार केंचुए 10 टन कचरे को प्रतिमाह

वर्मीकम्पोस्ट में बदल सकते है । इनके द्वारा निगली गई मिट्टी, गोबर तथा अन्य पदार्थ इनके शरीर में पाचन के दौरान अच्छी तरह पीसकर मिल जाते है तथा शरीर से बाहर निकाल दिये जाते है इससे भूमि की दशा सुधरती है ।

वर्मी कम्पोस्ट में लगभग 2-3 प्रतिशत नाइट्रोजन, 1.8 से 2.0 प्रतिशत फास्फोरस तथा 1.28 से 1.50 प्रतिशत पोटाश होता है जो गोबर की खाद की तुलना में काफी अधिक है । वर्मी कम्पोस्ट की गुणवत्ता सामान्य खाद व रासायनिक उर्वरक की तुलना में 10-12 गुणा ज्यादा है ।

वर्मी कम्पोस्ट से लाभ :

1. रासायनिक उर्वरकों की अपेक्षा वर्मीकम्पोस्ट के प्रयोग से उत्तम गुणवत्ता का उत्पाद मिलता है ।
2. इसके प्रयोग से मृदा की भौतिक, रासायनिक व जैविक गुणों में सुधार होता है जिससे मृदा की जल धारण क्षमता व पोषक तत्वों की उपलब्धता बढ़ जाती है ।
3. वर्मी कम्पोस्ट का प्रभाव मृदा में कई वर्षो तक बना रहता है ।

वर्मी कम्पोस्ट बनाने की विधि :

1. क्योंकि केंचुए हमेशा अंधेरे में ही सक्रिय होते है ।अतः वर्मी कम्पोस्ट बनाने हेतु किसी छायादार स्थान का चयन करना आवश्यक है । यदि छाया उपलब्ध न हो तो ऐसे स्थान पर जहां केंचुआ खाद बनानी है वहां 5 मीटर चौड़ा व 2 मीटर ऊचा छप्पर तैयार करें ताकि उपयुक्त तापमान एवं छाया रखी जा सके ।तत्पश्चात 1.0 मीटर चौड़ा तथा 0.5 मीटर गहरे गढ्ढें की क्यारियां बनायी जाती है। क्यारियों की लम्बाई सुविधानुसार रखें ।
2. क्यारियों में सर्वप्रथम 15 से.मी. मोटी परत फसल अवशेष (बाजारा, ज्वार, मक्का व अन्य अवशेष) की बिछाकर उसके ऊपर 5 से 10 सेमी गोबर की परत बिछाकर गीला कर दें तथा इसे दो दिन छोड़ दे ।
3. इस गिली तह पर 1 इंच मोटी वर्मी कम्पोस्ट की परत जिसमें पर्याप्त केंचुए हो, डाल दी जाती है अथवा 100-200 केंचुए प्रति मीटर लम्बाई के अनुसार फैला दें । (10 x 3 x 1) फीट की क्यारी हेतु लगभग 2 किलों केंचुए चाहिए । इस परत पर पुनः एक परत फसल अवशेष व गोबर की लगा दें ताकि सबसे निचली सतह से ऊपरी सतह की ऊंचाई डेढ़ फुट हो जाए । प्रत्येक क्यारी को गीले बोरों से ढ़क दे व लगभग 30 प्रतिशत तक नमी बनाए रखें ।
4. 45-60 दिनों पश्चात् जब वर्मीकम्पोस्ट तैयार हो जाए जो ऊपर की परत को हटाकर खाद इकट्ठा कर ले एवं बारीक चलनी से छानकर खाद व केंचुए अलग कर दें । ढेर का रंग काला होना व केंचुओं का ऊपरी सतह पर आना वर्मीकम्पोस्ट तैयार होने का सूचक है ।

उपर्युक्त वातावरण में केंचुए प्रायः चार सप्ताह में वयस्क होकर प्रजनन करने लायक हो जाते है ।वयस्क केंचुआ एक सप्ताह में 2-3 कोकुन देने लगता है एवं एक कोकुन में 3-4 अण्डे होते है । इस प्रकार प्रजनक केंचुए द्वारा 6 माह में 250 केंचुए पैदा कर सकता है ।

वर्मीकम्पोस्ट के खेत में प्रयोग की दर

वर्मीकम्पोस्ट को 5 से 6 टन प्रति हैक्टर की दर से खाद्यान्न फसलों में 8 से 10 टन प्रति हैक्टर की दर से सब्जी फसलों में व आवश्यकतानुसार 5 से 10 किलोग्राम प्रति पेड़ फलदार वृक्षों में प्रयोग करें ।

3. मिंगनी की खाद

पश्चिमी राजस्थान में भेड़ बकरियों को ग्रीष्म ऋतु में खेत में बैठाने की आम प्रथा है। कहा जाता है कि हजार भेड़ों को खेत में बैठाने पर एक रात में गोबर की खाद के तुल्यांक 400 मन खाद प्राप्त होती है। ऐसा विशेषतौर पर उन मृदाओं में किया जाता है जहां मृदा खारी है। इस खाद को जल्दी ही मृदा में मिला दिया जाना चाहिए जिससे इसके उर्वरक तत्वों को अधिक क्षति न हो।

4. गोबर का कर्दम

गोबर गैस प्लांट से गैस को प्राप्त करने के बाद बचा हुआ पदार्थ कर्दम कहलाता है। इस कर्दम को गोबर गैस प्लांट से निकालकर यदि प्राकृतिक अवस्था में सुखाया जाय तो उसमें मौजूद पोषक तत्व, जैसे नत्रजन की अमोनिया गैस के रूप में बहुत हानि होती है। यह हानि 10-15 प्रतिशत तक हो सकती है। इस हानि को बचाने के लिए इस कर्दम को किसी गड्ढे में इकट्ठा किया जाना चाहिए। इसे वापस गैस प्लांट में भी काम में लिया जा सकता है। अर्द्धशुष्क पदार्थ जो गड्ढे में बच जाता है उसे कम्पोस्ट के गड्ढे में डाल दिया जाना चाहिए तथा खाद बनाकर आवश्यकतानुसार काम में लिया जा सकता है। इस गोबर के कर्दम को मृदा में मिलाने पर जैविक कार्बन की मात्रा 0.15 प्रतिशत तक बढ़ाई जा सकती है।

5. हरी खाद

जहां तक हरी खाद का सम्बन्ध है, साधारणतया बारानी खेती के अन्तर्गत आने वाले क्षेत्रों में हरी खाद राजस्थान में कहीं भी नहीं उगाई जाती। इसका मुख्य कारण यह है कि हरी खाद बोने से खरीफ में बोई जाने वाली नकदी फसल की हानि होती है। हरी खाद की फसल के बाद मृदा में नमी की कमी हो जाने के कारण रबी की फसल भी नहीं ली जा सकती है।

जैव उर्वरक

फसलों द्वारा किए जाने वाले प्राथमिक मुख्य पोषक तत्वों (नत्रजन, फास्फोरस व पोटास) में से नत्रजन का सर्वाधिक अवशोषण होता है । भूमि में डाले गये नाइट्रोजन का 30-35 प्रतिशत हिस्सा ही फसलों द्वारा उपयोग में लिया जाता है । शेष 65-70 प्रतिशत भाग वायुमण्डल में ह्रास हो जाता है । यदि इसके मूल्य का अवलोकन करें तो यह कीमत काफी अधिक है। देश में ज्यादातर किसान मध्यम श्रेणी के है जिनकी उर्वरक खरीदने की क्षमता बहुत कम है ।अतः फसलों की आवश्यकता की पूर्ति के लिए रासायनिक उर्वरकों

पर पूर्णतया निर्भर नहीं रहा जा सकता । अतः नाईट्रोजन की पूर्ति हेतु रासायनिक उर्वरकों के साथ-साथ अन्य वैकल्पिक स्त्रोतों का उपयोग न केवल आर्थिक दृष्टि से महत्वपूर्ण होगा बल्कि मृदा की उर्वराशक्ति बनाये रखने व वायुमण्डल संरक्षण में भी योगदान रहेगा ।

वायुमण्डल में लगभग 78 प्रतिशत मुक्त नाइट्रोजन गैस सक्रिय अवस्था में उपस्थित है । इस मुक्त नाइट्रोजन का स्थिरीकरण मृदा में व्याप्त सुक्ष्म जीवाणु, नील हरित शैवाल, एजोला, आदि द्वारा किया जाता है । जिसे पौधे अपनी वृद्धि हतु उपयोग कर लेते है तथा 15-20 प्रतिशत तक उत्पादन वृद्धि में सहायता करते हैं ।

सूक्ष्म जीवों की सक्रियता के लिए अनुकूल दशाएंः

1. जीवांशु पदार्थ की उपस्थिति ।
2. मृदा में नमी की मात्रा ।
3. समुचित वायु संचार ।
4. मृदा पी.एच. उदासीनता ।

जैव उर्वरक/जीवाणु खाद क्या है ?

प्राकृतिक रूप से मिट्टी में कुछ ऐसे जीवाणु पाये जाते हैं जो वायुमण्डलीय नाइट्रोजन को अमोनियम नाइट्रेट में व स्थिर फास्फोरस को घुलनशील अवस्था में बदल देते है । जीवाणु खाद ऐसे ही सूक्ष्म जीवों का कोयला, पीट अथवा लिग्नाइट के चूर्ण में मिश्रण है, जो वायुमण्डल में उपस्थित नाइट्रोजन तथा मृदा में व्याप्त स्थिर फास्फोरस को पौधों को उपलब्ध करवाते हैं ।

नाइट्रोजन उपलब्ध कराने वाले जैव उर्वरक

राइजोबियम कल्चर

ये सहजीवी जीवाणु है जो केवल दलहनी फसलों के लिए प्रभावी है। इस प्रकार के कल्चर में 1 ग्राम में लगभग 10 करोड़ से भी अधिक राइजोबियम जीवाणु होते है । अलग-अलग दलहनी फसलों के लिए विशेष कल्चर उपलब्ध है जिनके प्रयोग से 50 से 125 कि.ग्रा. प्रति हैक्टर तक नाइट्रोजन उपलब्ध हो जाती है, जो कि 15-20 प्रतिशत फसल उत्पादन में सहायक है । ये जीवाणु छोटे-2 हल्के गुलाबी रंग की जड़ ग्रंथियों में सहजीवी रूप से रहते है। उच्च गुणवत्ता वाले कल्चर के उपयोग से गुलाबी रंग की ग्रंथियां अधिक बनती है जो कि सीधे-सीधे फसल उत्पादन की वृद्धि में सहायक है ।

एजोटोबेक्टर

यह जीवाणु असहजीवी है तथा मुख्यतः सब्जियों, धान, गेंहू, कपास, सूरजमुखी, बाजरा, सरसों,

मक्का आदि फसलों के लिए प्रयोग किया जाता है । इसके उपयोग से 10-30 प्रतिशत तक फसल उत्पादन में वृद्धि देखी गयी है । उपरोक्त के अतिरिक्त नाइट्रोजन उपलब्ध कराने वाले जीवाणुयुक्त कुछ जैव उर्वरक जैसे एजोस्पाइरिलम (मोटे खाद्यान्न तथा धान के लिए) तथा एसिटोबैक्टर (गन्ने के लिए) का भी देश में उत्पादन किया जा रहा है, परन्तु इनकी उपलब्धता सीमित है । कुछ कवक युक्त जैव उर्वरक जैसे एस्परजिलस एवं पैनीसिलयम (असहजीवी), माइकोराइजा (सहजीवी) एवं एजोला फर्न आदि भी पौधों को नाइट्रोजन उपलब्ध कराते है, परन्तु हमारे देश में इनका सीमित उत्पादन होने के कारण प्रचलन बहुत कम है ।

नील हरित शैवाल

ये शैवाल मिट्टी के सदृश्य सूखी पपड़ी के टूकड़ों के रूप में होते हैं । ये धान की फसल के लिए जिनमें पानी भरा रहता है, के लिए उपयुक्त है। ये जीवाणु 20-30 कि.ग्रा. प्रति हैक्टर नाइट्रोजन उपलब्ध कराने तथा 10-15 प्रतिशत फसल उत्पादन बढ़ाने में सक्षम है। इनके प्रयोग से लगभग 30 प्रतिशत तक रासायनिक उर्वरकों की बचत की जा सकती है ।

फास्फोरस उपलब्ध कराने वाले जैव उर्वरक

फास्फेटिका (पी.एस.बी.) : इस प्रकार के जैव उर्वरक मृदा में उपस्थित अघुलनशील फास्फोरस को घुलनशील कर पौधों को उपलब्ध कराते है । इनके प्रयोग से 25-30 कि.ग्रा. फास्फेट प्रति हैक्टर की दर से पौधो को उपलब्ध कराया जा सकता है। ये जीवाणु मृदा में कुछ कार्बनिक अम्ल (मैलिक एसिड, ग्लॉऑक्जेलिक एसिड, यूमेरिक एसिड, साइट्रिक एसिड आदि) उत्पन्न करते है जिसमें फास्फोरस की घुलनशीलता बढ़ जाती है ।

जैव उर्वरकों की प्रयोग विधि

नील हरित शैवाल तथा एजोला फर्न को छोड़कर शेष सभी उर्वरकों का कार्य जड़ क्षेत्र है ।अतः समुचित लाभ लेने हेतु इन जीवाणु खादों को पौधों की जड़ों तक पहुंचाना आवश्यक है । नाइट्रोजन प्रदान करने वाले जैव उर्वरक (राइजोबियम, एजेटोबैक्टर) के साथ फास्फेट उपलब्ध कराने वाले (पी.एस.बी.) जैव उर्वरकों को साथ-साथ पानी में घोलकर प्रयोग किया जा सकता है। नील हरित शैवाल व एजोला फर्न को छोड़कर शेष सभी जीवाणु खादों का प्रयोग एक ही तरह से चार विधियों द्वारा कर सकते है।

1. बीज उपचार : आधा लीटर पानी में 5 ग्राम गुड़ को घोलकर 10-12 कि.ग्रा. बीज के ढ़ेर पर धीरे-धीरे डालते हुए हल्के हाथों से तब तक हिलाएं जब तक कि जैव उर्वरक के घोल की एक समान परत बीजों पर न चढ़ जाए। यह कार्य छाया में खुले स्थान पर करें ।

2. पौध जड़ उपचार : 1-2 कि.ग्रा. जैव उर्वरक का 10-20 लीटर पानी में घोल बनाकर 10-15 कि. ग्रा. बीज द्वारा प्राप्त पौधों की जड़ों को 10-15 मिनट डूबो दें। उपचारित पौधों की तुरन्त रोपाई कर दें । यह विधि धान व सब्जियॉ (टमाटर, बैगर, फूल गोभी) के पौध उपचार हेतु उपयुक्त है ।

3. कंद उपचार : 1-2 कि.ग्रा. जैव उर्वरक को 15-20 लीटर पानी में घोल कर साफ कपड़े से छान लें तथा इसे 10 क्विंटल कंदो पर (आलू, अदरक, अरबी, गन्ना आदि) स्प्रे करें या उपरोक्त कंदो की 10-15 मिनट तक डूबोकर तुरन्त बुआई कर दें ।

4. मृदा उपचार : 2-3 कि.ग्रा. जैव उर्वरक का 40-60 कि.ग्रा. खेत की मिट्टी या सड़ी हुई गोबर/कम्पोस्ट खाद में मिलाकर एक एकड़ खेत में बुआई के समय समान मात्रा में बिखेर दे या पहली सिंचाई के पूर्व खेत में सुबह या शाम के समय छिड़क कर सिंचाई कर दें ।

❑❑❑